हमारा साहित्य

(१९६४)

सम्पादक
नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू।

हमारा साहित्य



हमारा साहित्य

(१९६४)

सम्पादक
नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू।

मूल्य : ४.६०

प्रो० जे० लाल कौल, सैक्रेटरी, द्वारा ललितकला,
संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित
तथा
ऐम. सी. हाँडा ब्रादर्ज,
जालन्धर में मुद्रित ।

हमारा साहित्य

काव्य-धारा

कथा-साहित्य

यात्रा-संस्मरण

लेख

आत्म-निवेदन

नये वर्ष के लिए अमित शुभकामनाओं के साथ 'हमारा साहित्य' आपको सस्नेह समर्पित है।

इस से पहले हमने आपकी सेवा में प्रस्तुत किया था—'शीराज़ा' का पहला अर्द्धवार्षिक, हिन्दी अंक।

'हमारा साहित्य' जम्मू व कश्मीर के स्थानीय साधकों की साधना का एक लघु संकलन है। इस अहिन्दी भाषी प्रदेश के हिन्दी लेखकों की विविध रचनाओं का यह संकलन राष्ट्रभाषा के विकास और विलास को यदि आंशिक रूप से भी व्यक्त कर सके तो हमारा प्रयास पुरस्कृत हो जाएगा

हमारे राज्य में जहाँ कश्मीरी, डोगरी, बोधी, पंजाबी तथा भद्रवाही आदि जनभाषाएं हैं, तथा उर्दू और अंग्रेज़ी प्रशासन की भाषायें—वहाँ हिन्दी भी, सारे देश की सांझी भाषा के रूप में उचित मान और सम्मान पाती है।

यह संकलन अपनी जिन सीमाओं में बंधा है उससे हम भली-भान्ति परिचित हैं, हमारा प्रयत्न इन सीमाओं में रहते भी मां भारती के मन्दिर की आरती में शामिल होना है, आरती के दूसरे दीपों की आभा से होड़ लेने की धृष्टता से हम दूर रहते आए हैं।

सहृदय तथा सजग साधकों के सुझावों से हमारा पथ-प्रदर्शन होगा। हम साभार उन्हें क्रियान्वित करने का यत्न करेंगे। सुझाव भी सहयोग का एक उपयोगी रूप है।

नरेन्द्र खजूरिया

काव्य-धारा

सुभाष भारद्वाज

शशिशेखर

रत्नलाल 'शान्त'

शकुन्तला सेठ

मोहन 'निराश'

चन्द्रकान्त जोशी

श्यामदत्त 'पराग'

मनसाराम शर्मा 'चंचल'

गीत

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

ओंकारसिंह 'आवारा'

शंकर शर्मा 'पिपासु'

जैड 'सैमी'

श्रीवत्स 'विकल' उधमपुरी

तन्द्रा टूटी

सुभाष भारद्वाज

तन्द्रा टूटी
किसकी ?
मेरी ?
नहीं;
तुम्हारी ?
नहीं;
हमारी ?
टूटी, हां टूटी
सब कहते हैं टूटी,
और इसे तोड़ा है
अन्य पुरुष के
कटु उपदेशों
दृढ़ आदेशों
मृदु सन्देशों ने ।
हम जागे हैं,
चौराहों पर,
मंचों के नीचे जागे हैं ।
हम जीते हैं,
गोष्ठियों-सभाओं
भाषणों के बल पर जीते हैं,
किन्तु नहीं जागे हैं
बन्द कोठरियों में
अपनी अपनी शय्या पर,

और जी भी नहीं रहे हम
अपने अपने गृह-प्रांगण में ।
तो फिर ?
हाँ, तो फिर ?
अगर चाहिये वह जाग्रति
वह जीवन,
तो यह तन्द्रा अपनी
तुम स्वयं तोड़ो,
और मैं अपनी तोड़ूं
अरे, तभी
हां, केवल तभी
तुम जाग्रत जीवित कहलाओगे,
मैं जाग्रत जीवित बन पाऊंगा,
हम जाग्रत-जीवित हो पाएंगे ।
और वास्तव में तभी
हमारी तन्द्रा,
यह तन्द्रा टूटेगी ।
तो इसे,
इसे क्या तुम तोड़ोगे ?
क्या मैं तोड़ूँगा ?
क्या कभी,
कभी यह टूटेगी ?

सूर्योदय एक प्रतीक्षा : एक सम्भावना

शशिशेखर

इन झुके हुए कुहरा डूबे माथों पर,
अब एक नया सूर्योदय लहरायेगा।
संदर्भों से टूटी इन यात्राओं को,
अब नया दर्द फिर से पथ दे जायेगा।

काई की झाईं से अन्धी दीवारें,
इनसे रंगों का मुखर बिम्ब फूटेगा।
जिसमें बन्दी है एक समूची वादी,
उन बन्द किवाड़ों का तिलिस्म टूटेगा।

चुप सूर्यमुखी-सा कोई फूल खिलेगा,
बंजर अंधियारों का खालीपन भरने।
फिसलेगी ही यह शिला बन्द ओठों से,
फूटेंगे कुचली आवाज़ों के झरने।

चौराहे पर बैठे 'स्फिंक्स' की माया,
घायल न करेगी अब प्रश्नों के छल से।
प्यासे जन की मुट्ठी में उत्तर होंगे,
जो उसे मिलेंगे आने वाले कल से।

नजरें दृश्यों के नये अर्थ खोलेंगी,
धुल जायेगा पीड़ित क्षितिजों का तपना।
चीड़ों से बहती हवा सब को देगी,
रोरिक के चित्रों सा हिमगिरी का सपना।

सूरज तो एक प्रतीक्षा है अब भी पर,
इन खुली खिड़कियों से वह क्षण आयेगा।
इन झुके हुए कोहरापूर्ण माथों पर,
जो एक नया सूर्योदय लहरायेगा।।

बीमारी : एक अनुभव

प्रो० रतन लाल 'शान्त'

अरी ओ हवा !
ज़रा झटक देना इस खिड़की के पल्ले को
पहली किरण धूप की
दूती सूरज की
इस पल्ले के साथ टंगी हैं, चिपक गई है
जब से मेरी आँखें धुंधली हुईं।
मैंने उसे अचल गलहरी-सा वहीं चिपका पाया
मेरे कमरे का विषाक्त वातावरण है
यह सच भी हो
यह कोना भी मुक्त नहीं इसके स्पर्श से !
अरी ओ हवा !
इस घुटते अंधेरे को एक ओर सरका दे
और खोल दे खिड़की को झटका देकर
कि यह धूप की किरण
टूक-टूक होकर
सारे कमरे में
बिन चाहे भी छितरा जाए
मेरे सिरहाने एक टुकड़ा
कि उसे साँसों से चूमूँ
टेवल के तले एक टुकड़ा
वहां खेलता है मेरा छोटा बच्चा
दीवार पर एक टुकड़ा

कि मैं देख सकूँ तस्वीर जो टंगी है
एक टूक मेरी पुस्तक पर
पूर्ण करुँ अध्याय यह
धूप की पावनते !
तुम पतित-पावन
मुझ से अपावन नहीं होगी
मैं यदि तन से बीमार हूँ
मन करता है
तुम्हें गोद में ले लूँ !

उद्‌बोधन

शकुन्तला सेठ

ओ भारत के वीर सपूतो !
उन्नत रखना माँ का भाल।
युगों से रक्षित पावनता को
कलुषित करे न विषधर व्याल ॥

तुम उसके सौभाग्य बिन्दु हो,
और तुम्हीं मस्तक का गौरव।
गोदी का धन तुम्हीं हो उसकी-
आशाओं का मधुमय कलरव ॥

स्नेह - सुधा से उसने अपनी,
सदा तुम्हें अभिषिक्त किया है।
और तुम्हारे मांस पिण्ड में,
प्राणों का संचार किया है ॥

रक्त बिन्दु से सींच सींच कर,
नन्हें से पौदे को पाला।
मीठे गीत सुना कर गूंथी-
नव सुमनों की अभिनव माला ॥

आज वही संत्रस्त मातु है,
दस्यु दल के अनाचार से।
भय से विह्वल आज धरा है,
भीषण रव की हुँकार से ॥

क्रूर कर्म रावण का बढ़ कर,
रक्त ऋषि का पीना चाहता।
मानवता को नष्ट भ्रष्ट कर,
दानवत्व है जीना चाहता।।

सीता बन जग उठे तपस्या,
राम तेज की ज्वाला चमके।
पाप और पाखण्ड मिटाने
फड़के वीर भुजा अब फिर से।।

कृष्णा के पावन केशों को,
दुष्ट दुःशासन छूना चाहता।
कर उपेक्षा भीम - शौर्य की,
गरल घूंट पी जाना चाहता।
वज्र देह कर चूर्ण अरि की,
शोणित धार पियो तुम कर से।
पूरित हों फिर दशों दिशाएँ,
पाँचजन्य के भीषण रव से।।

निर्धन की कुटिया पर अपना—
शाही महल बनाने वाले,
अहंकार की मदिरा पी कर,
अन्य स्वत्व खा जाने वाले।
पृथिवी तल पर लाखों ऐसे,
महानन्द ले चुके जन्म हैं,
अबला का सम्मान अरक्षित—
जिन के ऐसे क्रूर कर्म हैं।
शिखा खोल फिर करो प्रतिज्ञा,
महानन्द के सर्वनाश की।
वैभव कुचल सके न निबल को,
जीवित रह न सके पातकी।।

देखो वह बढ़ रहा शत्रु-दल,
सिन्धु की धारा के पीछे।
स्वार्थ सुरा से अन्धा आम्बी,
खोले सीमा-द्वार न फिर से।।

तेरी शिराओं में है बहता,
शौर्य वीर्य उस चन्द्रगुप्त का।
हुआ विकम्पित जिस के भय से,
सिकन्दर सा विश्व विजयता।।
ओ झंझा ! दुर्दम्य वेग,
ओ भूकम्प की नाशक शक्ति।
हृत्तल में विश्वास अटल ले,
राम चरण की अविचल भक्ति!
बरस पड़ो तुम प्रलय मेघ बन,
बर्बर अन्यायी के ऊपर।
राम राज्य का स्वप्न सत्य कर,
उतरे फिर से स्वर्ग धरा पर।।

●

अनपढ़े हस्ताक्षर

मोहन 'निराश'

इस अन-जमे सीसे पर
अपने हाथों की छाप डाल दें,
अपने हस्ताक्षर कर लें ।।
हाथ की इन लकीरों को पढ़ने के लिये
एक युग जन्म लेगा,
कितने ही मंतव्य गढ़े जायेंगे,
एक दर्शन कितने ही जिल्दों में बन्ध जायेगा.
और,
यह सब होने के बाद भी
हमारे हस्ताक्षर अन-पढ़े रहेंगे,
हाथों की छाप अन-समझी रहेगी,
केवल सीसा जम गया होगा ।।
यह सीसे की सिल
जिस पर हमारे हाथों की छाप
और हस्ताक्षर होंगे :
एक संग्रहालय में रखी जायेगी
इस फुट नोट के साथ

.'इसने एक युग को जन्म दिया,
मन्तव्यों को गढ़ा,
दर्शनों को बांधा।''
अनपढ़े हस्ताक्षर फिर भी अनपढ़े रहेंगें,
अनसमझी हाथों की छाप फिर भी अनसमझी रहेगी ॥
और यदि हम स्वयं—
उस सिल के पास से गुज़र जायेंगे
तो तय नहीं कर पायेंगे :
यह हमारे हस्ताक्षर क्या अर्थ देते हैं ?
यह हाथों की छाप किन शब्दों को गढ़ती है ?

अर्चना

चन्द्रकान्त जोशी

यह तन अर्पण, यह मन अर्पण, अर्पण मेरे प्राण।
क्षण क्षण जीवन, मधुमय यौवन, जन्म-मरण बलिदान ।।

मेरे श्वास-श्वास में रमती, इस मिट्टी की बास
निरख हिमानी शोभा सुन्दर, बुझ जाती चिर प्यास
बसा हुआ है रोम-रोम में, मेरे तेरा प्यार
अटल विश्वास मूर्ति देश की, चिर-संचित मधु-प्रास

अम्बर में, सागर में, तेरे गूंज रहे जय गान।
यह तन अर्पण, यह मन अर्पण, अर्पण मेरे प्राण ।।

आँचल की छाया में जननि ! किया सदा विश्राम
स्वर्ग हीन है, मोक्ष हीन है, तुम ही सब सुखधाम
तारक, हीरक, मणियाँ, मोती, रत्न जटित शृंगार
तप-त्याग-साधना तेरी ही, सेवा हो निष्काम

सत्य-शान्ति की विजय-पताका, सब तेरा वरदान।
यह तन अर्पण, यह मन अर्पण, अर्पण मेरे प्राण ।।

इस धरती पर, इस जगती में, अंग-अंग विस्तार
नस नस में बहती जन-जन के, गंगा अमृत धार
तेरे चरणों में अर्पित है, हृदय, अर्चना फूल
आज रक्त-चन्दन से जननी, कर नूतन शृंगार

तेरी अमर-बन्दना में मां, अर्पित मेरे गान।
यह तन अर्पण, यह मन अर्पण, अर्पण मेरे प्राण॥

एक दीप जलता है

श्यामदत्त 'पराग'

एक दीप बुझता है,
एक दीप जलता है।
और फिर—
जलते-बुझते दीपों की राख से
एक महल बनता है,
अनगिनत खिड़कियां झरोखे हैं।
नागों की मणियों से
और गज-मुक्ता से
महल खूब सजता है।
नागिनें विषैली
और
हाथी, गिरी-शृंगों-से
घेर लेते तुरत इसे।
उलकाएँ पागल,
टकराती दीवारों से
महल कुछ क्षीण
फिर चर-चूर होता है।

जलती रेखाएँ
मावस की गोद में
मन्द-मन्द पड़ती हुई,
लुप्त हो जाती हैं।
एक दीप बुझता है,
एक दीप जलता है।
और फिर
एक कमरे में चला जाता है,
कमरे के दसों द्वार,
पृथक् पृथक् खुलते हैं
कमरे में घूमता है,
फिरता, इतराता है,
थोड़ी देर बैठता है,
सांझ फिर आती है
छोड़ एक कमरे को
दूसरे में जाता है।
इसी तरह दूसरा भी छोड़ता है,
साँझ हुए,
और
चौरासी लाख कमरों में
घूमता है।
आखिर—
एक रोशनी की किरण
फूट पड़ती है,
और
उसी रोशनी में लीन हो जाता है।
एक दीप बुझता है,
एक दीप लजता है।।

मैं

मनसाराम शर्मा 'चंचल'

मैं जगती-तल का इक मानव, मत मुझ को समझो कलाकार ।

मैं भार तले हूँ दबा हुआ, मैं बन्धक जग का एक दीन,
मत अल्हड़, भावुक समझ मुझे, मैं पुर्जा जग का हृदयहीन ।
मैं नहीं अलौकिक देवदूत, मैं नहीं समर्चित प्रतिमा हूँ,
मैं पिसता आया आदिकाल से, मुझ पर भी हैं लाख भार ।
मैं जगती तल का इक मानव, मत मुझ को समझो कलाकार ।।

मैं लघु मानव इस धरती का, मैं हास-शोक का भागी हूँ ।
मैं दुर्बलता का सबल रूप, औ' जीवन का अनुरागी हूँ ।
मैं प्रेय-श्रेय को माप तोल कर, बढ़ता, लक्ष्य बदलता हूँ,
मैं जीत कभी तो देखूँगा, जब देख चुका हूँ, सतत हार ।
मैं जगती-तल का इक मानव, मत मुझ को समझो कलाकार ।।

मैं गीत अगर कुछ लिखता हूँ तो जीवन में मुस्काने को ।
मैं अश्रु संजो जब हंसता हूँ तो निज में ही खोजाने को ।।
मैं द्रवित, प्रताड़ित एक जीव, इस जगती का अनुयायी हूँ,
मैं हास-शोक के अन्तराल में बन बैठा इक चीत्कार ।
मैं जगती-तल का इक मानव, मत मुझ को समझो कलाकार ।।

गीत

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

बौराये बादाम वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!

मंथर गति चरणों में भर कर
नवजीवन का ले कर मधु वर
ज्यों गजगामिनि वाम, वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!

प्राणों ने ली नव अंगड़ाई
कलि किसलय पर लाली छाई
सजे सुखों के जाम, वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!

महका उपवन, क्यारी महकी
चमन चमन में बुलबुल चहकी
शरद् हुआ नाकाम, वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!

बहे मधुर-रव निर्झर छल छल
हरा सुखद लहराया आँचल
धरती का अभिराम, वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!

अगिन लहरियाँ मानस में भी
उठीं मधुर, कल, मृदु भावों की,
अब तो लो कर थाम, वसन्ती वायु चली !
वसन्ती वायु चली !!
बौराये बादाम वसन्ती वायु चली !

●

उमर पुकारती रही

ओंकार सिंह 'आवारा'

घड़ी पहर गुज़र गये, दिवस ढले, दिवस गये ।
दो शोक बन के वह गये, दो मोद में सरस गये ।
समय का रथ रुका नहीं, आराम भी नहीं किया ।
कभी किसी भी धाम पर रुका नहीं, न दम लिया ।
चला चला चला चला नियम के सूत्र में बंधा ।
कोई कहां जो काल के क्रूर कर से है बचा ।
समय का रथ गुज़र गया, उमर पुकारती रही ।
नयन नयन में बीतते बरस निहारती रही ।।

धरा-वधु सजी-सजी, सुमन के भार से लदी ।
बसन्त पूरता दिगन्त आरहा अभी अभी ।
दिशा-दिशा में मोद है, तरु-तरु है झूमता ।
सुमन-सुमन कली-कली मधु का राग गूंजता ।
उमंग है नयी नयी सी उठ रही गली-गली ।
है मस्त-यौवना बसन्त झूमती कली-कली ।
बसन्त अन्त हो गया, धरा निहारती रही ।
रसाल डाल-डाल पर कोयल पुकारती रही ।।

गिरि के अधर चूमने घटा झुकी-झुकी रही ।
सलज्ज दृग झुके रहे, गति रुकी रुकी रही ।
श्याम केश-राशियां संवारता रहा गिरी ।
सुगंध-स्वास को पवन लिये लिये लिये फिरी ।
घटा के केश से टपक टपक के बूंद बह गई ।
गिरि की साध मन में ही गिरि की हाय रह गई ।
वह मौन हो खड़ा रहा, घटा पुकारती रही ।
हृदय में मिलन साध ले, भुजा पसारती रही ।।

गीत

शंकर शर्मा 'पिपासु'

काश, कि तुम से प्यार न होता!
तो मेरा इस विषम विरह से उजड़ा सा संसार न होता।
कितनी भारी भूल हुई है जो भूले से प्यार हुआ है,
अनजाने ही भोले मन पर पीड़ा का अधिकार हुआ है,
विषम वेदना व्यर्थ न सहता, एकाकीपन भार न होता।
काश, कि तुम से प्यार न होता!
कभी न लगते मेरे मन में अरमानों के निष्फल मेले,
मिलन–विरह के, सदा दूर ही, रहते मुझ से निपट झमेले,
बन कर हाय वियोगी, जग में दर्शन का बीमार न होता।
काश, कि तुम से प्यार न होता!
अपनेपन पर आप विमोहित होकर अपना आप सजाता,
अपनेपन में फूल–फूल कर अपनेपन के गीत सुनाता।
सोता सुख की नींद सदा मैं, सपनों में लाचार न होता,
काश, कि तुम से प्यार न होता!
तो मेरा इस विषम विरह से उजड़ा सा संसार न होता,
काश, कि तुम से प्यार न होता!

खिल जाएंगे फूल कंवल के

जैड 'सैमी'

आशाओं के फूल मसल के
देख लिया है प्यार में जल के,
दिल ही दिल में रह जाते हैं
कितने ही अरमान मचल के,
उन को इक पल हंस लेने दो
खिल जाएंगे फूल कंवल के,
इक देवी की पूजा करने
हम आए हैं दूर से चल के
तुम देखो जो प्यार से हमको
रख दें हम दुनिया ही बदल के ॥

गीत

श्रीवत्स 'विकल' उधमपुरी

तुम मेरे शत-शत बन्धन में,
मैंने अपनी साँस-साँसका—
परिचय लिख भेजा चन्दन में !

पारायण में डूब चुके हैं,
इन अधरों के कूल-किनारे,
उसी गीत की शेष रह गई
परछाई नयनों के वन में।

मुझे स्वर्ग को लौटाने हैं—
भू पर के पद-चिह्न तुम्हारे,
वही विगत की कथा आज,
आ बैठी है स्वर के कम्पन में।

चरणों में भी पंथ शेष है,
पलकों में आकाश भर गया,
अब सब ऋतु सावन की होंगी,
इस विषाद के सूनेपन में।

तुम मेरे शत-शत बन्धन में,
मैंने अपनी सांस-सांस का—
परिचय लिख भेजा चन्दन में ।।

कथा-साहित्य

ठाकुर पुंछी

वेद राही

हरिकृष्ण कौल

लोचन बख्शी

रामनाथ शास्त्री

पुष्करनाथ

नरेन्द्र खजूरिया

दसौंदा सिंह 'दर्दी'

ठाकुर पुंछी

वही सूखा-साखा ढाँचा। वही भीतर को धँसी हुई आँखें। वही चेहरे की उभरी हुई हड्डियाँ। मैला-कुचैला लिबास, और ढीली-ढाली पगड़ी। आलिंगन-बद्ध होने के बाद अपनी फटी-फटी सी आँखों से उसके व्यक्तित्व और लिबास को गौर से निहारता रहा। किन्तु दस वर्ष के पूर्व और आज के दसौंदा सिंह में कोई अन्तर दिखाई न दिया। आजादी के कोलाहलपूर्ण परिवर्तन भी उसे परिवर्तित न कर सके, हालाँकि बचपन और लड़कपन के साथी कहीं से कहीं पहुंच गये थे, गृहस्थ बन चुके थे। मैंने उसके चेहरे की खुरदरी दरारों पर नजर जमाये हुए पूछा—"कब आये ?"

फौरन उत्तर मिला—"दो-तीन दिन हो गये।"

"कहाँ ठहरे हो ?"

"अपने एक रिश्तेदार के पास।"

"मेरे पास चले आते।"

"एक ही बात है।"

मैंने डरते-डरते पूछा—"अब हेड-मास्टर हो, या किसी कालेज में प्रिंसिपल ?"

उसकी पगड़ी अधिक ढीली हो गयी। "अभी तक विक्टोरिया जुबली हाई स्कूल में मास्टर ही हूँ।"

उत्तर दशा के अनुकूल ही था। चेहरे-मुहरे और लिबास का असाधारण ढीलापन मास्टरी ही का द्योतक था।

मैंने पुनः पूछा—"और हाईं स्कूल अभी तक विक्टोरिया जुबली ही है, या नाम बदल गया ?"

वह व्यंग्यात्मक हँसी हँसा। "नाम में क्या रखा है ? वैसे—"

"वैसे तनख्वाह आदि तो—"

मेरी बात काट कर, मैले दाँतों का प्रदर्शन करते हुए वह बोला—"वही सवा सौ रुपये है। पचीस मां के लिए गाँव भेज देता हूँ। पचीस भाया जी का बाकी ऋण चुकाने में उठ जाते हैं, और पचीस-तीस बच्चों की फीस आदि पर। और मेरी आवश्यकताएँ तो तुम जानते ही हो। और—"

मैंने कठिनता से आवाज़ निकाली—"भाभी, बच्चे आदि—"

उसने बात टाल दी। कागज के टुकड़े पर गुरुमुखी में अपना नाम लिखता और काटता रहा। एक यादों-भरी मुलाकात शुष्क और गैर दिलचस्प बनती जा रही थी। मैंने कागज का टुकड़ा उसके हाथ से छीन लिया। दसौंदा सिंह के साथ कुछ और भी लिखा हुआ था। चकित हो पूछा—"दसौंदा सिंह तो ठीक है। साफ देखा और पढ़ा भी जाता है। लेकिन यह—"

युद्ध-स्थल से लौटे हुए किसी सिपाही की तरह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, उसने मुस्करा कर उत्तर दिया—"दर्दी"।

"दर्दी क्या होता है ?"

वह मेरे अज्ञान पर हँस दिया। "कवि।"

मैं अपनी हँसी रोक न पाया। "कवि कब से हो गये ?

..."मैं तो पीछे दसौंदासिंह ही को छोड़ गया था।"

उसने शायराना आह भरी। "कवि हो नहीं गया, बना दिया गया।"

इसके बाद दसौंदासिंह ने अपनी कहानी सुनाई। कभी झुक जाता, कभी रुक जाता, कभी दीर्घ निश्वास भरता कुछ ऐसे शायराना और दार्शनिक अन्दाज से, कि वह दसौंदा सिंह कम और 'दर्दी' अधिक दिखाई देता। उसकी दशा बस्तुतः दयनीय ही थी। अपने शहर के उसी पुराने मुहल्ले खोड़ीनाड़ में सरदार सन्त सिंह दरोगा जेल की कोठी के पीछे एक अन्धेरी बस्ती में रहता था। बरसों का साथ था। न छूटा, और न छोड़ने की कभी कोशिश की। अब उस वातावरण के लोगों में इतना घुल-मिल गया था, कि लहजा, लिबास और सूरत से अपनी बस्ती का एक अनपढ़, मैला-कुचैला मज़दूर ही दिखाई देता था, जो अपनी सारी भूखें और आकांक्षाएँ अपने सीने में छुपाये होता है, और अपनी आँखों में आशाओं की एक ऐसी ज्योति जलाए होता है जिसका प्रकाश केवल विशेष आँखें ही देख सकती हैं। दसौंदा सिंह के चेहरे पर अपनी बस्ती और बस्ती में साँस लेते अपने लोगों की छाप इतनी गहरी थी कि एक खास श्रमजीवी श्रेणी की रूप-रेखा

आसानी से पहचानी जा सकती थी। जब टीचर बना, तो केवल मैट्रिक पास था। असाधारण रूप से ज़हीन था, और अपनी तथा अपने वातावरण की विपन्नता और तंगहाली का एहसास था, इसलिए दूसरों को पढ़ाते-लिखाते स्वयं भी विद्यार्थी ही रहा। अब सैकेंड क्लास एम० ए० था। आज़ादी से पूर्व एक सौ पचीस का ग्रेड खत्म हो चुका था। आज़ादी के बाद भी खत्म ही रहा। नये सिरे से शुरू न हो सका। सिफारिश कोई थी नहीं। दर्जा और ग्रेड कैसे बदलते? बहरहाल जो कुछ था, ठीक था। सन्तोष था कि बस्ती के अपने लोगों के साथ था।

बस्ती से दूर उसका अपना एक छोटा-सा गाँव था। गाँव में एक कच्चा घर था, और घर की रखवाली के लिए बूढ़ी मां थी, जो सिर्फ इसलिए अपने घर और जीवन की रखवाली कर रही थी, कि इकलौते बेटे की शादी के लिए एक छोटे-मोटे घर की ज़रूरत थी। बाप बढ़ई था, और चिर-रोगी। बस्ती ही में छोटे-मोटे काम करता था। बेटे को पढ़ाने के साथ-साथ मुकदमेबाज़ी का भी जुनून की हद तक शौक था। इसलिए ऋण का बोझ भी लाज़िमी था। बेटे को दसवीं जमात तक पहुंचा कर, और कई हज़ार रुपये का ऋण छोड़ कर, बढ़ई बाप एक दिन चल बसा। मां पहले भी गाँव में रहती थी, पहले भी अपने रोगी पति से पचीस रुपए मासिक घर की रखवाली के लिए लेती थी। अब बेटे से प्राप्त कर रही थी। इसलिए घर भी कायम रहा, और घर की रखवालिन बूढ़ी मां भी बनी रही। किन्तु बेटा चालीस की उमर में भी अकेला ही रहा। एक तंग, अंधेरी बस्ती की गन्दी नालियों से अपनी जिन्दगी की जड़ें सींचता रहा। न खुली जलवायु मिली, न पेट भर अच्छा खाना। अलबत्ता एक छोटे-से प्यार के झंझट में पड़ गया, यह न जानते हुए कि लड़की की सगाई हो चुकी है, और वह भी अमीर घराने के एक बड़े प्रोफेसर से। शेरो-शायरी और फिल्मी संगीत की शौकीन, नाज़ुक, हसीन-सी वह लड़की सिर्फ शादी और सगाई के मध्य का रोमांसहीन फासला काटने के लिए प्यार की पींगें बढ़ा रही थी। जवानी की अन्तिम अवस्था का पहला सुन्दर-सा प्यार था। दसौंदासिंह जैसा पत्थर भी वारिस शाह बन गया। ख्यालों के घोड़े दौड़ते रहे, पर अपने प्यार की धूल को भी न पा सके। वह बेदर्द चली गई, और दसौंदासिंह को सदैव के लिए 'दर्दी' बना कर छोड़ गई।

दसौंदासिंह दर्दी की गम्भीर बातें सुन कर पहले मुझे रोना आया, और उसके बाद हँसी आई। रोना इसलिए आया, कि वस्तुतः दर्दनाक कहानी थी, और हँसी इसलिए कि कम-से-कम बरसों के बाद एकाध तबदीली तो नज़र आई। ढाँचा निस्पन्द रहा, पर हिमवत् भावना कुछ द्रवित हुई। उसके चेहरे पर कटु घटनाओं के प्रभाव देख कर, मैंने विषय बदला।

"अब आये हो, तो गणराज्य दिवस देख कर जाना।"

उसने बेतकल्लुफी का सहारा लिया। ''छड यार, गणराज दिवसां नूँ। कल साडा अपना दिवस ऐ।'' (छोड़ यार, गणराज्य दिवसों को, कल हमारा अपना दिवस है।)

मैंने उसकी आँखों में झाँकते हुए पूछा—''समझा नहीं।''

उसने एक सरकारी चिट्ठी मेरे सामने रख दी।

एक ऐसी पोस्ट के लिए इन्ट्रव्यू था, जिसके लिए खास उम्मीदवारों को ही बुलाया जाता था। कड़ी पड़ताल होती थी। दसौंदासिंह 'दर्दी' को इन्ट्रव्यू के लिए बुलाया गया था तो ज़ाहिर था कि सफलता की आशा थी, जिसकी लौ उसकी आँखों में टिमटिमा रही थी। पर एक बढ़ई जैसी ढीली-ढाली खुरदरी सूरत पर अफसरी मुलम्मा कैसे किया जाता? मैं उसे बाह्य व्यक्तित्व और लिबास का महत्व बताना चाहता था, किन्तु वह चला गया। फिर नहीं आया। पता मालूम न था। कहाँ ढूँढता? हफ्तों इन्तजार किया। नहीं आया। समझ लिया कि गुदड़ी में छिपी मेधा काम नहीं आई, और वह अपने शहर के मुहल्ले खोड़ी-नाड़ की पुरानी बस्ती में लौट गया।

एक वर्ष बाद की बात है। मैं बस स्टाप पर खड़ा था, और बस की दीर्घ प्रतीक्षा की खिन्नता मिटाने के लिए लाइन में सिमटी लड़कियों की पीली, काली सुन्दर पिण्डलियाँ देख रहा था, जिन पर मक्खियां बैठने का असफल प्रयत्न कर रही थीं।

किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा।

''ओए ठाकरा!''

मैंने अपनी रेशमी टाई की गिरह को उंगलियों से छुआ। बेतकल्लुफी की भी हद होती है। सुन्दर पिण्डलियों से नजरें फिसल गईं। मुड़ कर देखा—दसौंदासिंह 'दर्दी' था। ढीला-ढाला लिबास और ढीली-ढाली पगड़ी देख कर खुशी भी हुई और आश्चर्य भी। धीमे स्वर में पूछा—''कोई दूसरा दिवस आ गया?''

उसने मेरा कन्धा ज़ोर-ज़ोर से थपथपाते हुए, शुद्ध पंजाबी में उत्तर दिया—''तेरे दर्दी ने इक तीर नाल दो निशाने फुंडे। पंज सौ ते सठां दी नौकरी भी, ते इक दर्दन भी।''

(तेरे 'दर्दी' ने एक तीर से दो निशाने मारे हैं—पाँच सौ साठ की नौकरी भी, और एक दर्दन भी।)

मैंने खुश्क घूँट भरा। ''तो तुम्हारी शादी हो गई?''

चेहरे की झुर्रियां मुस्कराईं। बुढ़ापे के धुंधले-धुँधले-से नक्श उजागर हो गये। यकीन मानिये, यदि दफ्तर की ड्यूटी का ख्याल न होता, और बस न

आ जाती, तो मैं गश खाकर घंटों वहीं कोलतार की सड़क पर पड़ा रहता। दिमाग चकराया, और ठप हो गया। आँखों की पुतलियाँ फड़कीं, और एक ही नुक्ते पर जम गईं। पाँच सौ साठ रुपए मासिक! शादी, और चालिस-वर्षीय दसौंदासिह।

मैं चलती बस पर सवार हुआ। वह चलती बस के पीछे दौड़ा। कानों में भनक पड़ी—"३१३, मुहल्ला मछलीमाराँ, बिल्लीमाराँ, जामा मस्जिद, दिल्ली।" मुहल्ला बिल्लीमाराँ तो ठीक था, पर मुहल्ला मछलीमाराँ आज तक एक पहेली ही रहा। निरन्तर खोज-बीन के बाद मुहल्ला बिल्लीमाराँ की तह-दर-तह गलियों के भीतर ३१३ नम्बर वाला मकान मिला। खस्ता-से दरवाजे पर एक पुरानी-सी तख्ती लटक रही थी।

"डी० एस० "दर्दी"।"

किवाड़ खटखटाने पर एक सोलह-सत्रह वर्ष की नवविवाहिता लड़की बाहर निकली। मैं झेंप गया। उसने मुस्करा कर नमस्ते की। मैंने दसौंदा सिह 'दर्दी' को पूछा। उसने मेरा नाम पूछा। मैंने अपना नाम बताया। मेरा नाम शायद उसने अपने 'दर्दी' से सुन रखा था, किन्तु मेरे लिए उसका नाम भी अजनबी था।

उसने अपने होंठों की मुस्कराहट समेटी। "अन्दर बैठिए। आते ही होंगे।"

मैंने कमरे में बैठते हुए पूछा—"कब तक आ जाता है?"

आँखों में शर्मीली-सी मुस्कराहट थरथराई।

"बस पर है जल्दी मिल जाये तो छः बजे ही आ जाते हैं, नहीं तो—"

लानत है दसौंदासिंह पर! मैंने मन में कहा, घर पर इतनी सुन्दर और हँसमुख बीवी हो, पाँच-छः सौ तनख्वाह हो, और बस के लिए घंटों लाइन में अटके रहा जाये! चार-आठ आने अधिक खर्च करके सुरमई शामों की नई-नवेली हसीन मुस्कराहटों को न अपनाया जाये! एक छोटे-से खूबसूरत मकान में अपना छोटा-सा स्वर्ग न बसाया जाये? इस तरह अपने-आप से बातें करता, मैं उस कमरे को भी देख रहा था, जिस में गली की दुर्गन्ध आ रही थी। नंगे बच्चों का शोर और बूढ़े लोगों की पुरानी खाँसी की खों-खों भी थी। मुहल्ला खोड़ीनाड़ की पुरानी बस्ती जैसा वातावरण था। निर्मल शायद किचन में चली गई थी।

अकेले बैठे-बैठे मेरा दिल घुटने लगा। बात दोस्त की है। पर कह रहा हूं, कि कहनी पड़ रही है। संक्षेप में यह कि दसौंदासिह 'दर्दी' जितना कुरूप और रुग्ण था, निर्मल उतनी ही सुन्दर और स्वस्थ थी। और हमारा यह समाज कितना घिनौना और विडम्बनापूर्ण है कि एम० ए० सैकेंड क्लास की डिग्री नहीं देखता, असाधारण योग्यता नहीं देखता, बूढ़ी मां की ममता नहीं देखता, सिर्फ

पाँच सौ साठ रुपए मासिक की नौकरी देखता है और एक सुन्दर सी स्वस्थ लड़की को चन्द सौ रुपयों की मैली-कुचैली, ढीली-ढाली गट्ठी के साथ बाँध देता है। और वह लड़की एक सूखे हुए क्षयग्रस्त शरीर की बूढ़ी धड़कनों को अपने उमंगों भरे सीने से लगाये, गट्ठी के नोट गिनते-संभालते अपनी मासूम आकांक्षाओं का अपने हाथों से ही गला घोंट देती है। बात दसौंदासिंह और उसकी युवा पत्नी निर्मल की है, इसलिए यहीं खत्म करता हूं, वरना कहने को क्या कुछ नहीं ?

"ओए ठाकरा !"

मैं चौंका। दसौंदासिंह 'दर्दी' सामने खड़ा था। ऊँचे स्वर में कहने लगा—"यार. आज ही याद किया था। यह बस का झगड़ा देर करा देता है, वरना—निर्मल से मिले ?"

मैंने नाराज़गी प्रकट की। "तुम अपना उपनाम बेदर्दी रखो।"

उसने आश्चर्य-चकित हो पूछा—"कहीं टकराव हो गया ?"

मैंने अपनी कही—"तुम्हें एक आला ओहदा मिला। एक हसीन-सी शादी की। मुझे बताया तक नहीं। वह दसौंदा सिंह कहाँ गया, जो यारों का यार था, असली अर्थों में दर्दी था ? अब तो तुम सब के लिए बेदर्दी बन गये। अब तो वाहेगुरु का दिया सब-कुछ है। कम-से-कम अपनी सेहत का तो ख्याल रखो, अपने इस चालीस-वर्षीय ढाँचे के लिए न सही, अपनी इस सोलह-सत्रह-वर्षीया बीवी के लिए ही सही। इस उमर में कितनी उमंगें होती हैं। कुछ खाया-पिया करो। तुम तो फाकों के शिकार मालूम होते हो।"

उसने गम्भीर स्वर में कहा—"जब खाया-पिया हज़्म करने की ताकत थी, तब कुछ मिला नहीं। अब खाने-पीने को मिलता है. तो हज़्म करने की शक्ति जाती रही। पलड़ा बराबर रहा।"

मैं बात की गहराई में खो गया। वस्तुत: यहाँ रोटी दी जाती है, जब भूख तो होती है. पर पाचन-शक्ति खत्म हो चुकी होती है। काम दिया जाता है, जब उसे करने की इच्छा तो होती है, पर शारीरिक और बौद्धिक तौर पर इनसान बेकार हो चुका होता है। स्वस्थ वातावरण और स्वच्छन्द जलवायु प्रदान किये जाते हैं, जब कोई गन्दे वातावरण का कीटाणु बन चुकता है।

अपनी विचार-धारा अधूरी छोड़ कर, मैंने दिल की बात कही—"इस गंदे मुहल्ले की घुटी हुई जलवायु में क्या हज़्म होगा ? किसी नई खुली बस्ती में मकान ले। अच्छी नौकरी और सुन्दर पत्नी भाग्यवान को ही मिलती हैं। और फिर जिन्दगी कितनी संक्षिप्त-सी होती है। अपनी उमर में झाँक कर तो देखो।"

उसकी आँखें गमगीन हो गईं। जैसे कोई तंग-अंधेरी गलियाँ उससे छीनना

चाहता हो. जैसे उस वातावरण से उसकी जिन्दगी की जड़ें कोई उखाड़ना चाहता हो। जैसे वह कहना चाहता हो, कि 'यह पाँच सौ साठ रुपए मासिक की नौकरी मुझ से ले लो, मेरे घर की चारदीवारी की शांति मुझ से ले लो, पर इन गलियों को मुझ से न छीनो, नंग-धड़ंग बच्चों और खाँसते हुए भूखे जिस्मों को मुझ से दूर न करो, क्योंकि मेरे इस मरियल-से ढाँचे की जड़ें इन्हीं से आबद्ध हैं। ये मेरी धड़कनों को सींचते हैं।'

मैंने उसके चेहरे पर से नज़र हटा ली।

"भाया जी का कर्ज़ तो चुका चुके होंगे ?"

उसने हाँ में गर्दन हिलाई।

"अब तो मां जी को बुला लिया होता।"

"वह गाँव छोड़ने के लिए तैयार नहीं। मकान जो वहाँ है। और फिर बुजुर्ग आखिरी वक्त में अपनी मिट्टी से कहाँ दूर जाते हैं ?"

"तुम्हारी शादी में तो आई होंगी ?"

"वह मकान सजाये गाँव में बैठी रही। मुझे इन लोगों ने यहीं दबोचे रखा। अब निर्मल को साथ लेकर खुद ही जाऊँगा।"

"खर्च तो कोई खास बढ़ा हुआ दिखाई नहीं देता। इतने रुपये आखिर क्या करते हो ?"

उसके चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कराहट उभर आई। "मेरी उमर और सेहत के शादीशुदा लोग जो करते हैं।"

"मैं समझा नहीं ?"

वह गम्भीर हो गया। "निर्मल के लिए जमा करता हूँ ताकि जरूरत के वक्त काम आयें।"

एक आशावादी इनसान को नई परिस्थितियों में निराश देखा। बात बढ़ाना उचित न समझा। चला आया, हालाँकि वह खाना खिला कर अपनी नवीनतम कविता सुनाना चाहता था, जिसे उसने 'कुरूप और गुलाब' का नाम दिया था।

'कुरूप और गुलाब'! दसौंदा सिंह और निर्मल !

और मैं स्वयं उलझी हुई टेढ़ी-मेढ़ी राहों का राही।

बरस, डेढ़ बरस बीत गया। दसौंदासिंह से इस बीच भेंट न हुई। मैं खुली हवाओं और साफ-सुथरी दुनियां का प्रेमी। वह तंग, घुटी हुई हवाओं और बदबूदार गन्दे वातावरण का शौकीन। दो भिन्न श्रेणियाँ। दो भिन्न वातावरण। दो भिन्न रास्ते। मिलाप असम्भव था। मैं उसे भूल गया। शायद हम दोनों एक-दूसरे को भूल गये। जीने के लिए अपने आत्मीय जनों को भी भूलना पड़ता है। यह जमाने की जरूरत बन चुकी है।

एक शाम को थका-टूटा घर लौटा।

एक रुक्का मिला :—'आकर मुँह देख जाओ।'

दसौंदा सिंह 'दर्दी' का रुक्का था। किसी नई बस्ती से लिखा गया था। उलटे पाँव गया। टैक्सी ली, और उसके नये निवास-स्थान पर पहुँचा। एक छोटी सी सरकारी कोठी थी। हरा-भरा मखमली लॉन, झुके-झुके-से हरे-हरे पेड़, और इर्द-गिर्द बिखरी हुई फूलों की सुन्दर क्यारियाँ, जिन्हें पाने और जिनकी खशबू में खो जाने के लिए अपनी एक खास उमर में मेरे दिल में भी एक आकांक्षा थी। वह आकांक्षा मुद्दत हुई सो गई थी। सुगन्धिपूर्ण चारदीवारी के भीतर क्षण भर के लिए वह पुनः जाग्रत हुई, फिर हुमकने लगी, फिर दर्द-सा जगाने लगी। उसे सीने में दबा कर मैंने डरते-झिझकते खिड़की के सहारे कोठी के भीतर झाँकने का प्रयत्न किया। एक सघन निस्तब्धता आच्छादित थी। खिड़की के साथ ही लगी दसौदा सिंह 'दर्दी' की चारपाई थी। निस्पन्द पड़ा, वह बड़ी मुश्किल से साँस ले रहा था। निर्मल पास बैठी, उसका सीना सहला रही थी। डाक्टर मेज पर झुका, इंजेक्शन देने की तैयारी कर रहा था। बाहर की चारदीवारी में जहाँ जिन्दगी लहक रही थी, वहाँ कमरे के भीतर टिमटिमाती रोशनी में मौत की परछाइयाँ कसमसा रही थीं।

मेरा सारा शरीर प्रकम्पित हो उठा। दबे-पाँव कमरे में दाखिल हुआ।

निर्मल ने निराश आँखों से मुझे देखा, और सिर झुका कर रोने लगी। दसौंदा सिंह 'दर्दी' की सूरत पहचानना मुश्किल था।

मैंने डाक्टर से पूछा—"यह हालत कब से है?"

डाक्टर ने अपना सामान समेटते हुए उत्तर दिया—"पन्द्रह-बीस दिन से।"

"बीमारी क्या है?"

"पेट में दर्द उठता है, और गशी आ जाती है। एक्सरे से भी कुछ मालूम न हो सका।"

"इस हालत में तो अस्पताल में दाखिल कराना ही अच्छा रहेगा।"

अधेड़ डाक्टर ने कमरे से बाहर निकलते हुए क्रोध प्रकट किया। "बहुत कहा-सुना कि हालत खतरे से खाली नहीं। अस्पताल में हर किस्म की सुविधाएँ मिल सकती हैं। पर 'दर्दी' साहब मानते ही नहीं। डिपार्टमेण्ट के आदमी हैं, वरना कब के वहाँ पहुँच चुके होते।"

"कब के वहाँ पहुँच चुके होते!" अस्पताल में, या दूसरी दुनिया में? वास्तव में अगर दसौदा सिंह 'दर्दी' उस महकमे का उच्चाधिकारी न होता, तो शायद घर या अस्पताल से सीधा अब तक दूसरी दुनिया में ही पहुँच चुका होता। अक्सर उच्चाधिकारी ऐसे भी देखे गये हैं, जिनका अपने अफसराना रसूख और

सरकारी दबदबे के बल-बूते पर सरकारी तौर पर इलाज न होता, हजारों की कीमती दवाइयाँ उनके पेट में न उँडेली जातीं, तो वे एक छोड़ कई मौतें मर चुके होते।

मैं कुछ ऐसी ही विचार-धारा में खोया हुआ था, कि कानों में जैसे मौत की धीमी-सी, कर्कश-सी आवाज पड़ी—"ओए ठाकरा ! मैंनू बचा !"

कमरा खाली था। वहाँ अब निर्मल भी न थी। मैंने घबराई हुई नज़रों से इधर-उधर देखा, और दसौंदासिंह 'दर्दी' की चारपाई की ओर लपका। उसके होंठ काँप रहे थे। जैसे वह अपनी आखिरी बात कहना चाहता हो। मैंने अपने कान उसके प्रकम्पित होंठों से लगा दिये।

उसने मृतप्राय स्वर में कहा—"मुझे कोई बीमारी नहीं।"

मैंने मुश्किल से आवाज़ निकाली—"सूख कर काँटा हो गये हो, और बीमारी नहीं है ?"

उसकी आँखें सजल हो गईं। बच्चों की तरह रोने लगा। रोते-सिसकते हुए कुछ कह रहा था। देर तक खुसर-पुसर के अन्दाज में कुछ कहता रहा। पर मुझे कुछ सुनाई न दे रहा था। मेरी आँखों के सामने अपने दोस्त का कृश शरीर भी न था। सिर्फ एक ऐसा स्वस्थ और जहीन बच्चा था, जिसका लालन-पालन दरिद्रता के घुटे हुए वातावरण में हुआ, जिसने खुली हवा के लिए हाथ-पाँव मारे। और जब एक खास उमर को पहुँच कर वह उसी वातावरण का आदी हो गया, तो उसे खुली हवा प्रदान की गई, ताकि वह खूबसूरत वातावरण में तड़प-तड़प कर मर जाये, जैसे गंदी नाली के कीड़े आम तौर पर खुली हवा में मर जाते हैं। मेरा यह विचार विक्षिप्त था, पर दसौदा सिंह 'दर्दी' की चालीस-वर्षीय जीवन की भरपूर तस्वीर अपने सामने रख कर भी मैं उस से पीछा न छुड़ा सका।

वह आँखों-ही-आँखों से अपनी जिन्दगी की भीख माँग रहा था। मैंने उसके कान में कहा—"फिक्र न करो। तुम्हारी बीमारी कुछ-कुछ समझ गया हूँ। सिर्फ सुबह तक जिन्दा रहना।"

उसकी रोती हुई आँखें चमक उठीं, जैसे भागती हुई जिन्दगी का रेशमी आँचल हाथ आ गया हो।

सुबह तड़के ही सरकारी कोठी खाली थी, और 'कुरूप और गुलाब' पुनः मुहल्ला बिल्लीमाराँ में पहुँच चुके थे, जहाँ के तंग, गन्दे वातावरण में दसौंदा सिंह 'दर्दी' की ढीली-ढाली, खुरदरी जिन्दगी की जड़ें जमी थीं।

● ● ●

एक पुल था

वेद राही

"अरे ! पुल ?"

उसने आंखें फाड़ कर देखा, पुल का कहीं नाम-निशान नहीं। और नीरू नाला वैसे ही बह रहा था जैसे आज से दस बरस पहले। वह आगे बढ़ा। किनारे तक पहुंचने के लिए आगे काफी ढलान था।

दस बरसों के बाद इस घाटी में लौटा है वह। ऊंचे बर्फानी पहाड़ों से घिरी हुई यह घाटी, जिसके बीचोंबीच नीरू बहता है, दस बरस पहले भी ऐसी ही थी। जैसे एक पत्थर भी इधर से उधर न हुआ हो। वह जगह जहां से नीरू बल खा रहा है, वहां पड़ी हुई चट्टान, बरसों पहले भी इसी प्रकार समाधि लगाए हुए थी। दायीं ओर दूर, जहां से नीरू की रेखा निकलती हुई दिख रही है, देवदारों के घने वृक्ष तब भी थे और अब भी हैं। उस हरियाली चोटी के ऊपर बादलों के सफेद-चिट्टे टुकड़े, वह आसमान—हां, सब कुछ वैसा ही है। केवल एक पुल ही नहीं। पता नहीं, कब से टूट चुका है वह पुल। इतनी दूर, पहाड़ों से घिरी हुई इस घाटी में बहते हुए नीरू के इस छोटे से पुल के टूटने की खबर सरकार तक पहुंची भी नहीं होगी। हां, यही वह जगह है जहां पुल था। वह किनारे के पास आ पहुंचा था। टीले पर अब भी टूटे हुए पुल के अवशेष दिख रहे थे।

अब तो पानी में से लांघना होगा। उसने तेजी से बहते हुए पानी की ओर देखा—शायद यह अंतिम बाधा है रतनो तक पहुंचने की। वह मुस्कराया। रतनो का ख्याल आते ही वह उस घाटी से निकल कर एक और घाटी में पहुंच गया। वहां और कुछ नहीं—न लम्बी दूब, न पत्थर, न ऊंचे घने देवदार, न बहते हुए नीरू का शोर। वहां केवल रतनो ही रतनो है--रतनो के श्वास—रतनो

की मीठी आवाज़—रतनो की पतली, गोरी, फिसलती हुई स्निग्ध देह। उसके कानों में अपनी ही बांसुरी के स्वर गूंजने लगे।

वह दाड़िम के एक पेड़ के नीचे बैठ गया। कन्धे पर रखी हुई गठरी को एक पत्थर पर टिका दिया। उसके कानों में बाँसुरी के स्वर ऊंचे होते जा रहे थे।

उस शाम वह दूर तक इसी नीरू के परले किनारे पर बैठा बांसुरी बजाता रहा था। स्वरों के बहाव में वह अपने आपको खो चुका था। शाम हौले पांव चलती हुई रात की स्याही में विलीन हो गई तो वह घर की ओर चला। जिन्दगी की पहली शाम, जब उदासी की कोई भी छाया उसके आस-पास नहीं मंडरा रही थी. जब पहली बार उसके घर के पिछवाड़े का स्त्रोत सिसक नहीं रहा था, कल-कल कर रहा था, गा रहा था।

उस रात उसने पहली बार रतनो का चेहरा देखा था। देखते ही उसे भुजाओं में भींच लिया था। फिर टिमटिमाता हुआ दीया न जाने कब खुद ही बुझ गया और न जाने कब रात दबे पांव खिसक गई और सुबह रोशन हो गई। ब्याह की पहली रात थी वह।

गांव वालों ने उसे पगला कहना शुरू कर दिया था। आखिर और लोग भी तो ब्याह करते हैं, दिन-रात, समय-कुसमय बांसुरी तो नहीं बजाने लगते। लेकिन रांझू सबसे बेपरवाह, अपनी ही धुन में मस्त, रतनो को सामने बिठाकर बांसुरी पर ऐसे स्वर उठाता कि रतनो विमुग्ध हो जाती, फिज़ा झूमने लगती हवां लहराने लगती।

लेकिन एक वर्ष भी बीतने न पाया कि एक दिन बांसुरी की आवाज न सुनकर गांव के छोटे बड़े सभी चौंक उठे, मानो सुबह न हुई हो, हवा न चली हो, पानी न बहा हो।

उस दिन रांझू घर आया तो रतनो को लगा कि पतझर में झरे पत्तों-भरी राह से हो कर आ रहा हो वह।

"यह आज तुम्हें क्या हो गया है ?"

वह चुप।

"तुम्हें मेरी सुगन्ध, जल्दी बताओ।"

वह फिर भी चुप।

"तुम चुप क्यों हो ?"—रतनो ने चीख कर कहा।

"अब यहां हमारा कुछ नहीं रहा !" लगता था, उसकी आवाज किसी गहरी गुफा से आ रही है। "तुम्हें ब्याहने के लिए मैंने तुम्हारे बापू को तीन सौ

रुपये दिये थे, कुछ और भी ऊपर खर्च हुआ था। कुल मिला कर मैंने पांच सौ रुपये उधार लिये थे। दीनू पण्डित दुकानदार से। पिछले एक बरस से मैं ब्याज भी नहीं दे सका। उसने मेरे खेतों पर कब्जा कर लिया है। थोड़े दिनों के बाद मकान भी उसका हो जायेगा और हम..."

"अब क्या होगा?"—रतनो ने रोते हुए कहा।

"हम कल ही यहां से चले जायेंगे।"

"कहां?"

"दूर, नीचे किसी शहर में।"

"क्या करेंगे वहां जाकर?"

"काम करेंगे। वहां तो काम की कमी नहीं होती। थोड़ा खाकर भी जमा करते रहेंगे। और फिर जब पांच सौ रुपये हो जायेंगे तो वापस आकर उसके मत्थे मारेंगे।"

रात भर दोनों गठरियां बांधते रहे। जो भी चीज छूट गई वह अपनी नहीं, यही सोच-सोच कर उनकी आंखों में आंसू आते रहे। रात भर दोनों की एक पल आंख नहीं लगी। सवेरे तड़के ही एक-एक गठरी उठाए बाहर निकल आये। गांव के दूर-दूर बिखरे हुए घरों में किसी को उनके जाने की खबर नहीं थी। सीधी पगडण्डी चढ़ उतर कर दोनों गांव से बाहर ठीक दुकान के सामने आ पहुंचे।

दीनू पण्डित सामने ही दुकान के थड़े पर बैठा चूल्हा सुलगा रहा था। दूर ही से वह उनकी ओर देख कर खुश हुआ कि आज सुबह ही सुबह दो यात्री ग्राहक आ पहुंचे हैं।

"राम-राम साहजी!"—रांझू ने पास पहुंचते ही कहा। दूर से निकल जाने की कोई राह नहीं थी।

"अरे, तुम?" पण्डित रांझू को देख कर हैरान हुआ।

रतनो ने घूंघट खींच लिया था।

"अब यहां रह कर क्या करेंगे, साहजी, तुमने सभी कुछ तो छीन लिया!"

"लेकिन तुम चले कहां हो यह तो बताओ?"

"किसी बड़े शहर—जम्मू—या कहीं और जाकर काम करेंगे। तुम्हारे पाँच सौ रुपये चुकाने हैं और अपने खेत भी वापस लेने हैं।"

"पर तुम लौट आओगे, इसका क्या भरोसा, भाई?"

रांझू भौंचक्का रह गया। चेहरे पर घूंघट डाले रतनो भी सहम गई।

"हम पर भरोसा नहीं क्या, साह जी?"

"लेन-देन में भरोसे की बात नहीं, भाई। पाँच सौ रुपये तो तुम न जाने कितने बरसों में जमा कर पाओगे मगर तब तक का ब्याज कौन देगा ? और अगर तुम शहर जाकर वहीं के हो रहे तो सोचो, मैं तुम्हें कहाँ ढूंढता फिरूंगा ?

"पर यहां रह कर भी मैं तुम्हें क्या दे पाऊंगा ? खेत तो तुमने हथिया ही लिए हैं, साहजी !"

"अरे वाह ! हथियाने की बात करते हुए तुम्हें शरम नहीं आती ? तुमने मुझसे रुपये लिए तो क्या मैं ब्याज भी न लूं तुमसे ?"

"मेरे पास तो खेत ही खेत थे जो तुमने ले लिए। अब मकान रह गया। उससे कुछ होने का नहीं। इस तरह तो मैं कर्ज़ चुकाने से रहा साहजी !"

"तुम शहर में जाकर कमा लाओ न !"—पण्डित ने इतमीनान से कहा।

रांझू की समझ में कुछ नहीं आया—"तुम्हीं तो कहते हो साहजी कि नहीं जाने दूंगा।"

"तुम्हें कौन जाने से रोकता है पर अपने साथ सभी कुछ क्यों उठाकर ले जा रहे हो ?"

"तुम क्या चाहते हो, साहजी, साफ-साफ कहो न ?"

"मैं तुम्हें सब कुछ यहां से नहीं ले जाने दूंगा। तुम जाना चाहते हो तो अकेले जा सकते हो।"

रतनो भावी आशंका से भयभीत हो उठी। रांझू भी तिलमिला उठा।

आखिर बात बढ़ जाने पर गांव के कुछ मुखिया लोगों को बुलाना पड़ा। सभी ने पण्डित की बात का समर्थन किया—उसी की हाँ में हाँ मिलाई। रांझू रतनो को गांव में छोड़ने पर विवश हो गया।

"मुझे छोड़कर न जाओ !"—रतनो ने बिलखते हुए कहा था।

"क्या करूं मैं !"—कहकर तड़पते हुए रांझू ने दोनों हाथों में अपना मुंह छिपा लिया।

कैसी काली रात थी वह ! दोनों एक दूसरे को देख नहीं पा रहे थे, जैसे दोनों किसी नदी की तेज धारा में अवश बह रहे हों-अपने आपको संभाल न पाने के बावजूद एक दूसरे को उबारने का प्रयत्न करते हुए।

"मैं अकेली कैसे रहूंगी ?"

"बापू के पास चली जाओ।"

"तुम नहीं होगे तो वह मौका पाकर मुझे किसी और के हाथों बेच देगा !"

"तो फिर यहीं रहो।"

"उस गार्ड को कौन रोकेगा तुम्हारे बाद जो तुम्हारे सामने ही मुझे इसारेबाजी करता है ? उसकी आंखों से तो आग निकलती है !"

"तो फिर तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं ?"—वह चीखा।

दोनों रोने लगे।

दूसरे दिन पण्डित ने रांझू को अलग ले जाकर कहा—"देखो, तुम रतनो को गांव में अकेली छोड़ कर मत जाना। तुम्हें अपना समझ कर कह रहा हूं यह सब। मैंने अब तक तुम्हारा भला ही किया है। समय-कुसमय पैसा देता रहा हूं। मेरी मानो तो...रतनो को तुम मेरे पास रख जाओ...मुझे गल्त मत समझो। उसे तुम्हारी अमानत समझकर रखूंगा—जैसे लोगों की दूसरी चीजें बन्धक रखता हूं और उन्हें अच्छी तरह संभाल कर रखता हूं—वैसे ही रतनो को भी रखूंगा। मैं अकेला तो हूं नहीं, मेरी घरवाली भी मेरे साथ रहती है। रतनो मेरे घर का काम-काज कर देगी तो समझूंगा ब्याज भी वसूल हो गया उन पाँच सौ रुपयों का जो तुम वापस आकर मुझे लौटा दोगे। सोच लो, मेरे विचार में तो इसी में तुम्हारा भला है।"

रांझू को पसीना छूट गया था पण्डित की बात सुनकर। कई दिनों तक रतनों को लेकर पण्डित की दुकान पर ही पड़ा रहा। कोई निर्णय नहीं हो पाया। पण्डित ने रतनो के सामने भी कई बार कहा—"अपना समझ कर कह रहा हूं तुम्हें, औरत जात का अकेले गांव में रहना आसान नहीं। मेरे पास रहेगी तो आंख उठाकर नहीं देख सकेगा कोई। तुम मन में गल्त मत समझो मुझे।"

उस अन्तिम रात का अन्धेरा बड़ा ही गहरा था। अन्धेरे की वह नदी पार करते हुए आखिर उसने रतनो का हाथ छोड़ दिया था।

"पण्डित भलामानुस है। वह ठीक कहता है। तुम्हें उसी की शरण में रहना पड़ेगा।"

"उसने कुछ किया तो मैं जहर खा लूंगी !"

"ऐसा मत कहो।"

"मैं कहीं डूब मरूंगी !"

"ऐसा मत कहो।"

"मैं चोटी पर से कूद जाऊंगी !"

"ऐसा मत कहो"—रांझू जोर से चीखा। और फिर उसकी चीख रतनो की सिसकियों में डूब गई। वह रात गुजरने में नहीं आ रही थी। अंधेरा अभी बाकी था कि वह वहां से चल पड़ा।

"जल्दी आना !"—रतनो ने सुबकते हुए कहा। रो-रोकर उसकी आंखें सूज गईं थीं।

"बहुत जल्द आ जाऊंगा"—रांझू ने कहा। लेकिन आवाज़ जैसे उसकी नहीं रही थी।

"कभी-कभी चिट्ठी-पत्री भिजवाते रहना।"

"अच्छा !"—कहकर उसने अन्तिम बार रतनो को देखा।

"बेफिकर रहना, रांझू भाई !"—पण्डित ने भी कहा था।

दस बरस हो गए उस बांसुरी को टूटे हुए। इतने बरसों के बाद उस बाँसुरी का स्वर फिर सुनाई दिया है।

वह बराबर नीरू के बहाव की ओर देखता जा रहा है। इन दस बरसों में उसने एकभी पत्र किसी से लिखवा कर नहीं भेजा। शहर पहुंचते ही उसने कभी न लौटने का संकल्प कर लिया था। बरसों वह जगह-जगह भटकता रहा। जहाँ जो मजूरी मिली, कर ली। जो कमाया, वह सारे का सारा खा लिया। पाँच सौ रुपये देकर उसे कुछ वापस लेना है, यह सोचना तक छोड़ दिया उसने। उसका मन कहता था कि यह सब षड़यन्त्र रचा था दीनू पण्डित ने—उसकी रतनो को हथियाने के लिए। और फिर जब हथिया ही लिया उसने तो फिर मैं वापस क्या लूंगा ! वापस लेने योग्य रहा ही क्या होगा ! ऐसे ही सोच में डूबते तिरते, बिना किसी उद्देश्य के भटकते हुए उसने पांच छः बरस बिता दिए।

लेकिन एक दिन वह थक गया। शिथिल हो गया। उसने सोचा, पण्डित ने चाहे कुछ भी किया हो, रतनो रतनो ही रही होगी...वह रांझू की है...वह रांझू का इन्तजार करती होगी...जरूर कर रही होगी...दीनू पण्डित थक गया होगा उसकी मिन्नते-खुशामदें कर-करके लेकिन उसकी आंखें हमेशा पगडण्डी की ओर लगी रहती होंगी...आज भी वह उसी पगडण्डी की ओर देख रही होगी...जरूर देख रही होगी कि कब उसका रांझू आता है। और यही सोच कर वह पैसे जमा करने लगा। पांच सौ से कुछ ज्यादा ही जमा किए उसने लेकिन इसमें तीन बरस लग गए। यदि वह आरम्भ से ही पैसे जमा करने लगता तो रतनो कब की उसकी बाहों में होती और वह रतनो की गोद में।

पास रखी गठरी पर उसने हाथ रखा जिसमें वह अमृतसर के बड़े बाजार से रतनो के लिए कुरते और सुत्थन (तंग चूड़ीदार पाजामा) के लिए बढ़िया से बढ़िया कपड़े खरीद कर लाया है।

नीरू बह रहा था। लेकिन लहरें पत्थरों से टकरा टकरा कर किनारे की ओर बढ़ रही थीं। उसका एक हाथ कुरते के नीचे पहनी जाकिट के भीतर खीसे पर जा पड़ा जहां सौ-सौ के पांच नोट तहाये हुए चुपचाप पड़े थे, जैसे दुनिया के किसी झंझट से उन्हें कोई वास्ता नहीं।

वह उठा। एक बार उसने उस टीले की ओर देखा जहां पहले पुल था। उसने कोट और पाजामा उतारकर कन्धे पर टिका लिए और फिर पांव पानी में बढ़ा दिए। सामने ही दूसरे किनारे पर वह पगडण्डी दिखाई दे रही थी जो दो कोस की दूरी पर उसे उसकी रतनो के पास ले जाएगी।

लहरों का फेन उबल रहा था। बहाव तेज था। पानी के नीचे पत्थर ही पत्थर थे। पांव टिकाए नहीं टिक रहे थे। कुछ ही देर में ठण्डे पानी ने घुटनों के नीचे का खून जमा दिया। धीरे-धीरे वह पांव बढ़ाता जा रहा था लेकिन इतने धीरे कि चार गज की दूरी में मीलों पानी नीचे से निकल गया। पानी कमर तक पहुंचा तो वह रुक गया। उसे लगा कि शरीर का निचला भाग ही नहीं रहा। आगे पीछे देखा, पानी ही पानी, घूमती लहरें और पानी-पत्थरों के टकराने का शोर। अचानक उसके दाहिने पैर के नीचे से पत्थर खिसका। बड़ी मुश्किल से बायें पैर पर जोर डाला और दाहिने पैर को जरा आगे बढ़ाने का यत्न किया।

पानी अब कम होने लगा था। दूसरा किनारा पास आता जा रहा था। किनारा पास देख कर साहस जैसे बढ़ गया। पांव अधिक तेजी से आगे बढ़ने लगे। जब वह पानी के बाहर निकला तो कितनी ही देर धूप सेंकने के बाद उस में चलने की शक्ति पैदा हुई।

पगडण्डी पर चलते हुए मन में एक विचित्र कुतूहल व्याप गया। एक अजीब सी अनजानी सिहरन। पगडण्डी के मोड़-तोड़ को जैसे उसके कदम पहचान रहे हैं। उसके नथुनों में एक चिरपरिचित खुशबू का एहसास होने लगा है। देवदार के पत्तों में सीटियाँ बजाती हुई हवा, दायें-बायें लहलहाते हुए हीरमिंजर के फूल, लम्बी लम्बी सरसराती हुई दूब। वह भूल गया कि दस बरस उसने सपाट मैदानों, में कोलतार से तपी हुई सड़कों, कारखाने की चिमनियों से निकलते हुए धुएं से बोझिल बदबूदार हवाओं, बड़ी-बड़ी ऊंची बिल्डिगों के सड़े हुए तहखानों में गुजारे हैं। वे दस बरस एक भूले हुए सपने के समान इस समय अपना आस्तित्व खो बैठे हैं। वह जैसे कभी भी यहां से नहीं गया—कहीं भी नहीं।

दीनू पण्डित की दुकान का ऊपरी हिस्सा दिखाई देने लगा। अनायास वह रुका। उसके दिल की धड़कन रुकने सी लगी। फिर धड़कन बढ़कर तेज हो गई—बहुत तेज। अब केवल कुछ कदमों की दूरी रह गई है—उसके और रतनों के बीच। क्या कर रही होगी वह? दुकान के भीतरी भाग में चुपचाप बैठी हुई रतनो का उदास चेहरा उसकी नजरों में घूम गया।

धीरे-धीरे चलता हुआ वह दुकान के ठीक सामने आ पहुंचा। चूल्हा जल रहा है। दीनू पण्डित दूसरी ओर मुंह किए शायद पकौड़े तल रहा है। धीरे-धीरे उसके कदम आगे बढ़ते गए। पण्डित के कपड़े वैसे ही तेल और मिट्टी से मैले हैं, सर पर वही गोल काली टोपी।

अचानक पण्डित ने पीछे मुड़ कर देखा ।

''आओ...आओ, कहां से आना हुआ ?

शायद मुझे पहचाना नहीं पण्डित ने—उसने सोचा और मन ही मन मुस्कराया। पखवाड़ा भर हो गया, दाढ़ी भी नहीं बनाई और कपड़े भी तो बिल्कुल शहरी ढंग के हैं। बाल भी नये ढंग से बैठाए हुए हैं। दस सालों में चेहरे पर भी तो कुछ नई छापें लगी होंगी। लेकिन पण्डित तो बिल्कुल वैसे का वैसा है—लगता है, चालीस की हद पर आकर उसकी उमर ही रुक गई है।

''मैं...मैं...जम्मू से आया हूं...अभी बहुत दूर आगे जाना है—भलेस तक।'' कुछ देर के लिए अच्छा है, पण्डित को पता ही न चले कि मैं शंभू हूं—उसने सोचा—बाद में मज़ा आयेगा।

''आओ...आओ...बैठो आराम से...कुछ खाओ पिओ''—पण्डित ने कड़ाही में से गर्म-गर्म पकौड़े निकालते हुए कहा।

''रात को यहीं रहना चाहता हूं। आगे के रास्ते कल जाने का विचार है''—कहते हुए उसने गठरी को थड़े के एक ओर रखा और स्वयं भी पास ही बैठ गया। गर्म-गर्म पकौड़ों की गन्ध तेज थी लेकिन उसकी नजरें दुकान के पीछे वाले कमरे को टटोल रही थीं।

''हमारे पास ही रहो। यहीं दुकान पर सो जाना। इस समय कुछ खाने के लिए चाहिये तो बोलो।''

''छटांक भर पकौड़े दे दो''—कहते हुए उसने फिर पिछले कमरे की ओर देखा। अंधेरे के सिवा कुछ दिखाई नहीं दिया।

पण्डित से कहदूं कि मैं शंभू हूं—उसने एक गर्म-गर्म पकौड़ा मुंह में डालते हुए सोचा—यह तो पता चले, रतनो है कहां।

सहसा सामने एक औरत कमर पर पानी का घड़ा उठाए आती दिखाई दी। उसे ठीक से देखने के पहले ही औरत ने एक अजनबी को दुकान पर बैठा देख घूंघट खींच लिया था। वह उसकी शक्ल नहीं देख सका। रतनो है यह ? नहीं...नहीं..., यह रतनो नहीं हो सकती। रतनो क्या इतनी मोटी थी ? यह तो पण्डित की पत्नी होगी। मोटी हो गयी होगी। यह तो इसी ओर आ रही है। उसने देखा, वह औरत दुकान के सामने से पिछवाड़े को मुड़ने लगी।

''सुनो''—पण्डित ने उसे पुकारा।

वह दुकान के सामने आ खड़ी हुई—मुंह पर वैसे ही घूंघट काढ़े हुए।

''शौंकू को घराट पर छोड़ आई क्या ?''

''हां, आटा पिसने में अभी देर थी, अभी जाकर ले आती हूं।''

उसका दिल बैठने लगा—यह तो रतनो ही है ! उसकी आवाज भी तो ऐसी ही थी। नहीं...नहीं, फर्क है—काफी फर्क है। कुछ भी समझ में नहीं आया। यह शौकू कौन है जिसे वह घराट पर छोड़ आई है ? पण्डित के तो कोई बच्चा नहीं था तब। बाद में हुआ होगा—उसने सोचा।

"कुछ टिगड़े आज ज्यादा बना लेना, एक अतिथि भी आ गया है"—पण्डित ने कहा।

"अच्छा"—कह कर वह मुड़ी।

उसी समय अन्दर किसी शिशु के रोने की आवाज आई।

"लो, वह भी ठीक अम्मां के आने पर रोया, नहीं तो मेरी जान खाता !" पण्डित ने थक कर दो पैरों पर बैठते हुए कहा।

मुझे तो भ्रम हो गया था कि वह रतनो है, यह तो पण्डित की घरवाली है। शौकू इसका लड़का होगा। लेकिन रतनो...उसने निश्चय कर लिया कि वह अभी पण्डित को बता देगा कि वह रांझू है। पकौड़ों के दोने को एक ओर सरकाते हुए उसने कहा—"साहजी...!"

पण्डित ने चौंक कर उसकी तरफ देखा पर अपने ही चौंकने का कारण उस की समझ में नहीं आया।

"साहजी, जरा पानी का गिलास देना।"

"रतनो !"—साहजी ने आवाज लगाई।

"क्या है ?" भीतर से वही आवाज आई—झुंझलाई हुई।

"पानी का एक गिलास दे जाना...मेरे हाथ जरा बेसन में सने हैं।"

घूंघट काढ़े हुए रतनो बाहर आई। उसने कन्धे से शिशु को लगा रखा था। दाहिने हाथ से घड़े में से पानी उंढेलकर उसने गिलास रांझू की ओर बढ़ा दिया।

उसने कांपते हाथों से गिलास को थाम लिया और वैसे ही थामे रहा। उसके सारे अवयवों को एक तनाव ने जकड़ लिया था। सारा शरीर जड़ हो गया था। आंखें मुरदा हो गई थीं।

"पकौड़ों में मिर्चें तो ज्यादा नहीं !"—पण्डित ने पकौड़ों के थाल को एक ओर सरकाते हुए कहा।

"नहीं—उसने चौंक कर कहा। आवाज में परिवर्तन था। लेकिन पण्डित ने महसूस नहीं किया। लोटे से पानी लेकर वह अपने बेसन भरे हाथ धोने लगा।

पानी से भरा गिलास वैसा ही एक ओर रखा था। सारे शरीर में जो आग लग गई थी, उसे यह पानी का गिलास नहीं बुझा सकता था। यह पण्डित कमीना निकला ! हरामी कुत्ता ! धोखा दिया इसने मुझे ! मेरी रतनो..नहीं, वह अब मेरी रतनो नहीं ! औरत जात...मुझे पहले पता होता...मैं यहां आता ही क्यों ! क्या पता था, कुतिया पण्डित के दो पिल्लों को जने होगी !

पिछवाड़े से निकल कर रतनो सामने जाती नज़र आई। खूब मोटी—थुल-थुल। मोटी क्यों न हो, पण्डित ने क्या कुछ न दिया होगा खाने-बहलाने के लिए। उसने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। उसे दूर तक जाते हुए वह तब तक देखता रहा जब तक कि वह नीचे ढलान में न उतर गई।

"आराम क्यों नहीं कर लेते ? तब तक रोटी बन जायेगी। शाम उतरने लगी है।" पण्डित भी अब आराम से एक ओर टेक लगाये बैठ गया था।

आराम...! आग में जलते हुए तो मुरदे ही आराम करते हैं ! अब मुझे आराम कहां ! एकाएक उसे ख्याल आया कि आखिर वह चुप क्यों है ? क्यों नहीं वह चिल्ला कर कहता कि मैं रांझू हूं...यह रतनो मेरी है...यह पण्डित...स्सा...ला हरामी, धोखेबाज है ! क्यों नहीं वह सारे गांव वालों को यहां इक्ट्ठा कर लेता और क्यों नहीं वह सब के सामने इस पण्डित के मुंह पर सौ-सौ के पांच नोट मारकर कहता कि ला मेरा बन्धक लौटा मुझे। देखूं तुमने उसकी ठीक-ठीक देख-रेख भी की है या नहीं। बड़े ईमानदार बनते थे कि मैं किसी के बन्धक को हाथ नहीं लगाता...अब कहां गई वह तुम्हारी ईमानदारी ?

लेकिन इस सारे काण्ड से आखिर होगा क्या ? वह फिर अवश होकर सोचने लगा—इससे खुद मेरी ही तो हेठी होगी। यदि मैं रतनो को ही वापस चाहता हूं तो बिना किसी काण्ड के भी वह मेरी हो सकती है—अपनी रकम वापस लेकर पण्डित कैसे भी रतनो को लौटा देगा। सभी गांव वालों को तमाशा दिखा कर फायदा ?

सामने पण्डित ने दीवार से टेक लगाए हुए आंखें मूंद ली थीं। वह एकटक उसकी ओर देखने लगा—स्सा...ला कैसे आराम की नींद सो रहा है ! अभी इसको पता चल जायेगा कि...

भीतर शिशु फिर रो पड़ा। पण्डित ने अविलम्ब आंखें खोल दीं।

"अरे, क्या मुसीबत है ! वह आटा पिसवाने जा मरी, इसे यहां छोड़ गई !"—कहते हुए वह उठा और भीतर जा कर उसने शिशु को उठा लिया।

"हर्र...रामी !" वह दांत पीस कर रह गया।

शिशु रोये जा रहा था। पण्डित उसे अपनी दोनों भुजाओं पर नचाता उछालता बाहर ले आया। उसका जी चाहा कि वह शिशुको पास से देखे। पण्डित

ठीक उसी के पास आकर बैठ गया शिशु चुप होने में नहीं आ रहा था ।

"क्या मुसी—" पण्डित खीज उठा था ।

"मुझे दो, मैं चुप करा देता हूं"—अनायास ही उसके मुंह से निकल गया। पण्डित ने तुरन्त उसकी ओर बढ़ा दिया बच्चे को ।

"एक पहली घरवाली थी. . .बिना जने ही मर गयी. . .सुलखनी थी. . . न जाने किस बुरे समय दूसरा फन्दा खुद ही अपने गले में डाल लिया !"

फन्दा ! ओह, कितना मक्कार है ! अभी इसको पता चल जायेगा जब में... उसकी बांहों में आकर बच्चा चुप हो गया था । वह ध्यान से बच्चे की ओर देखने लगा । बच्चे के सुकोमल स्पर्शों ने उसे बुरा सोचने से वरज दिया । उसे रतनो याद आने लगी...अपनी रतनो...पतली...नाजुक...शरमीली-लजीली रतनो...उसके घर-आंगन में चहकती-मटकती रतनो...स्त्रोत पर मुंह धोती... बांसुरी के स्वरों से मुग्ध होती रतनो...उसकी बांहों में सिमटती-बलखाती रतनो...उसे अपना आप सर्मपित करती...

एक तूफान गुज़र जाने के बाद दोनों किन्हीं शान्त किनारों पर लेटे हैं ।

"क्या सोच रही हो, रतनो ?"—उसके बालों में उंगलियां फेरते हुए रांझू कह रहा है ।

"कुछ नहीं"—अलसाये स्वर में रतनो ने कहा ।

"फिर भी..."

"मैं सोच रही हूं, मेरी डाली पर कोई फूल कब खिलेगा !"

"अभी से क्या सोचने लगी ?"

"मैं उसका नाम महेश रखूंगी और फिर उसे साथ लेकर मन-महेश की यात्रा करने जाऊंगी...ले जाओगे न ?"

"हां ।"

"मुझे दो इसे !"—एक कड़कती हुई आवाज़ ।

वह चौंका । नज़र उठाकर देखा, चेहरे पर घूंघट डाले रतनो बिल्कुल उसके सामने खड़ी बच्चे को लेने के लिए उसकी ओर हाथ बढ़ाये हुए है । उसने झट से बच्चे को उसकी ओर बढ़ा दिया । बच्चे को लेकर रतनो तेज़ कदमों से चली गयी ।

वह कहां खो गया था ? जिस रतनो की कल्पना में खोया था, उसके आने का उसे पता ही न चला कि वह कब आटा पिसवा कर आयी, कब

उसने आटा अन्दर रखा और कब वह उस के पास आ खड़ी हुई—गुस्से में भरी हुई। लेकिन यह वह रतनो नहीं...वह तो कोई और रतनो थी। इस रतनो की आवाज़ उसे पिछली कोठरी से सुनायी दे रही है—

"तुम हर ऐरे-गैरे के हाथों में महेश को न दिया करो! क्या पता कोई कुछ कर दे तो?"

"तुम तो पागल हो गयी हो! वह तो कोई भला मानुस है।"

पण्डित सच कह रहा है मैं सचमुच भला मानुस हूं, मूर्ख हूं, पागल हूं। रतनो को मेरे महेश की नहीं, एक महेश की जरूरत थी। वह उस ने पा लिया है मैंने स्वयं ही रतनो को खो दिया। एक गहरी नदिया पार करते समय मुझ से हाथ छूट गया उसका। एक भरे मेले में खो गयी है वह—अपरिचितों की भीड़ में।

सामने पण्डित का बड़ा लड़का बैठा है शौंकू। बिल्कुल बाप पर गया है। रतनो का कोई नकश-नैन नहीं। तब तक हो सकता है, रतनो मेरी ही रही हो। मेरे आने की आशा हो उसे। शौंकू की उमर तो सात साल होगी। तब मुझे तीन साल ही हुए होंगे गये हुए। तीन साल तक तो रतनो ने पगडण्डी पर से आंखें न उठायी होंगी—देखती होगी, उसका शंभू कब आता है। और शंभू आया भी तो दस बरस के बाद—ऐरा-गैरा बन कर!

एक दर्दभरी हंसी उस के होठों पर बदसूरत रेखाएं बन कर फैल गयी। नहीं हो सकता कि वह रतनो को अपना ले...उसे यहां से ले जाये...नामुमकिन! एक दम नामुमकिन! सामने पड़ी हुई गठरी की ओर देख कर उसने मुंह फेर लिया।

दिन डूब गया है, जैसे दिल डूबता है। वह सारे गांव में परदेसी बनकर घूम आया है। सचमुच उसे किसी ने नहीं पहचाना। अपने टूटे हुए घर के सामने वह कितनी ही देर तक खड़ा रहा। वहां खड़े-खड़े उस के आंसू भी निकल आये। फिर वह खेतों की ओर निकल गया। बीस बरसों तक जिन खेतों को उस ने अपना लहू देकर सींचा था, वे अब उसके लिए पराये हो चुके थे। वह रतनो को नहीं अपना सकता तो गांव में कैसे रहे, यह सोच कर उसने वापस शहर चले जाने का फैसला कर लिया है।

दीये की मुरदा रोशनी में रतनो मक्की के बड़े बड़े टिगड़े सेंक रही है। उसका घूंघट वैसे ही चेहरे पर पड़ा है, हां, थोड़ा सा ऊपर हो गया है। पण्डित और शौंकू के साथ ही वह भी रतनो के पास ही खाने को बैठ गया है। उड़द की दाल के साथ दो सूखे 'ढोड़े' खाकर ही उसका मन भर गया है। उसे याद आ रहा है। व्याह के दूसरे ही दिन जब रतनो ने उसे कुल्फे के साग के

के साथ घी में डूबे हुए ढोड़े खिलाये थे। मेंहदी रंगे हाथों से जब रोटियां थपथपाती तो बांहों में पड़ा हुआ सुहाग का चूड़ा झनझना उठता। रतनो पकाती जा रही थी और वह खाता जा रहा था। अचानक रतनो के हाथ रुके तो वह चौंका। रतनो के चेहरे पर खिली हुई मुसकराहट कह रही थी—सारा आटा तो खत्म कर गये तुम, अब ठहरो, मैं और आटा लेकर आती हूं।

"क्या बात है भई, तुम खा नहीं रहे ?"—पण्डित ने हैरान हो कर कहा।

"कुछ नहीं, मुझे भूख ही इतनी है" उस ने कहा—"शहर में रहने वालों को ज्यादा भूख नहीं लगती।!' फिर जैसे बिना सोचे उस के मुंह से निकल गया—"इस गांव का एक आदमी मुझे अमृतसर में मिला था...।"

" इस गांव का ?" पण्डित ने हैरान हो कर पूछा—"क्या नाम था उसका ?"

"अच्छी तरह याद नहीं ..." कहते हुए उसने देखा, रतनो के हाथ भी रुक गये हैं—"शायद रांझू बताया था उसने।"

"रांझू ?" पण्डित की आवाज़ ही बदल गयी—"कुछ कहा उसने ?"

"मुझे अच्छी तरह याद नहीं, शायद कह रहा था, मुझे भी अपने गांव जाना है। बस, राह चलते मिला था, कोई विशेष बात नहीं हुई। अच्छा, मैं जाता हूं...सोता हूं बाहर जाकर।"

वह बाहर आ गया। उसका दिल ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा था। क्यों इस तरह झूठ बोल दिया—बिना सोचे समझे—अकारण ही! रतनो कैसे ध्यान से देखने लगी! अगर पहचान लेती तो? नहीं उसकी आंखें अब रांझू को पहचानने योग्य नहीं रहीं। अगर मेरी शक्ल बिल्कुल पहले जैसी होती तब भी शायद वह पहचान न पाती। ...दोनों इस समय क्या सोच रहे होंगे ?

बर्फानी हवा चलनी शुरू हो गयी थी। दुकान का बाहरी हिस्सा पण्डित ने उसके लिए खाली कर दिया था। दो कम्बल वहां पड़े थे। एक कम्बल नीचे बिछाया, एक ओढ़ा, और वह लेट गया।

नींद तेज़ चलती हवा के साथ ही कहीं वह गयी थी। काफी देर पड़े पड़े करवटें बदलता रहा वह। बीच का दरवाज़ा पण्डित ने बन्द कर लिया था। दरवाज़ा बन्द किये भी बहुत समय बीत गया। वह सो नहीं पाया। भीतर से खुसर-पुसर सुनायी देने लगी। लेटे लेटे ही वह आगे बढ़ा। कुछ सुनने का यत्न किया उस ने। कुछ भी सुनाई नहीं दिया। केवल एक दो सिसकियों की आवाज़ ही सुनायी दी। शायद रतनो रो रही थी। कम्बल ओढ़े ही वह उठकर

बैठ गया और फिर आगे बढ़कर, दरवाजे से कान लगा कर भीतर की आवाज़ें सुनने लगा—

"बोलती क्यों नहीं ?"—पण्डित की आवाज़ थी।

रतनो चुप।

"आखिर हो क्या गया है तुम्हें ?"

रतनो चुप।

"तुम समझती हो, रांझू जरूर आ जायेगा ?"

"हां।"

"तुम मूर्ख हो। जो दस बरस तक नहीं आया, अब कैसे आ जायेगा ?"

"वह आयेगा—जरूर आयेगा। क्या मुंह दिखाऊंगी मैं उसे ? तुमने मुझे कहीं का ना छोड़ा !"

"मैंने जो किया, क्या इसमें तुम्हारी इच्छा नहीं थी ?"

"तुम नीच हो...कमीने हो !"

"मुझे गाली मत दो। रांझू आयेगा तो मैं तुम्हें जाने से नहीं रोकूंगा। पांच सौ रुपया देकर वह जब चाहे तुम्हें ले जा सकता है।"

"अब भी तुम्हारा पांच सौ रुपया चुकता नहीं हुआ—मुझसे मेरा सब कुछ लेकर भी ?"

"हिसाब तो हिसाब ही होता है!" फिर पण्डित की आवाज़ आयी—"क्या तुम उसके साथ चली जाओगी ?"

"हां।"

"बच्चों को छोड़ जाओगी मेरे पास ?"

"नहीं, छोड़ क्यों दूंगी ? साथ ले जाऊंगी।"

"अगर वह इन बच्चों को साथ ले जाने पर राजी न हुआ तो...?"

"नहीं जाऊंगी।"

"अगर मैं अपने बच्चों को छोड़ने पर राजी न हुआ तो ?"

रतनो की सिसकियां। निर्बाध सिसकियां।

वह दरवाजे से हटकर फिर कम्बल पर लेट गया है। उसके कानों में अभी-अभी सुने हुए शब्द गूंजने लगे हैं—मैंने जो किया, क्या इसमें तुम्हारी इच्छा नहीं थी...क्या अब भी तुम्हारा पांच सौ रुपया चुकता नहीं हुआ—मुझसे मेरा सब कुछ लेकर भी ?...हिसाब तो हिसाब ही होता है...वह इन बच्चों को

साथ ले जाने पर राजी न हुआ तो ?...नहीं जाऊंगी...अगर मैं अपने बच्चों को छोड़ने पर...

अच्छा हुआ, मुझे पहचाना नहीं किसी ने—कुछ भी प्राप्त न होता।...मैं पण्डित के बच्चे साथ क्यों ले जाता—वह क्यों दे देता...और रतनो...रतनो अब केवल रतनो नहीं, उसके दो अंग और भी हैं...दो बच्चे।

अंधेरा—बिल्कुल अंधेरा। आंखों को कुछ भी सुझायी नहीं दे रहा। वह आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा है—अंधेरा पिघलकर फैल गया है। ओढ़ा हुआ कम्बल उतारकर फेंक दिया है उसने।

रगों में लहू तेज़ी से दौड़ने लगा है। शरीर पसीने से भीग गया है।

उसने भीतरी जाकिट के खीसे में हाथ डालकर पांच नोट निकाल लिये हैं। अंधेरे में ही उन बड़े-बड़े नोटों को गिन लिया है। गिनकर वह आगे बढ़ा। उसी दरवाजे के समीप आया। सिसकियों के स्वर अभी तक उबल रहे हैं। हौले हौले दरवाज़े के बीचसे उसने पांच नोट एक एक कर भीतर बढ़ा दिये हैं—

हिसाब चुकता कर दिया है।

रतनो के लिए लाये हुए कपड़ों की गठरी भी उसने दरवाजे के समीप ही टिका दी है। उसे विश्वास है, रतनो इन कपड़ों को अवश्य पहनेगी।

फिर वह दुकान के बाहर आ गया। ठण्डी हवा के थपेड़ों ने जैसे उसे और भी जकड़ दिया। कन्धे पर कोट डाले, अंधेरे में भी उस पगडण्डी को पहचानता हुआ वह चल पड़ा जिस पर चलता हुआ वह दोपहर को यहां पहुंचा था।

नीरू के किनारे पहुंच कर वह रुक गया। पत्थरों से टकराते हुए पानी का अनवरत शोर सारी घाटी पर छाया हुआ था। पुल नहीं था। पानी लांघने के लिए उसे तड़के तक इन्तजार करना पड़ेगा, नहीं तो बह जाने का खतरा है।

वह एक पत्थर पर बैठ गया। दूर उसे वह टीला नज़र आ रहा था, जहां पहले एक पुल था। पुल अब वहां नहीं था और तब से नीरू में न जाने कितना पानी बह चुका था—न जाने कितना।

●●●

दांव

हरिकृष्ण कौल

शाम के छै बजे हैं। तलूस लारतरे के जीवन पर आधारित अंग्रेज़ी फिल्म देखने जा रहा हूं कि लाल चौक के पास कौल को देखता हूं। कौल मेरा दोस्त है और आज मैं उसे कई दिन के बाद देख रहा हूं। इसलिए कुछ खुशी के कारण और कुछ मुरव्वत के तक़ाज़े से मुस्करा देता हूं। कौल भी मुस्कराकर मेरे नज़दीक आता है।

तीन चार दिन के बाद मिले हैं। करने को बहुत सी बातें हैं। मगर शुरू कैसे करूँ, इसी उधेड़बुन में हूं कि कौल पूछता है—"कहां जा रहे हो ?"

"कहीं नहीं, बस यूँ ही घूम रहा हूं।"

"तो चलो कॉफी-हाउस चलें।" कौल सुझाव रखता है !

"चलो।"

"लेकिन कॉफ़ी तुम्हें पिलानी होगी।"

"मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"सच !"

"हाँ। एक सप्ताह पहले ट्यूशन के तीस रुपये मिले थे। बीस रुपये घर वालों को दिए। साढ़े छै में यह बुश्शर्ट खरीदी। सवा रुपये में कल 'मोलन रूज़' देखी। आठ आने...... ।"

"मेरे पास भी पैसे नहीं हैं, नहीं तो मैं ही पिलाता।" कौल मेरी बात को बीच में ही काट कर कहता है।

यह सोचकर कि इस समय अब पिक्चर देखना ठीक नहीं रहेगा, मैं सुझाव रखता हूं—"चलो, थोड़ी देर के लिए बंड पर घूमें।"

कौल सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट करता है और सिगरेट निकाल कर स्वयं सुलगाता है और एक मुझे देता है। कौल मेरा दोस्त है और मुझे उसकी दोस्ती पर गर्व है। अच्छा आदमी होने के साथ-साथ वह एक अच्छा कवि भी है। बड़ी प्यारी कविताएँ लिखता है। लेकिन गत वर्ष उससे एक भूल हो गई जिसका फल अब तक भुगत रहा है। मज़े में सरकारी नौकरी कर रहा था कि आगे पढ़ने की सनक सवार हो गई। दो वर्ष की स्थायी नौकरी से त्यागपत्र देकर उसने एम० ए० श्रेणी में दाखिला लिया। मेधावी तो था ही। प्रोफेसर और विद्यार्थी दोनों इसकी योग्यता से प्रभावित हुए थे लेकिन समय पर रुपयों का प्रबन्ध न होने के कारण परीक्षा में न बैठ सका था। और इस समय दरबदर फिर रहा है। बेचारा......।

"क्या सोच रहे हो ?" कौल की आवाज़ सुनकर मेरा ध्यान टूटता है।

"तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।"

"क्या सोच रहे थे ?" वह मुस्करा कर पूछता है ?

"यही ट्रेजेडी जो तुम्हारे साथ ..."

"हटो, कोई और बात करो। देखो, बैल जैसे उस सरदारजी ने कैसी सुन्दर पत्नी पायी है।" वह बात को हंसी में उड़ा देता है।

हम आगे बढ़ते हैं। थोड़ी देर की खामोशी के बाद कौल पूछता है, "तुम्हारे पास दो रुपये तो नहीं होंगे ?"

"मैंने जो कहा......।"

"मुझे अभी नहीं, कल चाहिएं।"

"जब तक दूसरा महीना न आए मैं 'पापर' ही रहूंगा। एक सप्ताह पहले मुझे तीस रुपये मिले थे, जिसमें से मैंने बीस रुपये घर वालों को दिए। साढ़े छै रुपये में बुश्शर्ट खरीदी। सवा रुपये में कल पिक्चर देखी। आठ आने बाल-कटवाई के दिए। दस आने......।"

लेकिन उसे मेरे इस आय व्यय के ब्योरे से क्या दिलचस्पी हो सकती है ? मैं अपनी बात को बीच में ही छोड़ कर उससे पूछता हूं—"तुम्हें रुपए किस लिए चाहिएं ?"

"सोचा था, अपने दोस्त प्राण जी ओवरसीयर के पास अच्छाबल चला जाऊँ। यहाँ बिना किसी उद्देश्य के, सड़कों पर फिरते-फिरते तंग आ गया हूं। शायद वहाँ कुछ चैन मिले और मैं रेडियो के लिए तीस-पैंतालीस मिनट का कोई ड्रामा लिख सकूँ।"

"दो-तीन रुपये तो वहां आने जाने में ही लगेंगे !"

"हां वे मुझे कल अपने बड़े भाई साहब से मिल रहे हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त भी जेब में कुछ पैसे होने चाहिएं।"

"यदि मेरे पास पैसे होते तो यकीन जानो...... ।"

"मुझे यकीन है कि तुम सच कह रहे हो।"

वह मुस्करा देता है।

चलते-चलते हम 'नया कश्मीर' पार्क में पहुँचते हैं। चिनार के नीचे एक बेंच पर बैठकर बातें शुरू होती हैं। साहित्य, दर्शन, राजनीति, कश्मीर के हालात, लोकल-स्कैण्डल, हर विषय पर चर्चा होती है। कौल के विचार बहुत ही सुलझे हुए हैं। प्रत्येक बात पर एक निराले ढंग से अपने विचार प्रकट करता है कि मैं दंग रह जाता हूं। उसकी बातों से प्रभावित हुआ हूं, यह दिखाने के लिए उसे सिगरेट पेश करता हूं।

वह सिगरेट लेने से इन्कार करता है—"भूख बहुत लगी है, इस समय सिगरेट नहीं पी जाएगी।"

मुझे भी भूख अनुभव होती है। लेकिन मेरे पास दो ही रुपये हैं। एक रुपया तो कल पिक्चर देखने में खर्च होगा। ऐसी फिल्में तो कश्मीर में मुश्किल से आती हैं। पिक्चर न भी देखूँ तो भी पहली तारीख तक जेब में कुछ पैसे रहने ही चाहिएँ। मैं चुप रहता हूं।

लेकिन भूख मुझे बुरी तरह सताने लगती है। कौल की हालत शायद मुझसे भी बुरी हो। मैं अन्दर की जेब में हाथ डालता हूं। चाय और समोसे, या चाय और पकौड़े में केवल नौ आने खर्च होंगे। यह नौ आने खर्च करना मेरे लिए कठिन तो है लेकिन ज़्यादा नहीं। तभी विचार आता है कि कौल क्या समझेगा? अभी मैंने उससे कहा है कि मेरे पास पैसे नहीं हैं! मैं जेब से ड्राई-क्लीनर्ज़ की रसीद निकालता हूं और फिर तह करके उसे वापस जेब में रखता हूं।

"चलो अब चलें"। कौल खड़ा होता है। मैं भी उठकर चलने लगता हूं।

अन्धेरा होने लगता है, बातें जो की जा सकती थीं, की जा चुकी हैं। अत: हम दोनों चुपचाप चलते हैं। कुछ दूर चलकर शहर का प्रसिद्ध बुक-स्टाल आता है। एक विशेष पत्रिका का विशेषांक आया है। यह देखकर हमें एक निराली खुशी होती है। भूखे कुत्तों की तरह पत्रिका पर टूट कर उसके पन्ने पलटते हैं। बहुत समय बीतने के बाद ध्यान आता है कि यह ठीक नहीं है। इसलिए चुपके से पत्रिकाएँ नीचे रख कर बाहर निकलते हैं।

सहसा कौल के मन में एक विचार आता है और वह लपक कर पत्रिका

उठाता है। फिर काउंटर पर जाकर दुकानदार से कहता है—'देखिये, यह पत्रिका आप मेरे लिए रिज़र्व रखें। इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं कल या परसों आकर ले जाऊँगा।''

''कोई बात नहीं। आप इस पत्रिका को वहीं रख दें। जब आपको ज़रूरत होगी हम देंगे।'' यह कहकर दुकानदार एक भद्दी हंसी हंसता है। मैं तिलमिला उठता हूं और जी चाहता है कि उसका मुँह नोच लूँ।

दुकान से निकल कर कौल मुझसे कहता है—''यदि मैं अच्छाबल नहीं गया तो यह अंक अवश्य खरीदूँगा।'' मैं 'हूं' भर करके रह जाता हूं।

अन्धेरा बढ़ता ही जाता है और हम दोनों धीरे-धीरे चलते हैं, चलते क्या हैं किसी तरह अपनी टांगों को घसीटते हैं। दोनों में से किसी को भी कोई बात छेड़ने की हिम्मत नहीं होती। आस-पास भी खामोशी छाई है। यह खामोशी धीरे-धीरे मेरी सारी देह में जहर की भान्ति छा जाती है। और मुझे लगता है कि मैं भी औरतों की तरह फूट फूट कर रो पड़ूँगा।

''बाबू जी, ज़रा एक मिनट!'' लैम्प-पोस्ट के नीचे बैठा एक आदमी हमें बुलाता है और खामोशी टूटती है। हम पास जाकर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से उसे देखते हैं।

''देखिये बाबू, ये ताश के तीन पत्ते हैं। पंजा, नहला और बेगम।'' कहकर वह आदमी सामने बिछाए टाट के टुकड़े पर तीनों पत्तों को उल्टाकर रखता है और फिर तेज़ी से बन्द पत्तों को इधर-उधर करने लगता है।

तीन पत्तों का पुराना जुआ है—मैं समझ जाता हूं।

''देखते क्या हो, बाबू? हो जाए एक बाज़ी! आप जिस पत्ते पर पैसे रखें यदि वह बेगम निकल आए तो आपको दो के चार, पाँच के दस और दस के बीस रुपये मिलेंगे।''

मुझे लगता है कि जिस पत्ते के कोने में जो छोटा सा धुन्धला दाग़ है, बेगम होगा, परन्तु पैसे न लगाकर चलने लगता हूं। तभी कौल जेब से दो रुपये का नोट निकालकर, एक पत्ते पर रखता है। मुझे थोड़ी बहुत हैरानी होती है। पत्ते उल्टाए जाते हैं और कौल का पत्ता नहला निकल आता है। दाँव हार कर कौल के मुँह पर मुर्दनी छा जाती है। ''एक बाज़ी और!'' वह आदमी हंसकर फिर पत्ते बिछाता है। परन्तु कौल मेरी बांह पकड़कर मुझे चलने का संकेत करता है।

लेकिन यह नहीं हो सकता। कौल बड़े भाई से मिलने वाले दो रुपयों से इस तरह हाथ नहीं धो सकता! मैं समझ जाता हूं। अच्छाबल जाने के लिए न

जाने कितने दिनों से उसने ये दो रुपये बचाकर रखे हों। ये दो रुपये उसे वापस मिलने चाहिएँ। और मैं भी दो रुपये की बाज़ी लगाता हूं। पत्ते उल्टाए जाते हैं और दाग़ वाला पत्ता बेगम के स्थान पर पंजा निकल आता है। मैं चुपके से खिसकता हूं।

अन्धेरा गहरा हो चुका है। हम में कोई बात नहीं होती। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

फिर वही खामोशी ! ......नहीं, इस बार मुझ से यह सहन नहीं हो सकती। इसे किसी भी तरह तोड़ना होगा ....मैं सिगरेट निकाल कर कौल की ओर बढ़ाता हूं—"लो पियो।"

कौल सिगरेट ले लेता है।

● ● ●

बेईमान का ईमान

लोचन बख्शी

कागज रद्दी, बोतल . . .' जब कभी यह आवाज़ मेरे कानों में पड़ती तब मैं पहचान जाता, यह उसी बूढ़े की आवाज़ है। वैसे तो हमारी गली में से कई कबाड़ी तरह-तरह की आवाज़ें लगाते हुए गुजरते रहते हैं, और हर एक का आवाज़ लगाने का ढंग अपना अलग होता है, पर मालूम नहीं क्यों, यह बूढ़ा मुझे बाकी सब से कुछ अलग और विचित्र सा लगता है। कम्बखत आवाज़ भी तो ऐसी लगाता है, जो कलेजे को छू लेती है, किसी ऐसे संगीतकार की तरह, जिसे सुरताल का पूरा ज्ञान होता है। उसकी आवाज़ में मुझे कभी भैरवी की तान सुनाई देती और कभी भैरवी का अलाप।

आज उसकी आवाज़ जैसे ही मेरे कानों में पड़ी, मैंने झट से उसे बुला लिया।

"बाबा !" मेरे मुंह से यह शब्द निकलने की देर थी कि वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ।

"जी, मुझे बुलाया है, और वह 'हीं हीं' करके हंसने लगा। मैंने देखा उसके पोपले मुंह में बलिश्त भर की जबान थी, जो किसी भी समय एक क्षण आराम नहीं लेती थी। उसके मुंह से 'पच्चक-पच्चक' की आवाज़ आ रही थी और उस की आंखें बड़ी गुस्ताखी से मेरी ओर घूर रही थीं। मुझे बूढ़े का यह अन्दाज

अच्छा न लगा। मुझे लगा, जैसे यह बूढ़ा मेरा मुंह चिढ़ा रहा हो और आंखों ही आंखों में मुझे कह रहा हो--बावूजी, हम भी झट ताड़ लेते हैं कि कहां कोई क्लर्क या बाबू हमारी राह देख रहे हैं। आम बाबू तो महीने की पन्द्रह तारीख भी नहीं गुजरने देते। आप तो फिर भी काफी जीवट वाले हैं, महीने की आखिरी तारीख तक तो इन्तजार करते रहे। मेरा मन हुआ, उस बूढ़े से कहूं--बक-बक न कर, ऐ बूढ़े! तेरी आंखें नहीं हैं जो मेरे जैसे 'गजेटिड आफीसर' को तू क्लर्क ही समझ रहा है।

तभी मुझे ऐसा लगा जैसे बूढ़े की सचमुच आंखें नहीं थीं, आंखों की जगह दो गड़हे थे, जिन्हें दो मोटे-मोटे शीशों वाली ऐनक ने ढक रखा था। उसकी सफेद दाढ़ी के बाल किसी लच्छेदार डोर की तरह आपस में एक दूसरे से उलझ रहे थे। बूढ़ा मटमैले रंग की पगड़ी पहने हुए था, जिसका फटा हुआ लड़ पीछे लटक रहा था। उसकी कुबड़ी पीठ पर एक बोरी लटक रही थी, पर बोरी के बोझ से कहीं ज्यादा जिन्दगी के बोझ ने उस की कमर झुका रखी थी। बोरी जगह जगह से कट रही थी और पैबन्धों में से तराजू की डन्डी बाहर लटक रही थी।

"जी, आप ने बुलाया है," वह फिर बोला।

"हां बाबा!"

"तो ले आइए माल! फिर ईश्वर आप का भला करें, अखबारें हैं, या रिसाले।"

और मेरे कुछ कहने से पहले ही वह मेरे दरवाजे की दहलीज पर अपनी बोरी पटक कर, धरना दे कर बैठ गया था, उसकी शक्ल एक कबाड़ी की अपेक्षा एक भिखारी जैसी अधिक लगती थी। अगर कहीं उसके पास तराजू न होता तो शायद मुझे यह भ्रम हो जाता कि वह बूढ़ा मेरी रद्दी को मुफ्त का माल समझ कर, मेरे घर में डट कर बैठ गया है, पर उसका व्यावसायिक तरीका मुझे पसन्द आया। वह अपना तराजू ठीक कर रहा था और अपने बाटों को पोंछ रहा था।

"बाबा! पीछे से कहां के रहने वाले हो?" मैंने यूंही उससे पूछ लिया। मेरा मतलब था, जब तक श्रीमती जी अखबारें इकट्ठी करती हैं, तब तक जरा वैसे ही बूढ़े से बातचीत शुरू की जाए।

"'पीछे' की क्या बात करते हो, बाबू जी! वह दूर रह गया है, अब तो 'आगा' नजदीक आ गया है।"

"आगे तो सबने ही जाना है, बाबा! मेरा मतलब है, पाकिस्तान में तुम्हारा घर कहां था?"

"मुसाफिरों का भी कोई घर होता है, बाबू जी! जहां रात पड़ गई, वहीं बसेरा कर लिया। चार दिन जिन्दगी के गुजारने होते हैं और मूरख' आदमी

घर बनाने की सोचता है, वह यह नहीं समझता कि यह दुनिया तो एक सराय है।"

दुनिया की नश्वरता पर इस तरह भाषण देता हुआ वह मुझे अच्छा लगा। मैंने उससे कहा--"बाबा, तू तो बहुत ज्ञानी है।

"ज्ञान-ध्यान तो जानता नहीं बाबू जी, हां रद्दी अखबारों का भाव जरूर जानता हूं। अंग्रेजी अखबार बारह आने सेर, देसी अखबार दस आने सेर और रिसाले छह आने सेर। लाइए, जल्दी करिए बाबू जी, आप का माल क्या है?"

बूढ़े का ऐसा व्यावसायिक रुख देख कर मैं चुप हो गया और मन ही मन सोचने लगा--कमाल का आदमी है, इतना बूढ़ा है, पर फिर भी कितना चैतन्य! मालूम नहीं संसार में इसका और भी कोई है या नहीं। कभी तो संसार से इस तरह मोह दिखलाता है, और कभी उसे नश्वर बताता है, पर फिर भी इसकी यह उमर काम करने की नहीं, इसे आराम करना चाहिए, दोनों वक्त का खाना इसे बना बनाया मिलना चाहिए। बस बैठकर खाए और राम भजन करे। उसने जैसे मेरे विचार जान लिए थे, वह झट से बोल उठा--"बाबू जी, यह जो पेट साथ लगा है न, यह बड़ा जालिम है, दोनों वक्त इस तन्दूर को तो गर्म करना ही पड़ता है।"

उसकी बातें सुन-सुन कर मेरे मन में उसके लिए श्रद्धा उत्पन्न होती जा रही थी। तभी मुझे ध्यान आया कि यदि आज मेरे पिता जी जीवित होते तो उन की आयु भी लगभग इतनी ही होती। मैं कभी उनको इस उम्र में यूं धक्के न खाने देता। पता नहीं वह कैसी औलाद होती है, जो अपने मां-बाप को उनके बुढ़ापे में इस तरह भुला देती है। शायद इस बूढ़े की कोई औलाद नहीं होगी।

इतनी देर में श्रीमती जी अन्दर से आती दिखाई दीं, शरारती बच्चों की तरह फिसल-फिसल कर अखबार उनके हाथों से जैसे नीचे गिरने को हो रहे थे। बूढ़े ने सुख की सांस ली और चुपचाप अखबार तोलने लगा।

"अरे भाई, तेरा तराजू तो ठीक है न?"

"हां, बीबी जी, बिल्कुल ठीक है, आप से बेईमानी करके मुझे शाह तो बनना नहीं। मेरे हिस्से में तो सेर के पीछे जो दो पैसे आते हैं, मेरे लिए वही सोना है। बारह आने में रद्दी खरीद कर, साढ़े बारह आने में बेच दी, यही तो मुनाफा है।"

"अरे, भाई! किसी के मन का क्या पता होता है, यह हमारा बनिया, जिस से हम सौदा लेते हैं, ऊपर से ऐसा घुन्ना लगता है, जैसे उसके मुंह में जबान भी नहीं है, पर तराजू के साथ चुम्बक ऐसे चिपकाता है, जैसे इसे चिपकाने का उसे हक ही हासिल हो। सेर के पीछे एक छटांक का घपला मार जाता है।"

"नहीं, बीवी जी ! मुझे तो बस अपना एक टका ही अमृत है," बूढ़ा बार-बार यही कहे जाता और साथ ही साथ रद्दी अखबार भी तोलता जाता ।

'सेर के पीछे एक टका' बड़ी बेकद्री है मेहनत की । मैं सोच रहा था सारे सौदे में से बेचारे को मुश्किल से ढाई आने बचेंगे । बूढ़े ने कुल पांच सेर अखबार तोले थे । कुछ अखबारें बच गई थीं, मैंने उससे कहा, "जा, यह भी ले जा, बाबा!" वह अखबारों को उठाकर अपनी बोरी में डालने को ही था कि श्रीमती जी की एक घुड़की ने उसे ठंडा कर दिया । बूढ़ा मेरी ओर सहमी हुई आंखों से देख रहा था, और श्रीमती जी कहरभरी नजरों से जैसे मैं कारूं का खजाना लुटा रहा हूं ।

"चलो, ले भी जाने दो ।"

"आप चुप रहिए जी, हम कोई पेड़ों से पैसे तो तोड़ कर नहीं लाते ?" बूढ़े ने तीन रुपये बारह आने गिन कर श्रीमती जी को दे दिए । वह उन्हें अभी गिन ही रही थीं कि छोटा बबलू बाहर से दौड़ता हुआ आया और उनके हाथों से एक चवन्नी छीन कर ले गया और फिर मैंने आंख झपकते ही देखा कि बाहर गली में से वह रंगदार शर्बत वाला बर्फ का एक गोला ले आया और हमारे सामने ही 'सुड़क-सुड़क' की आवाज करते हुए उसे चूसने लगा था । मैं सोच रहा था, इसने एक पल में चवन्नी खर्च कर डाली है और बेचारे बूढ़े को इतनी दौड़धूप करने के बाद कुल ढाई आने बचे थे । मेरा मन किसी न किसी तरह बूढ़े की मदद करने को हो रहा था ।

"बाबा, खाना खाओगे ?"

"नहीं जी, भगवान आप को बहुत दे और कोई टीन-डब्बा है तो वह भी ले आइए ।"

श्रीमती जी यह सुनकर खाली डब्बा और बोतलें लेने चलीं गई । मैं सोच रहा था वह बूढ़ा क्यों मेरे मन को बार-बार छू जाता है और मैं क्यों इसकी मदद करने को ललक-ललक जाता हूं । मुझे एकदम ऐसा लगा, जैसे बूढ़े के स्थान पर मेरे दफ्तर का बाबू हीरालाल खड़ा हो । मुझे याद आया, एक बार मेरा मन अपने दफ्तर के बाबू हीरालाल के लिए इसी तरह पसीज गया था । हीरालाल बाल-बच्चेदार आदमी था, और उसका एक-एक रोम कर्ज से दबा हुआ था । उस दिन यदि मैं उसकी मदद न करता तो वह सूदखोर पठान उसकी बुरी हालत कर देता, पर इस घटना का मेरे दफ्तर के बाबूओं पर क्या असर हुआ था, मैंने अपने कानों से उन्हें ये बातें करते सुना :

"हीरालाल की बीवी बड़ी 'फैश्नेबुल' है ।"

"और रोज नई साड़ी पहनती है ।"

"पहने भी क्यों न यार ! पठान का बिल भी तो साहब ने ही चुकाया था ।"

"ऊंह, साहब तो बुद्दू है ।"

"और इधर इस छोटे की ओर देखो न सारा दिन तिनका तोड़ कर दूहरा नहीं करता, बस पान चबाता रहता है ।"

"अरे, भाई ! चबाए भी क्यों न, सईयां भए कोतवाल ।"

और वे सारे लोग 'हो हो' कर के हंसने लगे थे । मुझे उनकी हंसी बड़ी अखरी थी और मैंने उसी दिन हीरालाल को अपनी ब्रांच से बदलवा दिया । मैंने उस दिन सौगन्ध खा ली थी कि फिर कभी किसी से नरमी बरतने की गलती नहीं करूंगा । पर आज जाने क्यों मेरा मन अपने आप ही बूढ़े की दुर्दशा देखकर पसीज गया था । बूढ़ा खाली बोतलें गिन रहा था और खाली डिब्बों का हिसाब लगा रहा था, और मेरी श्रीमती जी उस से एक-एक पैसे पर झगड़ रही थीं ।

"चलिए, छोड़िए भी," मैंने कहा और बात बदलने के लिए मैंने बूढ़े से पूछा—"बाबा, मिट्टी के तेल का खाली टीन कितने में लोगे ?"

"बाबू जी, नया हो तो सवा रुपए का नहीं तो चालू भाव लगा लेता हूं । ऐसे सौदे में से हमें चार पैसे बचते हैं ।"

"नया ही है, बाबा ! जरा ठहरो तो," इतना कह कर मैं 'स्टोर' की ओर चला गया । श्रीमती जी मेरे पीछे आती हुई बोलीं---"मैंने कहा जी, अभी तो उस में तेल है ।"

"कहां है, मैंने सुबह ही 'स्टोव' में काफी तेल डाल दिया था और बचा-खुचा बोतल में डाल दिया था, कल सुबह नया टीन तो आएगा ही ।"

"मुझे नहीं मालूम जैसे मरजी है करो," और खीजती, झींकती श्रीमती जी चली गईं । मैंने जल्दी से तेल का टीन बोतल में उलट दिया । मुझे पता ही नहीं लगा कि कब किस समय बोतल भर गई थी और बाकी का तेल फर्श पर धारी बन कर बहता जा रहा था । मैंने जल्दी से टीन बूढ़े को पकड़ाते हुए कहा--"ले बाबा, यह टीन भी ले जा ।"

और उसने टीन को ऊपर उठा कर उलट-पलट कर देखना शुरु कर दिया । टीन में अब थोड़ा सा तेल बाकी था, जो छलक गया और मेरी पतलून पर उसके छींटे पड़ गए । मुझे थोड़ा गुस्सा आ गया—"अरे बाबा ! देखते क्या हो, यह टीन तो बिल्कुल नया है ।"

"अच्छा !"उसने टीन रख लिया और कांपते हुए हाथों से सवा रुपए की रेज़गारी गिन कर मेरे हाथ पर रख दी ।

मालूम नहीं, उस समय मेरे मन में क्या बात उठी, मैंने अपने आप एक चवन्नी उसे वापस कर दी और बड़े धीमे स्वर में ताकि मेरी श्रीमती जी मेरी बात न सुन लें, उससे कहा—"चल बाबा, रुपया ही रहने दे ।"

पर बूढ़े की सूरत देख कर मुझे यों लगा, जैसे मैंने उसे गाली निकाल दी हो। एकदम उसका मुंह लाल हो गया। उसकी आंखें बदल गई और उसकी दूध जैसी सफेद भवें कांपने लगीं।

"बेईमानी भी आपको मेरे साथ ही करनी थी, बाबू जी! असल में इन्सान का कुछ स्वभाव ही ऐसा है, आप का दोष नहीं। अगर आपके घर में कोई बड़ा-बूढ़ा होता तो उसके साथ भी आप ऐसा ही व्यवहार करते।"

"पर बात क्या है, बुजुर्गवार!" मैंने उसे और सम्मान देते हुए कहा।

बात भी आप मुझ से ही पूछते हो बाबू जी, मेरी इतनी उमर हो गई है, मैंने आज तक कोई ऐसा 'लाटीकीन' का बेटा नहीं देखा, जो ब्याज़ भी न ले और मूल में से भी पैसे वापस कर दे, यह टीन जरूर टूटा हुआ होगा।"

मेरे कलेजे पर जैसे किसी ने 'धक' से मुक्का मारा हो। बूढ़ा मुझसे सख्त नाराज था। मुझे ख्याल आया, हो सकता है, बूढ़ा गुस्से में वह सौदा भी वापस कर दे, जिसे उसने पहले खरीद लिया और अपने पैसे भी वापस मांगने लगे, जिस में से एक चवन्नी का बरफ का गोला हमारा बबलू खा चुका था और आज महीने की आखरी तारीख़ थी और मैं बूढ़े की चवन्नी वापस करने की स्थिति में भी नहीं था, पर मैंने देखा, बूढ़ा जल्दी में अपना सामान समेट कर चलता बना।

वह उखड़ी-उखड़ी चाल से चलता जा रहा था। मैंने देखा उसकी पीठ पर लटकती हुई बोरी में से कागजों के पुरजे, जैसे शरारती बच्चों की तरह मेरा मुंह चिढ़ा रहे थे। ठीक इसी समय बूढ़े की बोरी में से मुझे कोई चीज़ खट्टाक का शब्द करती हुई सड़क पर गिरती दिखी।

"बाबा! बाबा!!" मैं उसे आवाजें लगाता रहा, पर वह तो कान बन्द किए, ऐसे चलता जा रहा था, जैसे जलते हुए गांव में से जोगी भाग रहा हो।

मैंने उस चीज को उठा कर देखा, वह चुम्बक पत्थर का एक टुकड़ा था, जिसे दुकानदार अक्सर ग्राहक को धोखा देने के लिए तराजू के तले से चिपका देते हैं।

"बेईमान," मेरे मुंह से अचानक निकल गया। और दूर कहीं मैंने बूढ़े की उखड़ी-उखड़ी गूंजती हुई आवाज़ सुनी--"कागज रद्दी . . ." पर मुझे यों लगा यह उस कलाकार की आवाज नहीं थी, जिसे मैं जानता था। यह तो कोई अनाड़ी नौसिखिया गवैया था, जिसे यह भी नहीं मालूम था कि इस राग में भैरवी के सुर लगते थे, या असावरी के। वह तो तुक-बेतुक गाए जा रहा था, जिसे न ताल की समझ थी और न सुर का ज्ञान--बेईमान!

बदनामी की छांव

प्रो० रामनाथ शास्त्री

आज रविवार है। नन्दलाल को स्कूल नहीं जाना था। उस ने सोचा—भावज अभी मन्दिर गई हैं, आज खाना देर से बनेगा। क्यों न ज़रा बाज़ार तक हो आऊं। पैंट-चप्पल पहने हुए था, खूंटी से बुश्शर्ट उतारी और पहनता हुआ बाहर निकला। निकलते ही उस ने बाईं ओर की गली में से आती ढोलक की आवाज़ सुनी। याद आया भावज ने कहा था—'दुसालियों की लड़की का विवाह है, कोई काम काज पूछ आना।" चलो, शाम को हो आऊंगा। इतने में ढोलक की आवाज़ के साथ 'सुहाग' के बोल उस के कानों में पड़े।

"पिता जी, मेरे लिए वर की तलाश कीजिए।"

"बेटी, कैसे वर की तलाश करूं?"

"जैसे सितारों में चांद होता है,
जैसे चन्द्रसमूह में कृष्ण कन्हैया हों,
मेरा वर राम जैसा हो, देवर लक्ष्मण जैसा,
सास कौशल्या जैसी और ससुर महाराज दशरथ जैसे।
मैं तो अयोध्या का राज्य मांगती हूं
ताकि मैं बैठी-बैठी शासन करूं!"

एक तो गाने वाली लड़कियों का स्वर मीठा और सधा हुआ था, दूसरे गीत के बोल इतने कोमल, इतने मार्मिक थे कि नन्दलाल रुक कर उन्हें सुनता रहा।

गीत की अन्तिम पंक्तियों ने उस के मन को विशेष रूप से छुआ। वह सोचने लगा—हर जवान लड़की विवाह-योग्य अवस्था में यह क्यों चाहती है कि उसे रामचन्द्र जैसा पति मिले तथा कौशल्या जैसी सास? क्या इसीलिए भोले माता-पिता अपनी कन्याओं के नाम रखते हैं: जानकी, जनकदुलारी, सीता? 'सीता'—इस नाम की कल्पना के साथ ही मुहल्ले की सीता, उस की भावज की सहेली, उस की नज़रों में आकर मुस्कराने लगी। उसने सोचा—इस के मां-बाप ने भी कोई ऐसी ही आकांक्षा लेकर इस का यह नाम रखा होगा। लेकिन बेटियों के ऐसे नाम रखने वाले माता-पिता यह भूल क्यों जाते हैं कि सीता जी भी अयोध्या में अधिक दिन राज्य नहीं कर पाई थीं। १४ वर्ष का वनवास और रावण की कैद भोग कर जब वे लौटीं तब किसी विक्षिप्त धोबी के विष भरे अपशब्दों ने फिर उन्हें जंगल की शरण में भेज दिया। नन्दलाल चकित था कि आज यह एक नई बात उस की समझ में आई है। अपने मुहल्ले की यह सीता भी सौन्दर्य में किस से कम है? गज़ब की है यह औरत भी! इस गरीबी में भी उस का डर सारा मुहल्ला मानता है। मुहल्ले भर में हर जगह कितनी चर्चा है उस की? भाग्य का उपहास देखिए कि कहां वह और कहां उसका वह कुरूप घरवाला, लब्बू। कैसा कन्हैया वर मिला है बेचारी को, जिसे देख कर हंसे बिना रहा नहीं जाता। सारी रामायण पढ़ जाइए, आप को लब्बू जैसा कोई पात्र नज़र नहीं आएगा। नन्दलाल परेशान था कि आखिर यह मेल बैठा कैसे होगा? सीता के मां-बाप की ऐसी क्या लाचारी रही होगी जो उन्होंने परियों जैसी अपनी इस बेटी को ऐसे लाल बुझक्कड़ के पल्ले बांध दिया।

नन्दलाल ने देखा कि वह सीता के मकान के सामने आ पहुंचा है। बड़ी ड्योढ़ी के आगे तीन चार सीढ़ियां उतर कर सामने खुला आंगन है और उसी के पश्चिम में एक खुला-सा कमरा है। सीता सामने ही दरी पर बैठी सिलाई की मशीन चला रही थी। नन्दलाल को देख कर उस ने मशीन रोक ली और मुसकरा कर बोली—'शुक्र है देवर, तुम्हें भी सीता का ख्याल आया। न न, दरी पर क्यों बैठते हो, यह कुर्सी जो पड़ी है, तुम्हें मेरी कसम है।"

"आज तुम्हारे साथ लड़ने आया हूं, भाभी!" नन्दलाल ने कुर्सी पर बैठते ही कहा।

"मेरे साथ लड़ने आए हो? मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है देवर जी?" मुसकराने से सीता के गालों में जो गढ़े पड़ते हैं, नन्दलाल की नज़र उन में जा फंसी।

"भाभी, मेरी समझ में यह नहीं आता कि तेरे बारे में नित नई कहानियां कौन गढ़ता है? क्यों गढ़ता है? क्या मुहल्ले में दूसरी औरतें नहीं हैं? लेकिन कहानियां रोज़ तुम्हारी ही सुनने में आती हैं।"

सीता ने मुसकराते हुए जवाब दिया—"लेकिन मुहल्ले में मेरे जैसी कोई और हो भी ! कहानियां क्या सभी की बनती हैं देवर जी ? लेकिन इन कहानियों के बनने पर आप दुखी क्यों हैं ? कहानियां तो आदमी की बननी ही चाहिएं। यह क्या हुआ कि जन्मे, ठोकरें खाई, हंसे-रोए और गुमनामी के अंधेरे में खो गए। दुनिया इसी को न जाने क्यों सुखी जीवन कहती है ? क्यों देवर जी ? आप ज़रा इस बात पर सोचिए, तब तक मैं मशीन की फिरकी पर धागा चढ़ा लेती हूं।" सीता फिरकी पर धागा चढ़ाने लगी और मास्टर नन्दलाल चकित, विमूढ़ सा, मशीन चलाती हुई सीता को घूरने लगा। कभी वह उस के सुन्दर केश देखता, कभी चमकता माथा, कभी तीखी नाक और कमान सी वक्र काली भौंहें। जल्दी-जल्दी मशीन चलाने से कुछ धागा फिरकी के बाहर भी लिपट गया था। सीता मशीन को उल्टा घुमा कर उसे छुड़ाने लगी। उस के चेहरे पर खीज का कोई निशान नहीं था। पतले गुलाबी ओंठों पर वही मुसकान खेल रही थी। सीता ने नज़र उठा कर कहा—"अरे, तुम तो सच ही सोच में पड़ गए ! क्या सोचने लगे हो ?"

"यही सोच रहा हूं भाभी कि लोग ऐसी कहानियों से कितना डरते हैं, लेकिन तुम कहती हो कि यह जीवन जीवन ही नहीं अगर इसकी कहानियां न बनें।"

"झूठ तो नहीं कहती नन्दलाल जी ! अच्छा, छोड़ो इस चर्चा को और यह बताओ कि तुम ने मेरे बारे में नया क्या क्या सुना है ? क्या नई कहानी बन रही है मेरी ?" सीता फिर मुसकराई और उस के गालों के बीच दो गढ़े बन गए।

"लेकिन भाभी, तुम लोग यह मकान ही क्यों नहीं छोड़ देते ? क्या किराए पर और कहीं मकान नहीं मिल सकता ?" नन्दलाल ने जैसे उसे मुक्ति-मार्ग दिखाया।

सीता ने जैसे सुना नहीं। सुना नहीं तो फिर वह मुसकराई क्यों ? वह सुई के धागे से नीचे की फिरकी के धागे को ऊपर खींचने में लगी थी। लगता था, उसे वह कमीज़ जल्दी ही सी कर तैयार करनी है। नन्दलाल उस के आकर्षण भरे चेहरे की ओर एकटक देखता हुआ सोच रहा था—सीता कभी खुल कर हंसती क्यों नहीं ? उसने इसे कभी हंसते हुए नहीं देखा। शायद वह जानती है कि उस के मुसकराने में जो जादू है वह उसके हंसने में नहीं।

उसे याद आया, कल उस के घर आई औरतों में भी इसी बात की चर्चा थी। नन्दलाल स्कूल से आ कर अपने कमरे में बैठा चाय पी रहा था कि बाहर आंगन में हो रही बात चीत उस के कान में पड़ी थी। एक औरत

बोली—'यह भी इस गस्ती (कुलटा) की एक चाल है।' चाय का एक ही घूंट पी कर नन्दलाल ने चौंक कर प्याला नीचे तिपाई पर रख दिया।

दूसरी ने समर्थन किया—'खुल कर हंसती नहीं' इस में भी कोई राज़ है। मेरी बात याद रखो, रांड का, शायद कोई दांत खराब होगा। वह दिखाई दे जाए, तो उस की सुन्दरता की शोहरत को दाग न लग जाए!' अपनी बात पर स्वयं ही वह खिलखिला कर हंस पड़ी।

तीसरी और दूर की कौड़ी लाई—'नहीं नहीं. दांत उस के मोतियों जैसे हैं। लेकिन हंसने से गालों के बीच वे गढ़े नहीं बनते होंगे, जो मुसकराने से सहज ही बन जाते हैं।'

'लेकिन एक बात समझ में नहीं आती कि परमेश्वर इतना रूप ऐसे पतित लोगों को ही क्यों देता है? सूरत देख कर तो लगता है जैसे कोई राज भोगने वाली है।' दिवाकर की मां ने हाथ हिला कर कहा।

"इन गालों के गढ़ों में आज तक न जाने कितने चतुर, कितने मूढ़ डुबो चुकी है यह शूर्पनखा! इस के भी नाक-कान किसी ने न काटे तो कहियो।' एक और ने भविश्यवाणी की।

दिवारक की मां को यह बात सुन कर मज़ा तो आया, लेकिन उसे दुख था कि यह पूरी होने की नहीं। बड़ी निराश सी हो कर बोली—'घर वाला है मरदूद जानवर। नाक कान कौन काटेगा?'

एक औरत ने आवाज़ दबा कर कहा—'आजकल जहां रहती है, सुना है उस डाक्टर का शिकार कर चुकी है। लहजे से स्पष्ट था जैसे वह यह समाचार कहीं पाताल से निकाल कर लाई है। लेकिन दिवाकर की मां को यह पर्देदारी भली नहीं लगी। उस ने उसे डांट कर कहा—'अरी, इस तरह डर डर के क्यों बोलती है? जो बात सारे मुहल्ले में फैल चुकी है उस में भला अब छिपाव क्या? और वह मरदूद डाक्टर, क्या नाम है भला उस का? जसोदा लाल या फिर जसोदा नन्दन, अब बाल सफेद होने लगे हैं, तो उसे रास रचाने का शौक चर्राया है। राधा जो उसे ढूंढती हुई वहां आ गई है! पर्दा है किराएदारी का और इस पर्दे के पीछे परमात्मा जाने क्या तमाशे हो रहे हैं। ये समझते हैं कि कोई देखता जानता नहीं, लेकिन कल को देखना सभी लोग इस खूसट पर थूकेंगे।"

एक स्त्री ने समर्थन किया—सुना है दिवाकर की माँ, घर वाली को तो बुलाता ही नहीं। कहते हैं, वह बेचारी जलती कुढ़ती रहती है। जले कुढ़े क्यों नहीं? उस की छाती पर मूंग दलने के लिए डाक्टर इस जादूगरनी को जो ले आया है। डाक्टर के लड़कों का, कहते हैं, उससे भी बुरा हाल है। ऐसे डरे सहमे रहते हैं कि बेचारों का विकास ही रुक गया है। बेड़ा गर्क हो जाए इस डायन का।'

"यह क्या, आप फिर सोच में डूब गए, देवर ! इस कच्ची उमर में इतना सोचोगे तो चेहरे की यह लाली पीली पड़ जाएगी। बड़ी बुरी चीज बनाई है ईश्वर ने यह सोच भी। जवानी से इसे वैर, हंसी खेल की यह शत्रु ! क्या कह रहे थे आप ? यह मकान क्यों नहीं बदल लेती ? आप ही ले चलिए अपने यहां। दे देना एक छोटा सा कमरा किराए पर। वहां आप का संरक्षरण भी सहज ही प्राप्त हो जाएगा।" सीता मुसकराई।

"अपना मकान कहीं होता, तो ले ही चलता तुम्हें भाभी, पर जहां हूं वहां तो मैं भी एक किराएदार के समान ही हूं। हर महीने ६०, ७० रुपए भावज के हाथ पर रखता हूं।" और नन्दलाल सोचने लगा---यदि मेरा अपना छोटा सा मकान भी यहां होता, तो मैं एक दिन के लिए भी सीता को इस लंका में न रहने देता। यह मुहल्ला इस के लिए लंका नहीं तो और क्या है ?

"आप का अपना मकान होता, तो आप मुझे ज़रूर ही वहां ले जाते ? सच ?" सीता मुसकराई।

'सच' ?---नन्दलाल को लगा कि वह 'सच ?' कहीं पक्की सीढ़ियों पर से लुढ़कती कांसे की थाली की तरह उस के मन में दूर तक सन-सन करता हुआ उतरता चला गया है। कितना गहरा होता है आदमी का मन !

"लेकिन देवर, तुम मुझे अपने घर ले क्यों जाते ? इसलिए कि तुम्हें मुझ पर तरस आता है ? या इसलिए कि तुम्हें भरोसा है कि लोग सीता के बारे में जो निन्दा की बातें फैलाते हैं वे निराधार हैं ? या फिर और कोई कारण है ?" सीता ने मुसकरा कर पूछा और वह कमीज़ के कफों के अन्दर डालने के लिए लट्ठे का टुकड़ा कैंची से कतरने लगी। इधर नन्दलाल बेचारा इन बातों से परेशान हो उठा—कैसे सवाल पूछे हैं इस ने ? क्या जवाब है इन का ? तरस आने वाली बात भी ठीक है। यह बेचारी मेहनती जवान औरत है। लोगों के कपड़े सी कर अपना, अपने सीधे सादे पति का और अपने इकलौते बेटे का निर्वाह कर रही है। कभी मन्दिर-शिवालय नहीं जाती, कथा-सत्संग के लिए इसे फुर्सत नहीं। मेले-पर्वों में इसे रुचि नहीं। हां, कपड़ा ज़रूर साफ़ पहनती है। तो क्या बुरा करती है ? अपना ही तो परिश्रम है। ऐसे प्राणी पर तरस क्यों न आए ? और रही लोगों में फैली हुई इस की अपकीर्ति तो इस के पास थोड़ी देर बैठ कर और इससे बातें कर लेने पर मन मानता ही नहीं कि यह औरत बदचलन है। दरअसल इस का सौन्दर्य ही इस का दुश्मन हो गया है। औरतों में ईर्ष्या द्वेष तो जैसे उन के रक्त में घुले मिले रहते हैं। इसे देख देख कर जलती हैं और मन की जलन को निकालने के लिए इस की निन्दा और बदनामी करती हैं। पर-निन्दा का भी तो अपना

रस होता है। यह बेचारी बुरी नहीं है, लेकिन इस को जान बूझ कर बदनाम किया गया है। इस की आखों में कहां है वैसा कलुष? इस मुसकराहट में कहां है वह विष? हां, इस ने पूछा है कि इन दो बातों के अलावा क्या और कोई कारण भी है मेरी सहानुभूति का! नन्दलाल ने अपने मन में झांक कर देखा। सीता उसको देख रही थी। नन्दलाल की नज़रें उस से मिलीं तो उसकी सारी देह में रोमांच हो आया। सीता ने नज़र झुका ली। अब नन्दलाल उसे देखने लगा। उसका दिल धड़क रहा था

"तीनों में से कौन सी बात ठीक है, देवर?" सीता ने मुसकराते हुए पूछा।

"तीनों भाभी!" नन्दलाल के मुंह से जैसे सहसा निकल गया।

"तीनों? क्या कोई तीसरी बात भी है देवर?" सीता मुसकराई और नन्दलाल की झुकी हुई नज़रों में उस के सरल चित की थाह लेने लगी।

नन्दलाल स्वयं हैरान था कि उस ने यह क्या जवाब दे दिया है! सीता ने उस की परेशानी भांप ली, और मशीन चलाने लगी।

नन्दलाल सीता का कोई सगा देवर नहीं। इस मुहल्ले में सीता जब आई थी, तब नन्दलाल की भावज से ही पहले उस का परिचय हुआ था। धीरे धीरे इस परिचय ने मैत्री का रूप ले लिया। नन्दलाल की भावज ने ही सीता के सिलाई के काम को चलाने बढ़ाने में मदद दी थी। इसीलिए सीता उस का बड़ा आदर करती है। नन्दलाल को अपनी भावज की मार्फत ही सीता से परिचित होने का मौका मिला था और वह भी उसे भाभी कह कर पुकारने लगा था। नन्दलाल एक प्राईवेट स्कूल में पढ़ाता है। १२५) मासिक वेतन पाता उस में से ६०, ७० घर का खर्च चलाने के लिए भावज को दे देता है। नन्दलाल का बड़ा भाई, उस की भावज का पति, अमृतसर में किसी मिल में काम करता है। नन्दलाल की परवरिश उसी ने की है, इस लिए नन्दलाल भावज को माता तुल्य मानता है। लेकिन इन दिनों उसे यह देख कर खीज और ग्लानि होती है कि उन्हीं के घर में मुहल्ले की औरतों का वह 'सत्संग' जुटता है जिस में 'सीता ऐसी है' 'सीता वैसी है' की रोज़ चर्चा चलती है। यह देख कर उसे लज्जा और दुःख होता है कि उस की भावज भी अब इन बातों का प्रत्याख्यान नहीं करती। रोज़ इन बातों को इस तरह मौन प्रोत्साहन देने से तो लगता है कि उस की भावज भी अब सीता को नेक औरत नहीं समझती। कहां कहां से ये लोग 'गुप्त बातें' निकाल लाते हैं। हमारे घर की तरह दूसरे घरों में भी इसी तरह की निन्दा गोष्ठियां जुटती होंगी। लेकिन नन्दलाल जिस बात से हैरान होता है वह है सीता की मुसकराहट। वह जब भी कभी उस की निन्दा की बातें सुन कर उस से पूछताछ करने आया, तभी उसने देखा कि सीता

उन बातों को सुन कर न तो कभी घबराई, न डरी, न झिझकी ही। बस, सहज भाव से मुसकरा कर वह इतना ही पूछती—"और क्या कहते हैं लोग ?"

आंगन में बूटों की आवाज़ सुन कर सीता ने उधर देखा। डा० जसोदानन्दन खांसते हुए आए और अपनी बैठक के किवाड़ खोल कर अन्दर चले गए। उन्होंने कपड़े बदलते हुए सीता के दरवाज़े की ओर दो-तीन बार देखा। कुर्सी पर बैठे नन्दलाल की पीठ ही उन्हें दिखाई दी। धोती, कुरता पहनकर और पैरों में सफेद चप्पल डाल कर वे बाहर निकले और सीता के दरवाज़े के पास आ खड़े हुए। पूछा—"क्या हाल है अब लाल का सीता ? रात को उसे खांसी तो नहीं हुई। इस वक्त कहां है !" "आज वह खेलने गया है डाक्टर साहब। कितने दिन हो गए थे खाट पर पड़े हुए। आज ज़िद करने लगा तो मैंने रोका नहीं।" सीता ने कहा। नन्दलाल कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और उस ने डाक्टर साहब को हाथ जोड़ कर नमस्ते की। जवानी ने बुढ़ापे का अदब किया, बुढ़ापा इसी से प्रसन्न हो उठा।

"आप कौन हैं सीता ? मैंने नहीं पहचाना इन्हें।"

"मेरे देवर हैं डाक्टर जी !"

"अच्छा, अच्छा भई, देवर भाभी की बातों में तीसरा आदमी मुखल क्यों हो ? क्या नाम है इनका ?"

"नन्दलाल।"

"अच्छा नाम है। कोई ज़रूरी नहीं कि सीता के देवर का नाम लक्ष्मण या भरत ही हो।" डाक्टर ने हल्का सा कहकहा लगाया और अपने मकान के भीतरी हिस्से में चले गए। उन की चप्पल की आवाज़ मद्धम पड़ी तो सीता ने कहा—"देवर, यही है डाक्टर जसोदानंदन, जिन पर आज कल मैंने जादू किया है। देखा तुम ने मेरे जाल में फंस कर कैसे तड़प रहे हैं, कैसे बेहाल हैं ? इन्हीं के बारे में सुन कर तू आज मुझ से झगड़ा करने आया था न ? देख लिया न इन्हें ! देवर, मेरे लाल के प्राण इसी ने बचाए हैं। पिछले दिनों उसे नमोनिया हो गया था। लाल के पिता जी को तुम ने देखा ही है। क्या काम कर सकते हैं वे ! इन्हीं डाक्टर साहब ने अपने रसूख से उन्हें कपड़े की किसी दुकान पर नौकर रखवा दिया है। ४५ रुपए वह भी ले आते हैं। उन का यह कमरा किराए पर ले कर मैं कितनी सुखी और निश्चिन्त हूं, क्या बताऊं ? इन के डर से मुहल्ले के मनचले लोग कपड़ा सिलाने का बहाना बना कर भी यहां नहीं आने पाते। क्या यह मामूली बात है देवर ?"

"लेकिन भाभी, औरतें तो कहती हैं कि यह डाक्टर कसाई से भी अधिक क्रूर है। अपनी घरवाली से बोलता तक नहीं, लड़के बेचारे इस के सामने नहीं आते ?"

"किसी के मन की कोई क्या जाने नन्दलाल जी। तीन लड़के थे इसके। मंझला लड़का इसको सब से ज़्यादा प्यारा था। मैंने तो उसे देखा नहीं, लेकिन सभी कहते हैं कि वह रूप और गुण दोनों बातों में अपूर्व था। वह एक दिन अचानक नदी में डूब कर मर गया। उस की मौत ने डाक्टर को उदास और चिड़चिड़ा कर दिया। बाकी दो लड़के हैं, लेकिन कुसंग में बिगड़े हुए, पढ़ने लिखने में पिछड़े हुए। डाक्टर बेचारा भी बाप है, दुखी होता है। उन्हें झिड़कता है, बुरा भला कहता है। पर वे हैं काली कम्बली, चढ़े न दुजो रंग। घरवाली बेचारी चिर-रोगिनी है। जोड़ों में दर्द रहता है। नालायक बेटे उसे ही आ जा कर तंग करते हैं। वह न कहीं जाती है न आती है। दिन गुज़र जाता है बेचारी का चौके चूल्हे में और पूजा पाठ में। ऐसी गृहस्थी में डाक्टर भला क्रूर न दिखाई दे तो और क्या ! उसे किसी ने घर से बाहर हंसते नहीं देखा। और घर में अब सीता जैसी जादूगरनी को कमरा किराए पर दे कर वह उस से हंस हंस कर बातें करता है। क्या लोग हैं देवर ! न किसी को रोते देख कर पसीजते हैं, न हंसते देख कर खुश होते हैं। अब कोई क्या करे ?" सीता के मुसकराने से उस के चेहरे पर फिर से पहली आभा आ गई थी। नन्दलाल का तरुण हृदय यह धूप छांव देख कर विभोर हो उठा।

"वैसे एक बात आप को बताऊं नन्दलाल जी।" सीता ने उसे अपनी ओर घूरते देख कर कहा। नन्दलाल एकटक उसे देखता रहा।

"देवर जी, मर्दों और औरतों में वैसे एक फर्क है। डाक्टर को ही देखिए। मुझ पर उसे दया आती है, लाल की बीमारी के दिनों में उसे वह दो-दो तीन तीन बार दिन में देखता था, लेकिन दवाईयों के पैसे वह मांग के ले लेता था। कमरे के किराए के बारे में उस की ताकीद है कि महीने की चार तारीख तक उसे मिल जाना चाहिए। खाने पीने के बारे में भी उस ने आज तक हम से 'यह लो, वह दो' की रस्म नहीं चलाई। कहने का मतलब यह कि उस का तरस और सहानुभूति एक व्यावहारिक मर्यादा में बंधे हुए हैं। आप अपनी ओर ही देखें। आप को मुझ से कितनी सहानुभूति है। आप का अपना मकान होता तो आप मुझे वहां किराए पर या शायद बिना किराए ही छोटा मोटा कमरा दे देते। लेकिन आज तक कभी अपनी तम्बी कमीज़ सीने के लिए आप ने मुझे नहीं दी।"

"तम्बी कमीज़ ? लेकिन भाभी मैं तो तम्बी कमीज़ पहनता ही नहीं।" नन्दलाल ज़रा घबरा गया। सीता ने मुसकरा कर कहा—

'आप पहनते होते तब भी आप मुझ से नहीं सिलाते। आप से छिपा

तो है नहीं कि मेरी गुज़र बसर इसी मशीन की मज़दूरी पर है, फिर भी... और दूसरी तरफ हैं मुहल्ले की ये औरतें। मेरी पीठ पीछे मेरी हज़ार निन्दा करती हैं, तोहमतें लगाती हैं लेकिन उन्हीं की बदौलत मेरे पास सिलाई का इतना काम है कि दिन रात मशीन चला कर भी इसे पूरा नहीं कर पाती हूँ।''

''तेरे हाथ की सिलाई में सफाई है भाभी, और तू उजरत भी कम लेती है, सीने का काम तेरे पास क्यों न आएगा ?'' नन्दलाल ने चतुराई से उस की प्रशंसा की।

''यह बात नहीं है देवर जी ! चार पैसों की बचत समझ कर यह काम मेरे पास नहीं आ रहा। यह काम तो दरअसल मेरी बदनामी की देन है। मुझे बहाने से देखने आने की कीमत है। मुहल्ले की यह भोली नेक औरतें मेरे बारे में जब कई तरह की रंग बिरंगी बातें सुनती हैं, तब कौतूहल से मुझे देखने आती हैं। पर खाली हाथ कैसे आएं ! सो एक आध कपड़ा सीने के लिए ले आती हैं। शुरू शुरू में मुझे घूर घूर कर देखती हैं, परखती हैं, तोलती हैं और फिर मेरी हमदर्द, मेरी सखियां बन जाती हैं। अब मुहल्ले में मेरे विषय में जो जो चर्चा होती है, वे ही आ कर एक एक बात मुझे सुना जाती हैं। मैं कैसे कहूं कि ये औरतें बुरी हैं ? लाख निन्दा अपवाद करें पर, मेरी परवरिश भी तो वे ही कर रही हैं। क्यों झूठ है देवर ?'' सीता ने मुसकरा कर पूछा।

नन्दलाल अवाक् हो कर उसे देखता रहा, कुछ बोला नहीं।

''मुझे डर इन की इस निन्दा बदनामी करने का नहीं, नन्दू भय्या, मुझे डर उस दिन का है जब इन सभी को मुझ से हमदर्दी हो जाएगी। उस दिन मेरा यह काम घट जाएगा। फिर तो उन के साथ मित्रता का नाता निभाने के लिए मुझे मन्दिर शिवालय भी जाना पड़ेगा, सत्संग कीर्तन में भी शामिल होना पड़ेगा और इन के यहां शिष्टाचार निभाने के लिए भी आना जाना पड़ेगा। मेरा धन्धा रुकने लगेगा। इसलिए इन सरल निन्दक नारियों से अपना यह मौजूदा रिश्ता मुझे बड़ा रास आ रहा है। यह बदनामी मेरे लिए ठंडी छांव का काम दे रही है। इस के संरक्षण में मेरा परिवार पल रहा है। मैं तो सच पूछिए, देवर जी, बड़ी सुखी हूं, बड़ी निश्चिन्त हूं।''

नन्दलाल ने आंगन में दो स्त्रियों को बातें करते आते सुना, तो वह उठ कर खड़ा हो गया। घंटा डेढ़ घंटा तो उसे हो गया था वहां बैठे।

''अच्छा भाभी, अब चलता हूं।'' कह कर नन्दलाल कमरे से बाहर आया, तो दोनों औरतें उसे घूर घूर कर देखने लगीं।

एक ने आँखों के इशारे से प्रश्न किया—''अरी यह कौन था ?''

दूसरी ने ओंठ बिचका कर गर्दन को हलका सा झटका दिया, जैसे कह रही हो—' मुझे क्या मालूम !''

और फिर दोनों सीता के पास दरी पर जा बैठीं।

जीते की मौत

पुष्करनाथ

३१ मार्च उन्नीस सौ इकासठ को, रात के ठीक बारह वजे, जव वह अपनी कोठी 'बसरा बिल्डिंग' के उत्तार-पूर्वीय कमरे में सो रहा था, मौत के देवता ने उसका द्वार खटखटाया। इत्फाक से उसी दिन देश की द्वितीय योजना ने अपने विकास के अन्तिम सोपान को पार किया था।

' तुम्हारा नाम लाला गोसाईं दास है?"

"जी महाराज!" उसने उत्तार दिया।

"तुम पी० डबल्यू० डी० के कॉंट्रैक्टर हो?"

"जी, महाराज।"

"तुम्हारे पिता का नाम मिस्त्री रामदास था?"

"जी, महाराज।"

"तो चलो—मेरे संग आओ।"

"कहां?"

"दूसरी दुनिया में—अर्थात यमपुरी..."

यह सुन कर उसकी आंखों के आगे अन्धकार छा गया, इस अन्धकार में उसे अपनी पत्नी का मुख दिखाई दिया, जो आराम से अपने पलंग पर सो रही थी। यह मुख शीघ्र ही लुप्त हो गया और उसका स्थान उसके बड़े पुत्र ने ले लिया जो ग्लास्गो, इंगलैंड में इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त कर रहा था।

यह मुख भी अन्धेरे में खो गया और अब उसके दूसरे पुत्र का मुख प्रकट हुआ जो अलीगढ़ विश्वविद्यालय में डाक्टर बनने के यत्न में था।

फिर यह मुख भी ओझल हो गया और उसकी इकलौती बेटी का भोला-भाला मुख उभर आया जिसका विवाह उसने गत वर्ष सेठ पञ्चमलाल के तीसरे पुत्र, बिहारी लाल के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ सम्पन्न किया था और जिसके दहेज में उसने एक लाख रुपये का चैक भी सम्मिलित किया था।

फिर यह मुख भी अदृश्य हो गया और उसके सम्मुख उसका बैंक-एकाउंट आ गया और उसने अन्धेरे ही में हिसाब लगा कर देखा, कुल अठारह लाख नव्वे हजार और दो सौ दस रुपये बनते थे।

इस के बाद यह कागज भी उसके सामने से हट गये और एक फटी-पुरानी बैंक-पास-बुक सामने आ गई। पहले तो वह उसे पहचान न सका परन्तु ध्यान से देखने पर पहचान गया। यह उसकी १९५५ की पास-बुक थी। इस में कुल एक सौ नौ रुपये और दस आने जमा थे। इसे वह भूल ही गया था।

फिर सब कुछ समाप्त हो गया और एक काला-कलूटा क्रूर हाथ सामने आ गया।

देखते ही देखते यह हाथ फैल गया, फिर हाथ उसकी गर्दन की ओर लपका और उसके गले से एक घुटी हुई चीख निकली।

जब उसकी चेतना लौटी तो क्या देखता है कि एक देवता उसका हाथ थामे उसे एक असीम मरु की ओर ले जा रहा है। ऊपर सूर्य की किरणें इतनी प्रखर थीं कि उसकी त्वचा को छेदती चली जाती थीं और नीचे रेत इतनी गर्म कि पांव में छाले पड़ जाते थे। चलते चलते उसे ठोकर लगी और वह नीचे गिर गया।

"देख कर क्यों नहीं चलते ?" देवता ने डांटा।

"पांव ज़ख्मी हो गये हैं, महाराज।"

"अगली पड़ाव पर मरहम-पट्टी होगी।" देवता ने उत्तर दिया।

"अगली पड़ाव कितनी दूर होगी अभी ?"

"सात लाख मील।"

"तब तक तो मैं मर जाऊंगा।"

"तुम इस समय भी जीवित नहीं हो।"

"यहां कोई टैक्सी आदि नहीं मिल सकती ? मेरी गाड़ी तो गैरेज में होगी ?"

देवता के ओठों पर मासूम सी मुस्कान खिल उठी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"अच्छा, आप पैसों के विषय में सोच रहे होंगे कोई बात नहीं, पैसे मैं देता हूं। मेरा इस तरह से पैदल चलने का स्वभाव नहीं है।"

देवता के ओठों पर विषैली मुस्कान फैल गई।

लाला गोसाईंदास क्रोध से भड़क उठे।

"अजीब आदमी हो भई, मैं मर रहा हूं और तुम मुस्करा रहे हो।"

उसका क्रोध देखकर देवता तनिक गम्भीर हो उठा। उसने अपना तेजस्वी हाथ पसार कर कहा—"लाओ पैसे दे दो, मैं टैक्सी मंगवाता हूं।"

उसने जेब टटोलने के लिए हाथ को हरकत दी, परन्तु यह क्या? वह तो बिल्कुल नंगा था। उसके शरीर पर कोई वस्त्र न था। सहसा उसके चारों ओर अन्धेरे घिर आये। उसने उस अन्धेरे में आंखें फाड़ फाड़ कर देखना चाहा। उसके चारों ओर नोट ही नोट हवा में फड़फड़ा रहे थे। परन्तु उसके हाथ में एक भी न आ रहा था। उसका क्रोध और भी बढ़ गया। अन्धेरे की परतें और अधिक गहरी हो गईं। उसने नये माडल की कार अपने गैरेज में देखी। उसका ड्राईवर अपने कमरे में सो रहा था। उसने ड्राईवर को पुकारा, परन्तु कोई उत्तर न मिला। उसने फिर पुकारा। और उसी समय एक ज़ोरदार अट्टहास ने उसका मुँह चिढ़ाया।

"मैं देखता हूं तुम्हें भी और तुम्हारे अट्टहास को भी।"—वह दहाड़ा और देवता की ओर लपका।

लेकिन इससे पूर्व कि देवता की गर्दन उसके हाथ में आती, वह धड़ाम् से धरती पर गिर पड़ा और उसके गले से चीख निकल कर मरु की असीमता में बिखर गई।

बहुत देर के बाद उसने फिर आँख खोली तो क्या देखता है कि सामने सोने का एक देदिप्यमान स्तूप है, जिस पर बैठा कोई श्वेत-वस्त्रधारी वृद्ध एक वृहद् सजिल्द पुस्तक सामने रखे उसके पन्ने उल्ट रहा है। और सामने लोगों की लम्बी कितार खड़ी है। देवता ने उसके कान में कहा—

"यही वह पहला पड़ाव है जहां पहली जांच-पड़ताल होगी।"

"किस बात की जांच-पड़ताल?"

"तुम्हारे कर्मों की!"

"परन्तु मैंने कोई पाप अथवा अपराध नहीं किया है!"

"वह तो पुस्तक ही बतलायेगी। चलो लाईन में खड़े हो जाओ!"

वह लाईन में खड़ा हो गया।

लाईन में खड़े खड़े उसने सब लोगों पर एक उड़ती हुई दृष्टि डाली। वह उनमें से कई व्यक्तियों से परिचित था, परन्तु किसी ने उससे कोई बात न की। 'कमीने कहीं के!' उसने सोचा। आज कल लोगों में कृतज्ञता क्यों नहीं रही है!

अब देखो वह जो लाईन में तीसरे नम्बर पर खड़ा है, वह सरदार जसपाल सिंह है जब मैं गवर्नमैंट कालेज-बिडिल्ग का काम कर रहा था तो यह ओवरसियर था। मैंने इसे पूरे अढ़ाई हज़ार रुपये मिठाई के लिये दिये थे, परन्तु इस समय उसने देख कर गर्दन यूं फेर ली थी, जैसे मुझे कभी देखा ही न हो।

और वह—वह जो मेरे बाद दसवें नम्बर पर है, यह वही कफन-चोर कुन्दनलाल है। अगर उस दिन मैं इसकी सहायता न करता तो अब तक यह दिवालिया हो गया होता। न जाने कहां से डेढ़ हज़ार बोरियां मिलावट वाला सीमेन्ट खरीद लाया था। वह तो इसका भाग्य अच्छा था कि उन दिनों मुझे 'राहे खुदा' बांध का काम मिल गया था। और मुझे सीमेंट की आवश्यकता थी। बस फिर क्या था—दो ही सप्ताह के अन्दर डेढ़ की डेढ़ हज़ार बोरियां निकाल लाया। अब यदि यही बात इसे याद दिलाई जाये तो कहेगा—'लाला जी, आपने भी उस बान्ध पर नव्वे हजार रुपये कमाये थे।' धूर्त कहीं का। गोसाईं दास तो वैसे भी कमा लेता। अढ़ाई लाख के ठेके में आदमी नव्वे हज़ार न कमाये तो धिक्कार है ऐसे काम पर।

और गोसाईं दास को तो अधिक क्रोध उस व्यक्ति पर आ रहा था, जो उसके ठीक सामने खड़ा था। अरे, यह वही उसके डिवीज़न का एकौंटैंट है। लाला से हज़ारों रुपये कमाए हैं, इसने। हर बिल पर अपनी दर के हिसाब से कमीशन काट लेता था। काम कोई करे, पैसा कोई लगाये, टैंडर कोई दे, इसे अपनी कमीशन से वास्ता। अभी-आज ही-लेकिन आज न जाने कौन सी तिथि है—मेरा अभिप्राय इकतीस मार्च उन्नीस सौ इकासठ से है—जी हाँ, आज ही यह मेरे बिलों में से एक हज़ार नौ सौ बहत्तर रुपये ऐंठ चुका है। कारोबारी साल का अन्तिम दिन था न—इस दिन तो इन लोगों का दिमाग आकाश पर होता है। इस वक्त देखो मेरी तरफ देखता भी नहीं। कल ही डिवीज़नल इंजीनियर के पास शिकायत करूँगा। गोसाईंदास ने सोचा।

अभी वह इन्हीं विचारों में मग्न था कि उस सफेद वस्त्रधारी वृद्ध की आवाज़ चमकते हुए स्तूप पर से गूँज उठी—

"ऐ इन्सानों! अगले पड़ाव पर तुम्हारी स्मरण-शक्ति छीन ली जायेगी। तब तक अपने कर्मों के विषय में सोचो और उपासना में खो जाओ और यह मत भूलो कि अब तुम जीवित नहीं, मरे हुए हो। पृथ्वी पर तुम लोगों का क्रिया-कर्म हुए चालीस दिन बीत गए हैं।"

"हरे राम! तो इसका तात्पर्य यह है कि आज मई की १० तारीख है।" लाला गोसाईंदास इस विचार से चौंक उठा।

न जाने उसके 'बिलों' का क्या हुआ होगा—और उसका वह पुल तो अब

तक बन जाना चाहिए था। अभी इंजीनियर साहब से भी मिलना है। उसने सोचा परन्तु साथ ही उसे विचार हुआ कि वह तो मर चुका है। लेकिन नहीं-- विश्वास नहीं होता।

"चलो जल्दी करो।" देवता ने उसे झिड़क कर कहा।

"कहां जाना है ?"

"अपनी बैरक में—और कहां ? आज गुम्बद का काम समाप्त हो गया है। अब कल फिर लाईन में खड़ा होना पड़ेगा।"

यह कहकर देवता ने उसका हाथ थाम लिया और एक बैरक में ले गया वहां इस कोने से उस कोने तक लोग सोये पड़े थे। वह उसे वहाँ छोड़ कर छिप गया और लाला अपने कर्मों के विषय में सोचते-सोचते सो गया।

स्तूप वाले वृद्ध ने सिर हिला कर कहा—

"पुस्तक में लिखा है कि तुम ने अर्थात् पटवर्धनलाल हल्दी वाला ने सारी उमर पिसी हुई हल्दी में जौ का आटा मिला कर लोगों को ठगा है। तुमने वनास्पती घी में रंग मिला कर असली घी के नाम से बेचा है। तुमने चावलों में सफेद रंग के कंकर मिलाए हैं। इस प्रकार लोगों की जेबों पर डाका डाला है— तुमने—"

"क्या बात करते हो साहब, ज़रा साबित करके दिखा दो—आज तक कोई माई का लाल यह बात साबित नहीं कर सका।" पटवर्धनलाल ने विरोध किया।

यह आज की लाईन का प्रथम व्यक्ति था। लाला गोसाईंदास जलती धूप में खड़ा सब सुन रहा था। पर वह प्रसन्न था क्योंकि उसने कोई ऐसा पाप नहीं किया था। जाने लोग ऐसे तुच्छ काम क्यों करते हैं ?

"पटवर्धनलाल हल्दी वाला को नरक की बहत्तर नम्बर भट्टी में झोंक दिया जाये।" वृद्ध ने निर्णय दिया।

गोसाईंदास ने सोचा, बहुत कड़ी सज़ायें देता है।

"दूसरा आदमी ! पुस्तक में लिखा है—तुम, अर्थात् घसीटूराम अण्डों का कारोबार करते थे।"

"जीवन भर—शरकार !"

"किस प्रकार की मिलावट करते थे ?"

"हे-हे-हे-हे-का बोले शरकार "अण्डे में मिलावट कैसे होवत है ?"

यह सुन कर वृद्ध को हंसी आ गई।

गोसाईंदास को भी हंसी आ गई। ठेकेदारी और अण्डों का कारोबार उसे एक ही जैसे ईमानदार कारोबार दिखाई दे रहे थे।

"इसे दूसरे पड़ाव पर निर्णय के लिये भेज दिया जाये।"

गोसाईंदास ने अपने देवता से पूछा—"दूसरे पड़ाव पर इसे क्या करेंगे ?" उसने उत्तर दिया कि वहां इसे स्वर्ग का पास-पोर्ट मिलेगा।

"तीसरा आदमी ! पुस्तक में लिखा है; तुमने अर्थात् सेठ चाननचन्द ने लोगों को नकली दवाईयां और कीमती इंजैक्शनों के बदले डिस्टिल्ड वाटर के ट्यूब वेचे हैं। सादा पैंसलीन की बोतलों पर कीमती इंजैक्शनों के लेबल लगा कर ब्लैक मार्केट में बेचा है। वह भी लिखा है कि तुमने इस प्रकार नौ मर्दों, ग्यारह स्त्रियों और चौबीस बच्चों को समय से पहले मृत्यु की गोद में सुला दिया।"

"यह सब झूठ है - बिल्कुल झूठ। क्या प्रमाण है आपके पास ?" सेठ चाननचन्द ने गरज कर कहा।

"प्रमाण की आवश्यकता संसार की अदालतों में होती है। आज्ञा दी जाती है कि इसकी दोनों आँखें निकाल कर और दोनों हाथ काट कर इसे वृक्ष पर उल्टा लटका दिया जाये और नीचे आग जलाई जाये।"

"यू स्वाईन ! मैं तुम्हें गोली मार दूंगा—आई विल किल्ल यू।"

सेठ चाननचन्द गला फाड़ फाड़ कर चीखने लगा, परन्तु दो काले वस्त्रों वाले दूत उसे ले गये।

लाला गोसाईंदास ने धीरज की सांस ली। इसलिये कि न तो वह दवाई वेचने वाला है और न उसने किसी को मार डाला है। वह एक सीधा-सादा कांट्रैक्टर है। गवर्नमैंट का काम करता है और पैसे लेता है।

"चौथा आदमी ! तुम अर्थात् सन्तोखसिंह ने अपनी उमर में इक्यावन आदमियों को भिन्न भिन्न समयों पर घूस दी है। स्वयं भी पाप किया है और उन्हें भी पापी बनाया है।" वृद्ध ने चौथे आदमी से कहा।

"ज्ञानी जी, तुसी जानदे हो के हुन रिश्वत न देइये ते साब लोकी छित्तर मारदे हन।" चौथे आदमी ने वहाना बनाया।

"हमें इस बात से कोई सरोकार नहीं कि घूस देने से क्या होता है और क्या नहीं होता। इसलिये आज्ञा दी जाती है कि इसके दोनों हाथ काट कर इसे मरुस्थल में छोड़ दिया जाये।"

यह सुन कर लाला गोसाईंदास के दिल की धड़कनें तेज़ हो गईं। उसने सोचा कि उसने जीवन में हज़ारों लोगों को घूस दी है, परन्तु नहीं, घूस तो कोई

दूसरी चीज़ है--उसने केवल कमीशन दी है। ओवरसियरों को कमीशन, असिस्टैंट इंजीनियरों को कमीशन, एकौंटैंटों को कमीशन और जहां नकद कमीशन नहीं दी थी—वहां चाय दी थी, पार्टी खिलाई थी, शराब पिलाई थी, मिठाई और बखशीश दी थी। यह चीज़ें तो घूस कदापि नहीं हो सकतीं। वह अभी इन्हीं सोचों में खोया था कि उसको देवता ने ठोकर मारी—"चलो बैरक में सो जाओ। तुम्हारी बारी कल आयेगी।"

बैरक में जाकर भी लाला के मस्तक की व्याकुलता बराबर बनी रही। उसे हर पल वृद्ध पर क्रोध आ रहा था। यह भी कोई बात हुई कि किसी को घूस दो और दण्ड भी भुगतो। पर वह यूंही डर रहा था उसने घूस दी ही नहीं थी। सोचते सोचते उसे विचार आया कि एक बार जब वह शीशम नाले का पुल बनवा रहा था तो एक मजदूर काम करते करते मिट्टी के नीचे दब कर मर गया था। वैसे तो उसे उसके बच्चों को तीन सौ रुपये हरजाना देना था परन्तु उसने हेर-फेर से काम लेकर उन्हें कुछ भी नहीं दिया था। पर, यह तो तुच्छ बातें थीं। किताब में ऐसी बातें कहां लिखी होंगी। उसे यह भी विचार आया कि गर्वनमैंट हस्पताल की नई बिल्डिग बनाने में उसने देवदार की लकड़ी लगाने के बदले घटिया 'कील' की लकड़ी लगा दी थी। इस बात को छुपाने के लिये एक इंजीनियर को दो हज़ार रुपये दिये थे। पर यह तो कारोबारी भेद हैं। किताब में इस घटना का वर्णन कहां होगा। उसे यह भी विचार आया कि उसने सम्बन्धित कर्मचारियों को कमीशन देकर बांध पर घटिया मसाला प्रयोग किया था जिसके कारण वह साल भर ही में दरक गया था। पर यह भी कारोबारी वारीकियां हैं। पुस्तक में इन बातों का क्या काम ? पुस्तक में वही बातें होंगी जो कुछ गम्भीर प्रकार की हों। जैसे दवाओं में मिलावट, खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट, लोगों की जानें लेना अथवा घूस देना आदि। राम-राम, यह लोग सचमुच ही बड़े पापी हैं। इन्हें दण्ड मिलना चाहिये। लाला तो हमेशा परमात्मा से भय खाता रहा है। प्रातः मन्दिर भी जाता रहा है और यह बात तो सचमुच वह भूल ही गया कि विधवा-आश्रम की नई बिल्डिग का ठेका भी उसी ने लिया था। और बड़ी पवित्रता से इस काम को निभाया था अर्थात् चालीस हज़ार के काम में से केवल नौ हज़ार रुपए कमाए थे।

सोचते सोचते लाला गोसाईंदास को एक और बात याद आई। न जाने आज उसे ये बातें क्यों याद आ रहीं थीं। उसकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र न थी। उसे याद आया कि नए कालेज की बिल्डिग में उसने सीमेंट के काम में—पचहत्तर प्रतिशत सीमेंट, पन्द्रह प्रतिशत चूना और दस प्रतिशत रेत की बजाए बीस प्रतिशत सीमेंट, पचहत्तर प्रतिशत रेत और पाँच प्रतिशत चूना लगाया था, और

जब इंजीनियर ने जांच की थी तो उसका मुंह बन्द करने के लिये तीन हज़ार रुपये दिये थे ।

भगवान् न करे ! यदि यह रकम घूस वाले पन्ने पर लिखी गई हो तो ? —परन्तु नहीं, वह कह सकता है कि यह कारोबारी बातें हैं । यह घूस कदापि नहीं कही जा सकती । परन्तु यह श्वेत वस्त्रधारी वृद्ध तो एक भी नहीं सुनता । अजीब आदमी है । धूर्त ने यह विचित्र पुस्तक लिखी है ! इस पुस्तक का भरोसा ही क्या ? सोचते सोचते लाला गोसाईंदास को ख्याल आया कि यदि यह पुस्तक गुम कर दी जाए तो ? हां, बहुत अच्छा ख्याल है । इस पुस्तक को गुम होना ही पड़ेगा । उसने सोचा कि मैं इस पुस्तक को चुरा लाऊंगा । लोग कड़ी सज़ाओं से बच जायेंगे । वैसे, मेरा अपना रिकार्ड तो बिल्कुल साफ होगा । होना ही चाहिए । यह ख्याल आते ही उसने बैरक में इस कौने से उस कोने तक नजर दौड़ाई । सब लोग सो गये थे । सब देवता और मौत का दूत भी, न जाने, कहाँ चले गये थे । वह उठा और अन्धेरे में टटोलता हुआ बैरक से बाहर आ गया ।

बाहर आकर लाला गोसाईं दास को ख्याल आया कि सम्भव है 'स्तूप में कोई देवता उस पुस्तक की रखवाली कर रहा हो । परन्तु देख लेने में क्या हानि है ? यदि किसी ने देख लिया तो कहूंगा तनिक लघुशंका निवारण के लिये बाहर आ गया था ।

वह दबे पांव स्तूप की ओर बढ़ा । स्तूप में कोई पहरेदार न था । सुर्ख पत्थर की बनी हुई मेज़ पर वह पुस्तक पड़ी थी । वह स्तूप के सोपान पर चढ़ा । अब मेज़ पर रखी हुई पुस्तक ठीक उसके सामने थी । उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था । वह धीरेधीरे मेज़ की ओर बढ़ा और उसने एक ही झपटे में पुस्तक को उठा लिया । पुस्तक बगल में दबाए वह तेज चलता, स्तूप की पिछली सीढ़ियों से नीचे उतर गया और एक झाड़ी में छिप कर सोचने लगा । अब इस पुस्तक का क्या किया जाए ? उसका दिल फिर ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा । यदि देवता ने देख लिया तो ? परन्तु यहां तो कोई भी नहीं दीख रहा । उसने एक बार पुस्तक खोल कर देखनी चाही । पुस्तक का कागज गहरे नीले रंग का था । और उस पर सफ़ेद रंग की स्याही से कुछ लिखा हुआ था । नीला रंग और सफेद रंग की लिखाई ? यह मैं पहले भी कहीं देख चुका हूं । उसे ख्याल आया, परन्तु इसको कहाँ छुपाऊँ ? यहाँ से भागना तो असम्भव है । वह सोचने लगा सोचते सोचते उसे ख्याल आया क्यों न इस पुस्तक को जला दिया जाए ? ताकि न रहे बांस और न बजे बांसुरी। परन्तु कैसे जलाया जाए ? माचिस तो उसके पास है नहीं, और आग भी वहां कहीं दिखाई नहीं देती । फिर क्या किया जाए ? उफ, समय निकला जा रहा हैं । सहजा उसे ख्याल आया और वह उछल पड़ा। ओ हो ! मैं भी

कितना मूर्ख हूं, क्यों न मैं इस पुस्तक को खा जाऊं? ठीक है, मैं इसे खा जाऊंगा। समय तो लगेगा। परन्तु इसके सिवाय कोई चारा भी नहीं है। और वह किताब का एक-एक पन्ना फाड़ कर खाने लगा। उसके जबड़े दुखने लगे और वह सोचने लगा, काश वह एक गधा होता जिससे पुस्तक चबाने में सरलता रहती।

बसरा बिल्डिंग के उत्तर-पूर्वी बैंड-रूम में लगे हुए क्लाक ने नौ बजाए। बैंड-रूम की खिड़कियों से सूर्य की किरणें कमरे में प्रविष्ट हो कर, कमरे के आकर्षण और डिज़ाईन में चार चान्द लगा रही थीं। इतने में श्रीमती गोसाई दास ने बैंड-रूम का दरवाज़ा खोला और अन्दर आई।

अन्दर आते ही उनके गले से एक ज़ोर की चीख़ निकली और बसरा बिल्डिंग के वातावरण में गूंज उठी।

सामने लाला गोसाईदास, कान्ट्रैक्टर, सुन्दर कालीन पर बेसुध पड़ा था। उसके होंटों से खून बह रहा था। और 'राहेखुदा-डैम' के नीले प्रिंट इधर-उधर बिखरे पड़े थे, जिनमें से कुछ उसने चबा-चबा कर फैंक दिये थे। कुछ उसके मुंह में थे और कुछ हाथ में।

बाहर देश की तीसरी पंच वर्षीय योजना का आरम्भ हो गया था।

●●●

योग खण्डित

नरेन्द्र खजूरिया

जेठ महीने की एक दोपहर ।

मैं भूख और गर्मी से बेहाल आफिस से लौट रहा था । अपनी गली की नुक्कड़ में पहुंचा तो कानों में किसी स्त्री के दहाड़ें मार मार कर रोने की आवाज़ सुनाई दी । चाहे, अपनी उम्र भी रोते ही बीती है । फिर भी किसी को रोते सुन कर दिल टूट जाता है । मेरी चाल मद्धिम पड़ गई । मन किसी अज्ञात शंका में डूबने लगा । रोने की आवाज हमारे घर की ओर से ही आ रही थी । बिजली के खम्बे के पास खड़ा होकर मैं यह निर्णय करने लगा कि यह कौन दुखिया रो रही है । घर में तो केवल पत्नी ही थी । वे विला नागा, प्रतिदिन हमारे सिरहाने बैठ कर रो लेती थीं । उनका स्वर अपना जाना पहचाना है । यह उनकी आवाज नहीं थी । फिर हमारे होते-जीते भला उन्हें रोने की क्या जरूरत थी । वैसे भी वे पंचम स्वर में तो कभी नहीं रोती थीं ।

सहसा, सैन्ती बुआ मेरे समीप आकर खड़ी हो गई । इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूं, वे फूट पड़ीं—"निन्दो ! तुम यहां खड़ें क्या कर रहे हो ? जल्दी घर जाओ । कमला की मां मर गई है ।"

मुझे लगा किसी ने बिजली के खम्बे पर पत्थर दे मारा हो और उसकी गूंज मेरे शरीर से हुई हो ।

कमला मेरी पत्नी का नाम है ।

घर पहुंचा । मुहल्ले भर की औरतें वहाँ जमा थीं । उन्हीं के बीच में से पत्नी की दहाड़े मार-मार कर रोने और छाती कूटने की आवाजें आ रही थीं ।

भारी कदमों से सीढ़ियां चढ़कर मैं अपने कमरे में जा बैठा। अपनी सास की इस आकस्मिक मृत्यु ने मेरी देह को निढाल कर दिया था। सचमुच ही वे बड़ी दयालू और दूरदर्शी महिला थीं। उन्होंने अपनी बेटी अर्थात् मेरी धर्मपत्नी के नाम अपनी सारी जायदाद पहले ही लिख दी थी। यदि उस समय उन्होंने वसीयत न की होती तो आज उनके निकट सम्बन्धी कई झंझट खड़े करते।

सहसा सैन्ती बुआ ने कमरे में पदार्पण किया। वे कमर पर हाथ रख कर कुछ इस अन्दाज से मुझे घूर घूर कर देखने लगीं जैसे अपनी सास की मृत्यु की जिम्मेदारी मुझ पर ही हो। "निन्दो ! यह समय पंखा खोल कर बैठने का नहीं। तुम्हारे ये मुए पंखे तो बांहे पसारे घूमते ही रहेंगे। जाने वाली वेचारी चलीगई।' अपनी अश्रुरहित आंखें चादर से पोंछते हुए बोलीं–"कमला ने रो-रो कर क्या हालत कर रखी है। और तू आकर मजे से पंखे के नीचे बैठ गया। बेटा ! सास रोज रोज नहीं मरती। लोकाचार के लिए ही दो-एक दहाड़ें तुम्हें भी मार देनी थीं।"

मैंने कहा—"बुआ ! मेरी दहाड़ें सुन कर क्या वे लौट आएँगी ?"

बिना कोई उत्तर दिए बुआ तेजी से मुड़कर कमरे से बाहर चली गईं।

सिवाए चाची जैन्ती के हमारा सारा मुहल्ला बुआ सैन्ती से डरता है। परन्तु इस समय मैं इन दोनों से भयभीत था। ऐसे 'सुअवसर' पर इनके हाथों में 'फुल कमाण्ड' होती है। मैंने झट पंखा बन्द किया और नीचे दरी पर, सिर थाम के बैठ गया।

थोड़ी देर में बुआ सैन्ती और चाची जैन्ती मेरी टोह में वहाँ आ पहुंची। चाची जैन्ती ने पहले बन्द पंखे को देखा, फिर मुझ से मुखातिब हुई – "निन्दो बेटा ! सब जानते हैं कि मां जिसकी मरी है उसी की मरी है। जो घाटा सो उसे। पर, वह तेरी भी तो कुछ लगती थी। उसका भी तुम्हारे सिवा अपना कौन था ?"

अब बुआ सैन्ती की बारी थी—"अपने कुत्ते-बिल्ली के मरने पर लोग 'छम-छम' रोते हैं। वह तो तेरी सास थी। ......मेरी मां मरी तो मोहन के पिता ने छै महीने एक जून खाना खाया था। मुझे देख उनकी आंखों में 'छम-छम' आंसू बहते। कहते, सैन्ती ! तेरा इस संसार में कोई अपना न रहा। इस बार बुआ की आंखों से सचमुच के आंसू बह निकले। जिन्हें उसने पोंछा नहीं। फिर मेरी शुष्क आँखों की ओर देखते हुए चाची जैन्ती से बोलीं..."बहना ! ये आंसू ऐसे नहीं बहते। दुःख जब हड्डियों में जाकर रचता है तब कहीं इन पानी के चिरागों में जोत जलती है।"

चाची जैन्ती ने मेरे सिर को सहलाते हुए कहा—"बेटा ! लोग क्या कहेंगे। मरने वाली की आत्मा क्या सोचेगी ? कमला क्या कहेगी ? तेरी मां मरी थी तो रो-रो कर कमला का गला बैठ गया था। लेकिन बलिहारी जाऊँ उसके, गर्म

पानी के कुल्ले कर-करके बराबर तेरह दिन तक रोती रही थी।" चाची ने एक निश्वास लेकर फिर कहना शुरू किया - "करनी भगवान की देखो। आज उसकी मां मरी, तो इस घर में उसके लिए रोने वाला भी कोई नहीं। यह कोई बसते घर के लच्छन हैं ?" चाची ने मेरी आंखों पर अपने हाथ की पट्टी रखते हुए, बड़ी कोमलता से कहा—"शाबाश ! मेरा अच्छा बेटा ! मेरे कहने पर केवल दो आंसू। देख, मैंने तुझे बचपन में गोद खेलाया है। रोते को हँसाया है। अब मेरे कहने पर केवल . . .।"

चाची अब मेरे सिर को धीरे धीरे सहला रही थीं जैसे झाड़-फूंक कर रही हों जिससे मेरी आंखों से अपने आप आंसुओं की झड़ी लग जानी हो।

मैंने बड़ी आजिज़ी से कहा—"मुझ से यह सब न होगा। मुझे शर्म लगती है।"

बुआ सैन्ती, जिसे डर था कि कहीं मैं चाची जैन्ती के कहने पर सचमुच ही न रो दूं, गुस्से में बोलीं–"छोड़, जैन्ती ! भला इसने क्या रोना, जो अपनी सगी माँ के लिए नहीं रोया था। आ, नीचे चलें, कमला भी चुप हो गई लगती है।"

मगर चाची जैन्ती इतनी जल्दी हार मानने वालों में न थीं, बोलीं "मैंने बड़ों-बड़ों को खून के आंसू रुलाया है। भला यह रोये तो रोये क्यों नहीं ? सास मरी है, कोई मखौल नहीं।"

नीचे अब मेरी पत्नी रो नहीं रही थी वरन् रोने के बहाने मुझे ताने सुना रही थी—"हाय मेरी अम्मा ! तेरे मरने का किसी को कोई दुख नहीं। जिनको तूने चूरियां दीं। आज उनकी ही आंखें पत्थर की हो गई हैं।"

मुझे लगा कि चाहे मेरा रोना मेरी सास के लिए जरूरी न हो मगर मेरे अपने लिए यह बहुत जरूरी है। नहीं तो सारी उमर के लिए रोना पड़ेगा।

बुआ सैन्ती और चाची जैन्ती अभी तक मेरी ओर ऐसे निहार रहीं थीं, जैसे पनिहारियां बन्द नल की ओर देखती हैं। मैंने उनसे दोनों हाथ जोड़ प्रार्थना की—"आपके सामने रोते मुझे शर्म आती है। आप नीचे जाएँ। मैं रोने का प्रयत्न करता हूं।"

बुआ को जैसे किसी ने उबार लिया। खुश होकर बोलीं–"जीते रहो बेटा ! भगवान तुझे......"

मगर चाची ने उनकी बात काट कर कहा—"मगर दहाड़ों की आवाज आस-पास के चार घरों तक सुनाई दे।"

मैंने अर्ज किया—"अपनी ओर से मुझे पूरी कोशिश करनी है। अब चार घरों में कोई न सुने इसमें मेरा क्या दोष ?

वे दोनों नीचे चली गई।

नीचे पाँच छः औरतों की मिली जुली आवाज सुनाई दी —"मान गया ?"

चाची बड़े गर्व से कह रही थीं—"हां, भला, मानता कैसे नहीं ?"

इस खुशी में मेरी पत्नी ने एक जोर की दहाड़ मारी—"हाय ओ मेरी अम्मा ऽऽऽऽऽ !"

हालांकि इस समय उसे 'अम्मां' शब्द के स्थान पर मेरा नाम लेना चाहिए था।

बुआ पत्नी को समझा रही थी—"अब तू जरा दम ले ले। ऊपर नीन्दो भी......"

अब मेरी हालत का अंदाजा आप उस स्टेज के अभिनेता से बखूबी लगा सकते हैं, जिसे स्टेज पर पांव रखते ही अपना पार्ट भूल जाए। घबराहट के मारे मैं कमरे में चक्कर काट रहा था। रोने के लिए एक दो बार मैंने अपना पूरा मुंह खोला। ठीक वैसा ही हुआ प्रायः जैसे सिनेमा-स्क्रीन पर होता है और दर्शक चिल्लाते है—'आवाज' 'आवाज'। मैंने लाख यत्न किये मगर भूखे पेट से कोई आवाज़ न निकली।

नीचे बुआ सैन्ती कह रही थीं—"नहीं, नहीं, वह बड़ा बेशर्म है। उसकी आंखों में आंसू कहां ?"

चाची जैन्ती मेरी पत्नी को कह रही थीं—"जा, खुद जा। उसे रुलाने का ढंग तुम्हें ही आता है।"

सुनकर मुझे ठण्डा पसीना आ गया। मारे डर के जितना मुंह खुल सकता था खोल दिया और जल्दी-जल्दी कमरे की ओर तेज चक्कर काटना शुरू कर दिया। सहसा दीवार से टंगे भोंपू पर दृष्टि पड़ी। चुनाव के दिनों का वहीं टंगा था। उसे मैंने ऐसी हसरत भरी नजरों से देखा जैसे कोई डूबता हुआ व्यक्ति किनारे की ओर देखता है।

भोंपू को मुंह से लगाकर मैंने एक जोर की फूंक मारी। पड़ोसियों का कुत्ता इस बेसुरी आवाज़ को सुनकर चौंक पड़ा, और मुंह ऊपर उठाकर—जोर-जोर से रोने लगा।

नीचे चाची जैन्ती खुश होकर सब को कह रही थीं—"सुना ! कितनी दर्दनाक दहाड़ मारी है।"

मेरी पत्नी ने अपनी छाती कूट कर कहा—"हाय, यह तो वे भोंपू बजा रहे हैं।" यही बात उसने अपनी स्वर्गीय अम्मा को भी कही—"अम्मा ! तेरे मरने की खुशी में इस घर में भोंपू बज रहे हैं।"

मैंने झटपट भोंपू को यथास्थान रख दिया और सिर पर हाथ धर कर जोर जोर की 'असली' दहाड़ें मारने लगा।

जब बुआ सैन्ती, चाची जैन्ती और मेरी पत्नी कमला ऊपर पहुंचीं तो मैं बेहोश पड़ा था।

पानी के छींटों से उन्होंने मुझे प्रकृतिस्थ किया। धीरे-धीरे आंख उठा कर मैंने उनकी ओर देखा। सहसा एक चीख मेरे मुंह से और निकल गई। इससे पहले मैं एक बार पुन: बेहोश हो जाता, चाची जैन्ती ने बड़े दुलार से डांटते हुए फर्माया—"बस, बस, बहुत हो चुका। अब जल्दी से ससुराल जाने की तैयारी करो। तुम लोगों के पहुंचने पर ही दाह-संस्कार होना है।"

मैंने तौलिया भिगो कर सिर पर रखा और गांव जाने को तैयार हो गया।

उस तपती दोपहर को छै कोस का पैदल सफर, उस पर पत्नी का बेसुरा क्रंदन। आधे रास्ते तक वह लगातार रोती रहीं। जब उसका गला बुरी तरह बैठ गया और रोने की बजाए उससे बड़ी भयंकर ध्वनियाँ निकलना शुरू हुईं तो उन्होंने चुप्पी साधी। अब, रास्ते में जब कोई घर या दुकान आती, वहां वह अपने मन के दुख को प्रकट कर लेतीं।

एक स्थान पर, एक दुकानदार, अपनी दूकान पर बड़ी मीठी नींद सो रहा था। पत्नी के रोने से हड़बड़ा कर जाग पड़ा। और पास आकर पूछने लगा—"यह बिचारी क्या विधवा हो गई है ? मैंने कहा—"नहीं, अभी नहीं।"

थके मांदे शाम को हम ससुराल पहुंचे। सामने गली से सिर पर घड़ा उठाए, मुस्कराती हुई, मेरी सास जी आ रही थीं।

"अम्मा ऽ...ऽ...ऽ...ऽ!" पत्नी ने एक चीख मारी और अपनी अम्मा से लिपट गई।

पानी से भरा घड़ा 'धड़ाम' से नीचे आ गिरा।

अब हंस-हंस कर वे अपनी बेटी को सुना रही थीं–"...तो पुरोहित जी ने यह समाचार शहर भी पहुंचा दिया।...परसों एक मुई छिपकली मुझ पर आ गिरी। पुरोहित जी ने इसे मृत्यु योग बताया।...और उसे ही खण्डित करने के लिए, यह बात फैलाई...।"

मेरा मन हुआ इस 'योग खण्डित' की खुशी में दहाड़ें मार-मार कर रोऊँ।

●●●

यात्रा संस्मरण

घनश्याम सेठी

नारायण मिश्र

काशीनाथ दर

चमनलाल सपरू

केदारनाथ शास्त्री

देवरत्न शास्त्री

गंगादत्त 'विनोद'

डा० कौशल्या वल्ली

चम्पा शर्मा

डा० वी० डी० शास्त्री

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

गुलमर्ग

घनश्याम सेठी

नीडोज, गुलमर्ग

प्रिय सूद,

छ: महीने गुजरे कि यहां की घोर उदासियों और नि:स्तब्धताओं के बीच घिर कर अंगीठी के निकट पांव पसार कर तुम्हें एक पत्र लिखा था, तब गुलमर्ग की यह समूची घाटी एक श्वेत अप्सरा के समान थी, पर आज यहां जिधर भी नजर जाती है हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती है, शीत बहुत पीछे रह गई है। अब तो नव-बहार है, सैलानियों के झुंड के झुंड घाटी में घूम रहे हैं। गुलमर्ग में भी अब वह अखरने वाली खामोशी का आलम नहीं बल्कि अब तो घोड़ों की टापों में भी एक संगीत-सा सुनाई पड़ता है और लय का आभास मिलता है।

यहां पहुंचे मुझे एक सप्ताह से अधिक हो गया है। श्रीनगर से चलते समय, इस बार मैंने निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो, तुम्हें पत्र नहीं लिखूंगा क्योंकि तुम तो यों ही बिगड़ जाती हो और मैं, मैं अत्यधिक भावुक हो उठता हूं। पर तुम्हें पत्र लिखते समय अपने को रोक नहीं पा रहा हूं। गुलमर्ग में अब काफी चहल पहल है। 'शीन पी-पी' की आवाज तो अलबत्ता अब सुनाई नहीं देती, पर अब अन्य कई अतिथि 'बारबर-बुशचेट,' 'लाफिंग-थर्श' इत्यादि सुबह शाम कूक कूक कर और सीटियां बजा बजा कर पर्यटकों का मनोरंजन करते हैं।

सर्दियों और गर्मियों के गुलमर्ग में बड़ा अन्तर है। यह अन्तर केवल पक्षियों, रंगों, फूलों और वातावरण तक ही सीमित नहीं है। सर्दियों का गुलमर्ग एशिया का सर्वोत्तम 'शी-इंग' स्थल है और गर्मियों का गुलमर्ग संसार का सर्वोतम

'गोल्फ ग्राउंड' यद्यपि यूसुफ शाह चक[1] ने सन् १५८० में जब सर्वप्रथम इस स्थान पर कुछ दिन विश्राम करने के लिए अपने शिविर गाड़े तो वह इस तथ्य से अनभिज्ञ था। गर्मियों का गुलमर्ग तो रंगारंग फूलों की एक क्यारी है और गुलमर्ग (फूलों की क्यारी) नाम भी इसी से सार्थक है। शायद इसीलिए अंग्रज़ों को यह स्थान बड़ा प्रिय था और महाराज हरिसिंह को उन्होंने तरह तरह के लालच देकर इसे हथियाना चाहा था।

जिन दिनों रावलपिंडी का रास्ता खुला था, गुलमर्ग कश्मीर की अन्य घाटियों की अपेक्षाकृत अधिक नजदीक पड़ता था इसलिए अधिकतर पर्यटक सीधे गुलमर्ग ही पहुंच जाया करते थे। किसी जमाने में इन घसीले प्लेटुओं पर केवल गद्दियों की भेड़-बकरियां चरा करती थीं; पर अब यहां क्लब है, सिनेमा है,[2] होटल है, बाजार है, मंदिर है, मस्जिदें हैं, चर्च हैं, पुलिस स्टेशन है, अस्पताल है, टेलीफोन है, बैंक है, अर्थात् आज का पर्यटक जो सभी आराम और सुविधाएं चाहता है वह यहां उपलब्ध हैं। पर गुलमर्ग में स्वतन्त्रता-पूर्व वाली रौनक अब नहीं रही। न जाने क्यों इसका अछूता सौंदर्य स्वदेश से आने वाले यात्रियों को लुभा नहीं पाता।

८,७०० फुट की ऊंचाई पर स्थित बीसियों घसीले पठारों का यह स्थल श्रीनगर से अठाईस मील दूर है। श्रीनगर से बारामूला तक जाने वाली सड़क के नवें मील (नारवल) पर एक सड़क गुलमर्ग की ओर मुड़ जाती है। रास्ते में कई छोटे छोटे गांव पड़ते हैं। मैं सुबह सवेरे निकला था। राह में बीसियों ग्वाले कन्धों पर दूध के घड़े उठाए हुए श्रीनगर की ओर जाते हुए मिले। कहीं कहीं सड़क गांव के बाजारों से होकर गुजरती थी जहां शबनम के समान चमकती हुई कश्मीरी ललनाएं बड़ी बड़ी टोकरियों में अंडे और प्याज लेकर बैठी हुई थीं। सड़क के दोनों किनारों पर सफेदों के ऊंचे ऊंचे वृक्षों की पंक्तियां एक अन्तहीन क्रम में खड़ी थीं। इन में से कई वृक्ष गल सड़ चुके थे और इनकी सूखी टहनियां अन्य वृक्षों की फैली हुई हरी हरी बाहों के बीच बड़ी अजीब सी लग रही थीं। कहीं कहीं सड़क फूली सरसों के खेतों के बीचोंबीच गुजरती थी। पीले फूलों की वह द्युति—लगता था, जैसे धरती पर पीले रंग की एक मखमली चादर सी बिछ गई हो।

कुछ दूरी के बाद एक छोटी सी पहाड़ी नदी सड़क के साथ साथ चलने लगी। कहीं कहीं इस नदी की उपनदियां पनचक्कियों की ओर मुड़ती हुई दृष्टि-गोचर हुईं, फिर धान के सीढ़ीदार खेत आ गए। ऐसा लगा जैसे उनमें बाढ़ आई हुई हो। सीढ़ियों का कोई क्रम ही न था, कोई आकार ही नहीं था।

(1) कश्मीर का रंगीला सम्राट, प्रसिद्ध कवयित्री हब्बा खातून का पति।

(2) कबाइली आक्रमणकारियों ने सिनेमा को जला दिया था।

एक के ऊपर एक, फिर एक, और इसी प्रकार यह क्रम चलता गया था। बच्चे बूढ़े, युवक, स्त्री और पुरुष घुटने घुटने पानी में खड़े नये धान के पौधे लगा रहे थे और छोटे छोटे लकड़ी के हलों को जल के डेढ़ दो फुट नीचे चला रहे थे। बैलों की दशा बड़ी दयनीय थी, उनकी टांगे लगभग पेट तक कीचड़ में धंसी हुई थीं पर फिर भी चाबुक की मार उन्हें पैर उठाने पर विवश कर रही थी। सैंकड़ों, हजारों की संख्या में धान के यह खेत सड़क के दोनों ओर छितरते चले गये थे। बच्चे, बूढ़े और जवान सब मिल कर गा रहे थे :—

'हैंरि वसहे चे असहे असहे सोन वसहे गिद ने
यावन ने तुजिम रसहे ताम वैरथू नादस आम,

(आकाश से प्रेम रस में डूबी हुई अप्सराएं हमारे आंगन में खेलने को) (उतरीं। मैंने जवानी की बहार में ज्यों ही कदम रखा मेरे ससुराल वाले मुझे लेने आ गये।)

नदी का पानी प्रत्येक ऊंचे खेत की मुंडेर में एक छेद करके खेत की नीचे वाली सीढ़ी में गिरा दिया गया था और नदी इन छोटे छोटे नालों में बट कर भी बड़ी स्वच्छन्दता से चट्टानों और पत्थरों के ऊपर भागी जा रही थी, जैसे अपना सर्वस्व लुटा कर भी वह इन किसानों के सुख-दु:ख में भागीदार रहना चाहती हो।

हमारी गाड़ी चढ़ाई के मार्ग पर चढ़ने लगी। इंजन की आवाज प्रतिक्षण तेज हो रही थी। दूर से खेत को सीढ़ीदार टुकड़ियां शीशे के क्रमहीन टुकड़ों के समान दिखाई दे रही थीं। नदी की धारा अनेक छोटी छोटी रूपहली धाराओं में बह कर हरेक सीढ़ी की टुकड़ियों को सैराब कर रही थी। अब जिन गांवों से सड़क गुजरती थी वे पहले गांवों से कुछ भिन्न से थे। ऐसा लगता था, जैसे उन्हें सड़क पर धकेल दिया गया हो। छोटा-सा बाजार, एक पुल विहीन नदी, पन्द्रह-बीस बच्चे और मुर्गियों के बीसियों चूजे!

सहसा सफेदे के वृक्षों की पंक्तियां अदृश्य हो गयीं और गाड़ी ने ऐसे बाजार में प्रवेश किया जिसके दोनों ओर लकड़ी की दुकानों की दो लम्बी लम्बी पंक्तियां दूर तक चली गयी थीं यह था टंगमर्ग—हमारी बस की यात्रा यहीं समाप्त हुई।

टंगमर्ग से गुलमर्ग तक यात्रा के यह अन्तिम चार मील घोड़ों पर या पैदल ही तय करने पड़ते हैं। टंगमर्ग से ऊपर चलें तो ऊँचाई पर से, नीचे फैली हुई घाटी में देखने पर द्रुतगति से बहता हुआ एक तूफानी नाला दृष्टिगोचर होता है। यही नाला फिरोजपुर है, जिसके दोनों ओर, दृष्टि की सीमा तक फैले हुए धान और मक्का के खेत दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें जहाँ-तहाँ खड़ी घास-फूस की झौंपड़ियाँ निगाह में बाधा बनने का विफल प्रयास करती हुई प्रतीत होती हैं। ज्यों ज्यों ऊपर चलें जंगल घना होता जाता है और कहीं कहीं ढलानों पर 'स्ट्राबिलेंथस' के गहरे-नीले और 'एकीनोसा' के नीम-हरियाले फूल दृष्टिगोचर होते हैं।

जनवरी के शुरू में जब पहले यहाँ आया था तब सरक्यूलर रोड हिम की एक मोटी दबीज परत के नीचे छिपी हुई थी, पर इस बार मेरे कदमों ने इस सड़क पर पड़े कई कंकड़ों को ठोकर लगा कर नीचे खाई में गिरा दिया। सरक्यूलर रोड लगमग चौदह मील लम्बी है और गुलमर्ग के चारों ओर साँप के समान लिपटी हुई है। कहीं नालों पर, तो कहीं हरे हरे लहलहाते हुए मखमली पठारों पर और कहीं चीड़ के घने जंगलों में इसकी राह है।

गुलमर्ग में प्रवेश करते ही जो वस्तु दृष्टि को पकड़ती है, वह चक्कर काटती हुई सड़कों, सिर उठाए हुए वृक्षों और हरियाले पठारों पर बह रहे झरनों के मध्य खड़ी दो छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं, जिनके शिखरों पर 'सेंट मेरी' चर्च और 'नीडोज होटल' स्थित हैं। गुलमर्ग क्लब इन पहाड़ियों की ढलान से जरा हट कर है, गोल्फ और अन्य खेलों की व्यवस्था के अतिरिक्त एक छोटी सी लाइब्रेरी भी है। पहली मई से पन्द्रह अक्तूबर तक यह क्लब खुला रहता है।

मैंने इस सप्ताह खिलनमर्ग, निगल, लीनमर्ग, फिरोजपुर नाला, बापम ऋषि अलापत्थर और काँतरनाग की झीलें इत्यादि अनेक स्थान देखे हैं। यूं कहो मेरे ये आठ दिन यात्रा में ही कटे हैं और सोचने-समझने और ''ब्रूडिंग'' के लिए अवकाश ही नहीं मिला। आज जरा होटल के कमरे में बैठ सका हूं। और तुम्हें न लिखने का वह निश्चय न जाने कहाँ छूट गया है।

गुलमर्ग से खिलनमर्ग लगभग चार मील की खड़ी चढ़ाई है, जिसे तय करने के लिए लगभग दस हज़ार फुट की ऊँचाई तक जाना पड़ता है। रास्ता क्या है, एक संकरी सी पगडंडी है जो धीरे धीरे ऊपर उठती है। राह में लम्बे-तड़ंगे चीड़ और बलौत के वृक्षों की फैली हुई बाहों से छन छन कर आ रहे शीतल पवन के झोंके और नर्गिस, 'बटरकप', नीले और गुलाबी 'प्राइमलस' की खुशबू थके माँदे यात्रियों का मन स्फूर्ति से भर देती है।

देखने में खिलनमर्ग का पठार गुलमर्ग की अपेक्षा बहुत छोटा पर अधिक समतल लगा। सैंकड़ों भेड़ों के एक रेवड़ ने वातावरण में एक अजीब, अप्रिय और कसैली बसाँध भर दी थी। तभी याद पड़ा कि खिलममर्ग का अर्थ भी यही है—भेड़ों का ग्राम। छोटे छोटे बालक, लम्बी लम्बी और पतली पतली छड़ियाँ हाथों में सम्भालने की कोशिश करते हुए, भेड़ों की रखवाली कर रहे थे।

जीवन में प्रथम बार यहाँ भेड़ों का द्वन्द्व-युद्ध देखा। लखनऊ के कबूतर-बाजों के कई किस्से पढ़ रखे थे, कई कहानियाँ सुन रखी थीं—पर यह अनुभूति अपने में ही बिल्कुल नई सी थी और अब स्मृति में संजो रखने लायक आँखों देखा भी कुछ है। यह गद्दी लोग कश्मीरी भाषी हैं और संसार की वर्तमान गति-विधि मे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। कहा जाता है कि यह मंगोल और डोगरों के मिश्रित

रक्त की नस्ल हैं। यही भेड़ें इनका सर्वस्व हैं। घास की तलाश में ऋतुओं के परिवर्तन के साथ साथ यह भी चरागाहें बदलते रहते हैं। भेड़ों का दूध इन लोगों का पेय है। नवनीत, घी, ऊन इत्यादि का व्यापार इन की जीविका है।

खिलनमर्ग के दो भाग हैं। पश्चिमी खिलनमर्ग (खोविरम) और उत्तरी खिलनमर्ग (बगिल) बगिल में एक बहुत बड़ा स्रोत है। जिसका पानी पाइपों से गुलमर्ग जाता है। किसी चमकीले दिन यहाँ से आँतरिक हिमालय का अपूर्व दृश्य देखा जा सकता है, जब उत्तर में नांगापर्वत (२६६०० फुट), पूर्व में हरमुख (१६८४० फुट) श्रीनगर के सिर पर खड़े महादेव (१३०० फुट), दूर पूर्व में कोलाई (१७,७७७ फुट), और उत्तर पूर्व में ब्रह्मशकी (१५,१०० फुट) की चोटियों के चमकते हुए हिमाच्छादित मुकुट दृष्ठिगोचर होते हैं। घाटी में चमकती हुई बूलर आंसार, डल और मानसबल के शफ़ाफ़ पानियों में, घाटी को घेरे प्रहरीनुमा पर्वतों के बिम्ब, लहराते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं। गुलमर्ग के ऊँचे नीचे पठारों और टीलों पर बेतरतीब छितरी हुई छोटी-बड़ी झौंपड़ियाँ भी बड़ा मनोहर दृश्य प्रस्तुत करती हैं। इन झौंपड़ियों की संख्या सैंकड़ों तक है। स्वतन्त्रता-पूर्व गुलमर्ग की यह झौंपड़ियाँ यात्रियों से भरी रहती थीं। सुना है कई यूरोपियन परिवार इनमें स्थायी रूप से रहा करते थे और यह उनका स्थाई अवकाश स्थल था।

खिलनमर्ग से ऊपर हिमालय का वैभवशाली रूपहला रूप दृष्टिगोचर होता है और यहीं से 'अफरवट' का पर्वतीय क्रम शुरू हो जाता है। इस पर्वतीय क्रम के गर्भ में, अपूर्व सौंदर्य में लिपटी अलापत्थर और कांतरनाग नामक दो झीलें हैं। इनके विषय में कभी फिर लिखूंगा।

पहाड़ी यात्रा के शौकीन इस प्रदेश में विशेष रुचि रखते हैं। घोड़ों पर अथवा पैदल, धूपीले दिनों में लोग चीड़ के झूमरों में रस लेते हैं, भोले-भाले लोगों से अपना सम्पर्क बनाते हैं और जंगली फूलों की चादरों में छिपी हुई पर्वतीय ढलानों पर अपने कैमरे की कला आजमाते हैं—यह सब, अपने में कितनी सुखद अनुभूतियाँ हैं, यह तुम तभी महसूस कर सकोगी, जब तुम घर के इन्द्रजाल को तोड़कर बाहर निकलोगी।

निंगल नाला गुलमर्ग से पाँच मील दक्षिण-पश्चिम में बहता है। मार्ग जोखिम रहित है। बीच रास्ते में दायें हट कर चीड़ों का बीहड़ जंगल है। अकेले इस जंगल की निस्तब्धताओं का स्पर्श पाने की इच्छा मुझे बिल्कुल नहीं हुई। सड़क के बिल्कुल साथ लाल सुर्ख फूलों की बहार में खोया सा एक बड़ा विशाल वृक्ष खड़ा था। न जाने किस भावना से प्रेरित हो कर मैंने फूलों का एक गुच्छा तोड़ लिया, चाहता हूं तुम्हारे बालों में लगा दूँ—आज छः दिन के बाद भी इन फूलों की खुशबू बनी है। राह में ऐसे कई वृक्ष भी मिले, टहनियाँ मानों फूलों का बोझ सह ही नहीं पा रहीं थीं। निंगल नाला अफरवट के दक्षिणी

पक्ष से निकलता है। मध्य गर्मियों में इसका जल काफी बढ़ जाता है, क्योंकि चोटियों से तब हिम प्रचुर मात्रा में पिघलती है। सारा रास्ता अपूर्व दृश्यों से भरा पड़ा था। पर राह के सूनेपन से डर सा लगने लगा, इस लिए उस दिन लौटते हुए मैंने तय कर लिया कि शाम को क्लब पहुंच कर कोई साथी ढूँढना होगा।

निंगल का नाला चीड़ के घने जंगलों को काटता हुआ धान और मक्का के खेत को लहलहाता हुआ, बड़े जोर-शोर के साथ सोपुर के निकट अपने आप को वुलर में समाहित कर देता है। इस बात का उल्लेख मैंने शायद उस पत्र में भी किया था जो मैंने तुम्हें मानसबल के रेस्ट-हाऊस से लिखा था। निंगल नाले के उस पार उतराई का मार्ग है। मैंने घोड़े को खूब दौड़ाया। राह में यत्र-तत्र गद्दियों की झोंपड़ियाँ थीं जिनके दरवाजों पर इश्क-ए-पेचाँ की लताएं बल खा रहीं थीं। डेढ़ मील चलने बाद लगभग आधे मील का लीनमर्ग का मैदान आ गया। मखमली घास में लिपटा हुआ यह मैदान, 'बाशतु' के दर्रे (१२,०२७ फुट) तक फैला हुआ है, यहाँ शिविर लगा कर रहा जाए, खूब खाया-पिया जाए सैरें की जायें, मजे लूटे जायें तो जिन्दगी कितनी रंगीन हो जाएगी।

उस शाम को क्लब पहुंचा, बड़ी आशाएं मन में लिए हुए परन्तु निराश ही लौटना पड़ा। 'रमी', 'फ्लैश', 'बिलियडर्ज' इत्यादि के लिए साथ देने वाले बहुत थे परन्तु प्रकृति का रसपान के लिए कोई तैयार न था, बड़ा अप्रिय सा लगा। मैं 'सकुएश' खेलने चला गया। वहीं श्री हक्सर से परिचय हुआ और उन्होंने मुझे दूसरे दिन चाय के लिए आमन्त्रित किया। न चाहते हुए भी मैं इन्कार न कर सका। दूसरे दिन दोपहर के समय श्री हक्सर की हट पर पहुंचा। ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही एक ऐसी परिचित आवाज कानों में पड़ी कि मैं ठिठक कर रह गया। शाँता थी। मैंने आठ वर्ष के बाद देखा था, उसे। न जाने दिल में कहाँ कैसी टीस उठी। जीवन का प्रथम प्यार। यह प्यार शायद कभी भी भूलाया नहीं जा सकता। वहाँ कुछ और भी स्त्री-पुरुष थे। दो तीन को मैं जानता था। मिस्टर और मिसेज खाँडेलवाल जिनके बारे में मैंने शायद तुम्हें बतलाया भी था। श्रीनगर क्लब में यही छः फुट की मिसेज खाँडेलवाल सलवार पहनकर चार फुट के मिस्टर खाँडेलवाल के साथ नृत्य करती हैं और इन्हीं को देख कर करतार ने मुझे से कहा था—"हूर के पहलू में लंगूर।"

शाँता ने उठ कर मुझ से हाथ मिलाया, शायद वह भी विस्मय विस्मित थी। श्री हक्सर ने कहा—"आपका परिचय करा दूं। यह मेरी पत्नी शाँता...।"

बात काट कर शाँता ने तली हुई मछली का टुकड़ा प्लेट में डाल कर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—"मैं धुन्नी को उस जमाने से जानती हूं, जब परिचय शब्द का मतलब भी नहीं समझती थी।"

एक हल्की सी छाया, कड़ी दोपहर में हल्के श्वेत बादल की छाया के समान छा कर श्री हक्सर के चेहरे पर से गुजर गई।

वह सफेद वायल की साड़ी और खादी का बुलाउज पहने थी। उस के चेहरे पर यौवन की ताजगी पर आँखों में एक बुझी बुझी सी चमक थी। उसके अधरों के कोने न जाने क्यों रह रह कर काँप जाते।

वह सावन के बुलबलों के पीछे भागती रही और जिन्दगी उसे धक्का दे कर आगे निकल गई। मेरे दिल का वाण भी निकल चुका है पर अभी कसक बनी है...क्या तुम इन पर मरहम रखोगी ?

वापसी पर, शाँता मुझे टीले के तीसरे मोड़ तक छोड़ने आयी, मेरा दिल पिघल सा गया। एक सैलाब आया और सारी हंसी खुशी बहाकर ले गया और मेरी आँखों के सामने नौ साल पहले की एक बात घूमने लगी। ऐसी ही एक रात थी, यही नन्हे-मुन्ने तारे टिमटिमा रहे थे, बिल्कुल ऐसी ही फिज़ा में मैंने शाँता से सब कुछ कह दिया था पर मुझे ऐसा लगा आँसुओं का एक बवंडर आँखों में उतरने को है। सहसा उसने कहा--"तुम्हें वह चाँदनी रातें याद है जब हम दोनों हाथ में हाथ दिये नावों में डोलते थे। उन दिनों में कितनी डरा करती थी। अब भी मैं डरती हूं और तुम्हें उनकी वह बिल्ली याद है जो तुमने मुझे मेरी वर्षगाँठ पर दी थी अब भी वह मेरे पास रखी है"—वह बोले जा रही थी यह वही शाँता थी, मेरे बचपन और लड़कपन की हमझोली, जिसकी बहकी बहकी निगाहें खोई खोई बातें मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं।

एकाएक मुझे वह सब याद आ गया......

पर शाँता अब क्यों दुखी है। यह अपने वर्तमान की बातें क्यों नहीं करती ? हक्सर की बात क्यों नहीं करती ? शायद इसे यह पार्टियों क्लबों का जीवन पसंद नहीं, शायद......शायद हक्सर में उसे वह हस्ती न मिल सकी जिस के लिए उस ने रातें जगाई थीं।

मैं फिर परेशान हो गया। मुझे लगा मेरे कहकहे और मुस्कराहटें खोखले और बनावटी थे। मैं स्वप्नों के संसार में था, और अब मेरी आँख खुली है तो देखता हूं कि आत्मा पर तो वही दुख बना है, मैं उसी आग में फुंक रहा हूं। मेरी आँखों में वही आँसू, जो एक बार मैंने खुश्क कर लिए थे और मैं वही मूर्ख सा लड़का हूं जो शाँता के लिए खोया खोया सा रहता था।

मैंने शाँता की तरफ देखा, उसकी आँखों में आँसू बह रहे थे। मैंने उन गीली गीली आँखों में झाँक कर देखा और दोनों हाथ आगे बढ़ा दिये, उसने अपने काँपते हुए सुकोमल हाथ उन पर रख दिए, मैंने उन्हें मिला एक साथ चूम लिया और बिना उसकी ओर देखे तेज तेज़ कदम रखते हुए नीचे भाग चला।

एक लहर आती है ठाठें मारते हुए समुन्द्र में जा फैंकती है, दूसरी किनारे पर छोड़ जाती है, तीसरी किनारे से उठा फिर समुन्द्र में ले जाती है और थपेड़े सहने के लिए छोड़ जाती है।

यह जिन्दगी कितनी अजीब है ?

शायद मैं ही ऐसा हूं, जिसे न दिल पर काबू है न भावनाओं पर। जरा सी देर में बदल जाता हूं, छोटी छोटी बातों से प्रभावित हो जाता हूं। शायद मेरा कोई असूल नहीं, शायद यह मेरी अपनी कमज़ोरियाँ हैं, मेरी अपनी नज़र के ऐब हैं या जीवन की इन लहरों का खेल है ?

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही नीडोज़ का बैरा आकर कहने लगा, "हक्सर साहब ने फोन पर सलाम बोला है, और दोपहर के खाने के लिए कहा है।"

मैं पहले ही दवा के बदले दर्द ले आया था। अब नये घाव खाने की ताब मुझ में नहीं थी। मैंने बैरे से कह दिया कि फोन पर हक्सर साहब से, मेरी तरफ से क्षमा माँग ले और कह दे कि मैं आज ही तोश मैदान की ओर जा रहा हूं।

और अकेला ही, एक कुली और एक 'गाइड' को साथ लेकर चल पड़ा। रास्ता फिरोजपुर के नाले के निकट होकर जाता था। टंगमर्ग से गुलमर्ग के मार्ग के दूसरे मील के पत्थर पर एक छोटी सी पगडंडी ढलान के मार्ग पर मुड़ जाती है और फिर लगभग आधा मील उतराई ही उतराई है, जिस पर उतरते हुए घोड़े की सवारी बड़ी भयप्रद लगती है। जहाँ नदी की लहरें शुरू होती हैं, वहीं ढलान समाप्त होती है। नदी पर लकड़ी का एक पुराना पुल है। यहाँ से दो रास्ते फूटते हैं, बायां तोश मैदान को और दायां रास्ता आगे जाकर बट जाता है: एक टंगमर्ग को और दूसरा पूंछ की घाटी कांतरनाग की झील को।

पुल पार करके आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर पर वाहन और फिरोज़पुर नदियों का संगम दिखाई पड़ा। जहाँ दोनों नदियां गलबहियाँ डाल रही थीं वहां पानी बीस-पच्चीस फुट ऊपर उछल रहा था। यहां मैंने अंग्रेज पर्यटकों के एक-दो शिविर देखे। ये लोग (ट्रउट) मछली के शिकार के शौकीन हैं और कश्मीर में ही नहीं, बल्कि समस्त एशिया में कुल पाँच-छः नदियां ही ऐसी हैं जिनमें ट्रउट पाई जाती है। इसके शिकार के लिए गेमवार्डन कश्मीर सरकार की आज्ञा लेनी पड़ती है।

भांति भांति के पक्षी नदी के पानी पर शिकार की तलाश में उडारियाँ ले रहे थे। जहां कहीं भंवर पड़ रहे थे, और पानी की सतह पर झाग उठ रही थी, वहाँ बिल्कुल अपरिचित परन्तु अत्यन्त सुन्दर पक्षी बार बार चोंच मारता और कुछ उठा कर ले जाता। गाइड ने इस पक्षी का नाम बतलाया था, शायद

पलम्बस रेडस्टार्ट (Plumbeous Redstart) हिन्दी नाम जानना चाहती हो तो डिक्शनरी देख लेना, पर शायद ही मिले। सिर पर सुनहरी कलगी थी और दुम का रंग दहकते हुए शोले की रंगत लिये हुए था।

फूलों के विषय में ज्यादा क्या लिखूं! कश्मीर तो देश ही फूलों का है। विशेष कर 'जेट पत्थर' की ढलान पर इन फूलों की संख्या और छितराव ने मुझे दीवाना कर दिया।

बापम साहब की पुण्य-स्थली देखते हुए हम आगे बढ़े। कहा जाता है कि यह कश्मीर के बहुत बड़े सूफी सन्त थे। एक दिन शिकार पर जा रहे थे कि देखा च्यूंटियों का दल एक बड़े सुराख में शीत ऋतु के लिए खाद्य सामग्री जुटा कर रख रहा है, देखते देखते सुबह से शाम हो गई। इन्होंने सोचा च्यूंटियों तक में यह समझ है कि आने वाले दिनों के लिये कुछ जुटा लेना चाहिये। मैंने अपने आगे वाले दिनों के लिए क्या संजोया है? तब इन्होंने ऐशमुकाम के फकीर जैन-उ-दीन से दीक्षा ली। हिन्दू और मुसलमान दोनों बापम साहब के मुरीद हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में इनकी मृत्यु हुई। समाधि की इमारत कश्मीरी स्थापत्य कला का, जो इरान और समरकंद से प्रभावित है, उत्कृष्ट नमूना है। चौकड़ीदार लकड़ी की दीवारों और देवदारू के स्तम्भों पर बड़ी सुन्दर खुदाई की गई है।

चीड़ के घने जंगल में गुज़र कर दोपहर के समय हम दनवस पहुंचे। वहाँ गूजरों (गद्दियों की झोंपड़ियाँ), भेड़ों के रेवड़, अप्रिय बसाँध-मुझ से तो एक पल भी ठहरा नहीं गया। थोड़ी दूर आगे, एक पहाड़ी नाला था, उस पर एक कच्चा पुल था। पुल से थोड़ी दूर, सुर्ख-मटियाले पत्थर पर बैठ कर मैंने 'नीडोज़' का 'पैक्ड लंच' खाया। घोड़े वाला कुली और गाइड भी सूखे चावल और दही की चटनी का 'लंच' खाकर निवृत हुए तो हम 'पहिजन' की ओर बढ़े। मार्ग सीधा और समतल था। कहीं कहीं साधारण चढ़ाई अथवा उतराई थी। मैं घोड़े पर बैठा बैठा सोच रहा था। (सवारी के हिचकोले मुझ पर प्रायः ऊंघने वाली कैफियत तारी कर देते हैं।) यद्यपि मैं दुखी नहीं था, उस समय तो मैं उन सभी सीमाओं को पार कर आया था। जहाँ मुझे घाव मिले थे। उन सब लोगों से मैं बहुत दूर था, जिन में मेरा दम घुटता था, और जो मेरे निकट होते हुए भी मुझ से दूर थे। अगर मैं खुश नहीं था, तो मुझे दु:ख भी किसी बात का नहीं था। वहाँ चारों ओर विशालकायें पर्वत खामोश खड़े थे, हरी-भरी घाटियां लहलहा रही थीं, बीच में कहीं कहीं पीले सुनहरे खेत थे, चीड़ के वृक्षों के झूमर थे, पर्वतीय नालों का शोर था, नीला शफाफ, चमकीला आकाश था और महक से लदे हुए फूलों के ढके-छिपे, खुले-बिखरे खजाने थे। बेरहम माली के हाथों से दूर, ताजा, स्वच्छन्द और कोमल फूल—उस शांत वातावरण में प्रत्येक वस्तु सुन्दर और सन्तुष्ट थी। पहाड़ी नालों

का कलकल...पत्थरों पर सिर पटकता हुआ पानी...शफ़ाफ और गंदला, खामोश और पुरशोर पानी जो मुझे भी अपने साथ बहाना चाहता था...इधर-उधर, ऊपर-नीचे और यहाँ-वहाँ बहता हुआ मैं तुम्हारे ख्यालों में खो गया।

'दनवस' से पहिजन पहुंचने में भारी थकान महसूस होती है, यद्यपि दनवस से आगे कोई विशेष चढ़ाई नहीं पड़ती। एक ओर दस हजार फुट से भी ऊँचे पर्वतीय क्रम की श्रृंखला उठी है और दूसरी ओर बल खाते हुए कई पहाड़ी नाले और और झरने दृष्टिगोचर होते हैं। इस क्रम में पहिजन पहुंचा कर ही सर्व-प्रथम हिम-धवल हिमालय के दर्शन होते हैं।

बर्फीली चट्टानों, हिमाच्छदित पर्वतीय शिखरों और हिम-स्त्रोतों की आभा पहिजन का सौंदर्य और अलंकृत करती है। यात्रा के अन्तिम दो-तीन मील निरन्तर उतार में ही थे। यह उतार वहीं समाप्त होता है, जहाँ पहिजन का छोटा सा घसीला पठार है। यहीं यात्रियों का एक और कैम्प था। 'कैम्प फायर' चल रहा था। शायद पंजाब के किसी कालेज के विद्यार्थी थे। मैं भी उनके समारोह में शरीक हो गया। एक सरदार जी बड़ी धुन में गा रहे थे।

नी ओ ठग बंजारा
मेरे हान दा कंबारा
जिहदा चूड़े जेहा रंग
जिहदा वंगाँ जेहा अङ्ग
जिहदी ख्वाबाँ वर्गी वख
जिहदी मिरगी वर्गी अक्ख
मैंनू' तक-तक हस्से
मैंनू हस-हस तक्के
मैथों तक्किया न जावे
मैथों हस्सिया न जावे
मैथों डकया न जावे
मैथों नस्सिया न जावे
डराँ डराँ पई खंगाँ
नेड़े जाँदी होई संगाँ
नीवें पैके कोलों लँगाँ
ते ऐह छनक पैन वंगाँ
ओह बुलावे ते न बोलाँ
विच्चों पक्खी वाँग डोलाँ

उस गीत ने मानों झिंझोड़ कर रख दिया। आँखों के सामने सारा दृश्य पंजाब का घूम गया। फूलों से लदे बड़, पीपल और आम के वृक्ष, नीमों के छतनारे, पगडंडियों के वे मोड़, जहाँ बटोही स्त्रियां गुनगुनाती और सुस्ताती हैं, अपनी ओढ़नियों के तकिये बना कर। पंजाब, हीर का देश--कश्मीर हव्वा खातून का देश, पर दोनों की आत्मा के सुर एक ही हैं।

दो बजे के करीब जब अपने शिविर में लौटा तब भी 'कैम्प फायर' चल रहा था। और अब जब कि मैं यह पंक्तियाँ लिख रहा हूं उपर्युक्त गीत अब मेरे कानों में गूंज रहा है।

"नी ओह ठग बंजारा"

प्रात: झरने के पानी में स्नान कर हम मंजिल की ओर बढ़े। मार्ग कठिन और पुरपेच था और बलौत के घने जंगलों से हो कर गुजरता था। यदि पथ-प्रदर्शक साथ न होता तो मैं अवश्य भटक गया होता। रास्ते में हिरनों का एक झुंड दिखाई दिया। सुना है इस प्रदेश में जंगली जानवर बहुत हैं।

तोश मैदान तक हमारी यात्रा काफी कठिन रही। वृक्ष भी इक्के-दुक्के मिलते थे। खड़ी चढ़ाई और कड़ाके की धूप। बड़े कष्ट में ढाई-तीन घंटे कटे। बीच का प्रदेश बिल्कुल वृक्ष-विहीन और वीराना था पर जब तोश मैदान का मीलों तक हरियाली में नहाया हुआ मैदान आँखों के सामने आया तो रोम रोम खिल उठे। एक लम्बे-लम्बे चौड़े मैदान को हिमालय की प्रर्वतमालाएं घेरे खड़ी थीं। कई छोटे छोटे झरने मैदान में प्रवाहित थे। मैदान के कई भाग समतल चबूतरे के सामान सपाट और समतल थे जिन पर मानों हरी मखमल का कालीन बिछा दिया गया हो।

आकाश पर बादल थे। भीगी हुई बोझिल हवा धीरे धीरे बह रही थी। कहीं कहीं चिनार के विशाल वृक्ष अपने एकाकीपन पर खिन्न से हो रहे थे। 'नीडोज़' के 'पैक्ड लंच' यात्रा में सचमुच नियामत थे। वरना ऐसी यात्रा में भोजन की समस्या बड़ी विकट है। खुली फ़िज़ाँ में एक झरने के किनारे बैठ कर मैंने भोजन समाप्त किया।

वापसी पर मैंने दूसरा रास्ता अपनाया। उतराई के इस मार्ग में दो दिन की यात्रा एक ही दिन में कर सायंकाल के समय, मैं फिरोजपुर नाले के पुल के पास पहुंच गया। यहीं रात को वाहन और फिरोजपुर के संगम के निकट मैंने शिविर गाड़ा, क्योंकि दूसरी सुबह काँतरनाग झील देखने के लिए चलना था।

यह उतार जो मैंने तोश मैदान से फिरोजपुर नाले तक तय की, लगभग तेरह मील की यात्रा थी। तोश मैदान से 'खाग' ग्राम तक तो ढलान ही ढलान है, तदुपरान्त 'पोशकर' पर्वत के हरे लहंगों पर चलते हुए फिरोजपुर नाले तक

जाना पड़ता है। मार्ग में कई छोटे छोटे गाँव मिले।

काँतरनाग की झील हिमालय की गगनचुम्बी पर्वतीय शृंखलाओं के आँचल में छिपी हुई है। किसी जमाने में शायद अलापत्थर से लेकर काँतरनाग तक झीलों का एक क्रम रहा होगा। दो ऐसी झीलें हारीवल के पर्वतीय क्रम में मैंने स्वयं देखीं जो अब नालों का रूप धारण कर चुकी हैं यह हैं 'बोनाबल' और 'तम्बारहामा' की झीलें जो अब वर्षा के दिनों में तूफानी नदियों का रूप धारण कर के घाटी में तबाही मचाती हैं। कहीं कहीं इन नालों की चौड़ाई तीन मील से भी अधिक हो जाती है। 'जैट पत्थर' की उस फूलों की मीनाकारी वाली ढलान के निकट जो दूसरा रास्ता फूटता है, वही काँतरनाग को जाता है। जब तोश मैदान से लौटे तो गुलमर्ग लौटने की बजाए मैंने गाइड से सलाह लेकर काँतर-नाग की ओर जाने की ठान ली। होटल के बूढ़े मैनेजर ने गुलमर्ग में ही चेतावनी देते हुए कहा था, "देखो बेटा, पहले तो तोश के मैदान जाना ही ठीक नहीं, फिर भी तुम्हारी जिद है तो जा सकते हो, पर वहाँ ठहरना नहीं लेकिन काँतरनाग का रुख न करना वहाँ पूंछ की सीमा मिलती है और पाकिस्तानी जासूसों का ज़ोर है।"

पर घोड़े की मुहारें उधर मोड़ते समय शायद उनकी चेतावनी मैं भूल चुका था। रास्ता कहीं मक्का के खेतों और कहीं चीड़ और देवदारू के घने जंगलों से हो कर गुजरता है। प्रदेश में टर्टलडोव और मेगपी की चहचहाट अधिक सुनाई पड़ती रही। मैं पूछता हूं, सद्रू! घर बैठ कर ही तुम्हारे जैसे लोग कैसे (Bird-life) को अपनी हाबी बना लेते हैं और खुद को एक Expert मनवाने पर इसरार करने लगते हैं......तुम्हारी सब बातों में बड़ी विडम्बना है। अपनी इन यात्राओं के दौरान में मैंने सिर्फ पक्षियों का ही नहीं बल्कि फूलों और वृक्षों का भी अध्ययन किया है। और अब मुझे विश्वास है, मैं तुम्हारी तमाम समस्याओं का समाधान कर सकूंगा......तुम्हारी समस्याओं का समाधान करना......मेरी चिरकालीन इच्छा है। पगडंडी के साथ साथ पीले फूलों की प्रचुरता थी। सारा वातावरण इन फूलों की सुगन्ध से महक रहा था। टंगमर्ग के निकट रास्ता फिरोजपुर नदी के दाएं किनारे के साथ साथ ऊंचाई की ओर जाने लगा। फिर चीड़ के एक मोटे शहतीर के बने पुल को पार करके हम ने गौरीवन में प्रवेश किया। किसी ज़माने में यह महाराजा हरिसिंह जी की शिकारगाह थी। सुना है यहाँ भालू और हिरनों का शिकार होता है। पुल पार करके हम फिर नदी के दाएं किनारे पर चलने लगे, 'हापत-जबल' के निकट हम ने एक और ऐसा ही पुल पार किया और नदी के बाएं किनारे हो गए। फिर चढ़ाई आ गई। पर्वतीय ढलानें मखमली घास और छोटी छोटी पुष्पाच्छादित झाड़ियों से अलंकृत थीं, चीड़ और बलौत के वृक्षों की छाया में गद्दी बालक सन्तूर और बाँसुरी

बजाने में मस्त थे। उन की प्रजा घास पर मुंह मारते मारते दूर दूर तक निकल गई थी। एक पहाड़ी नाला भयंकर गति से फिरोजपुर नदी के बाएं तट पर गिर रहा था। यह नाला बौनाबल और नाशुकी नदी के जल का जाम है। वहीं गूजरों के चार-पाँच झौंपड़े भी थे।

अब पांडन की खड़ी चढ़ाई सामने थी। पर्याप्त बाट तय करने के पश्चात् देखा, बांयी ओर खाई में फिरोजपुर नदी की जन्मदात्री दो विभिन्न नदियां बड़े वेग से अपने संगम की ओर भागी जा रही थीं। बायीं शाखा अपेक्षाकृत अधिक बड़ी थी। इस का जल नगराद मर्ग के पर्वत से आता है। हमें लगभग डेढ़ घंटा इस चढ़ाई में लगा। घोड़े की बागें उतार कर हाथों में थाम लीं, क्योंकि एक तो सीधी खड़ी चढ़ाई थी दूसरे काई से फिसलन भी हो रही थी। ज्यूं ज्यूं ऊंचाई बढ़ती गई बलौत के वृक्षों का स्थान भोजपत्र के छोटे छोटे वृक्ष लेने लगे। फिर हमने अपने आप को संसार की छत पर पाया, सब कुछ......कश्मीर की समूची घाटी हमारे कदमों में बिछी हुई थी, ढलान हम मिनटों में उतर गए। यहां भी गूजरों की एक-दो झौंपड़ियां थीं। यहीं पूंछ और कश्मीर प्रांतों की सीमाए मिलती हैं। रात हमने यहीं व्यतीत की। नीडोज़ के पैक्ड लंच और डिनर हज्म हो चुके थे। यहां मक्कई की रोटियां, गुड़, अंडे और दूध डिनर में मिले। जिस झौंपड़ी में रात व्यतीत की उस की दीवारों का निर्माण पत्थरों के छोटे-छोटे खम्भों और चीड़ के नुकीले पत्तों से भरी बड़ी-बड़ी टहनियों से हुआ था।

रात भर सर्दी से ठिठुरता रहा।

सूर्योदय के पश्चात् मैं झौंपड़ी से बाहर निकला, तो देखा आकाश बिल्कुल साफ़ था। दूर नांगा पर्वत और कोलाई चोटियां धूप में झकाझक कर चमक रही थीं। घाटी के रूप में हमारे सामने बिखेरे पड़े थे, हरे, नीले, सुनहरी और काले रंग खेतों के, नदियों के, मक्का की क्यारियों के और पर्वतों के।

हांडीबल की अन्तिम चोटी चढ़ कर हम फिर एक घसीले पठार पर आ गये। यहां चकोर और तीतर देखे। कांतरनाग की चोटी हमारी आंखों के सामने थी। पूंछ जाने वाली पगडंडी सुनसान सी पड़ी थी और लगभग ४०० फीट की ढलान के पश्चात दाएं मुड़ गई थी। उत्तर पूर्व में नाशुकी दुन्दबल (हांगल हेंग) शृंग आकाश को ललकार रहा था। इस चोटी से पूंछ की समूची घाटी को देखा जा सकता है।

दायीं ओर मुड़ने के पश्चात् लगभग बीस मिनट की खड़ी, कठिन चढ़ाई चढ़ी और दृष्टि दौड़ाने पर केवल पचास फीट नीचे कांतरनाग की नन्हीं सी स्वच्छ झील नज़र आई। शायद यह कश्मीर की सबसे ऊंची झील है और लगभग आधे वर्गमील में, पानी से भरी है। झील का शेष भाग नदी-नालों के तूफानी बहाव में बह गया है और वह दिन दूर नहीं जब 'बोनाबल' और 'ताम्बरहामा' के समान

यह भी अदृश्य हो जायेगी । परन्तु इस ऊंचाई पर भी इस में कोई ग्लेशियर आदि दिखाई नहीं पड़ा, इसलिए कि यह बिल्कुल शिखर के निकट अवस्थित है और खुली है । पानी बड़ा ठंडा था । मैंने झील में स्नान किया । भूखे पेट चार बजे हम 'जेट पत्थर' और फिर रात के ग्यारह बजे गुलमर्ग पहुंचे ।

बैरे ने कहा, शांता जी का कई बार टेलीफोन आ चुका है । मन जाने को हुआ पर तर्क ने कहा क्यों, किसलिए ? कभी कभी तुम्हारे यहां आने की सोचता हूं, तो भी तर्क यह वार करने से नहीं चूकता । इस बार जीत तर्क की ही हुई । शायद यही ठीक है, मिलूंगा तो फिर कल्पूंगा, कुढ़ूंगा...इसलिए असम्पर्क की टीस ही भली ।

कल प्रात: गुलमर्ग छोड़ देना है और इस समय रात का एक बजा है । यह आनन्द जो मुझे हिमालय के इस पर्वतीय प्रदेश, स्वर्गिक तोश मैदान, कर्ण-मधुर, रूपहले जल-प्रपातों और कुसुमित वन-काननों तथा बर्फानी झीलों की यात्रा से प्राप्त हुआ है और भी मुखरित हो उठता यदि ऐसी जगहों पर अभाव तुम्हारा मुझे न खलता ।

श्रीनगर तो यात्रियों के आवागमन से जिन्दा हो उठा होगा और तुमने शंकराचार्य मन्दिर, छठी पादशाही के गुरुदवारे के नियम के साथ साथ शाम को बंड की सैर भी शुरू कर दी होगी ।......

हैदराबाद में

नारायण मिश्र

गत वर्ष, १९६४ ई० नवम्बर में इन पंक्तियों के लेखक को आंध्र-प्रदेश की राजधानी हैदराबाद जाने का सुअवसर मिला। यात्रा में इच्छानुसार विश्राम करते हुए तथा मथुरा, वृन्दावन की 'कुंज-गलिन' में से पुण्य लाभ करते हुए हम आगे बढ़े। अपनी धर्म-निष्ठा पत्नी के साहचर्य के कारण रास्ते में पड़ने वाले लगभग सभी तीर्थों पर भगवान् के विभिन्न स्वरूपों के दर्शन किए। ताज की अभूतपूर्व सुन्दरता के आकर्षण-आगरा, होते हुए हमें आगे चम्बल घाटी की यात्रा रात्री को करनी पड़ी। मार्ग में लाखनसिंह, सुल्ताना, रूपा तथा पुतली आदि की रोमांचक कहानियाँ सुनते-सुनाते हम अपने आन्तरिक भय को दबाए रखने का यत्न करते रहे। ग्वालियर के प्रसिद्ध किले में बने महलों को देख कर राहुल जी की पुस्तक 'राजस्थानी रनिवास' में वर्णित 'रनिवासों' की सहज स्मृति हो आई। उत्तरी भारत के निवासी होने के कारण मन में दक्षिण भारत देखने की लालसा लिए आगे के रास्ते में अधिक रुके बिना, हम सीधे हैदराबाद जा पहुंचे।

पुरानी हैदराबाद-स्टेट के स्थान पर अब 'आंध्र प्रदेश' बन गया है। यहां की राजधानी हैदराबाद है। हैदराबाद तथा सिकन्दराबाद को 'जुड़वां' शहर कहा जाता है और यह है भी एक तथ्य। ये दोनों नगर समुद्र तल से दो हज़ार फुट की ऊंचाई पर ९६ वर्गमीलके घेरे में बसे हैं। सिकन्दराबाद को हैदराबाद से अलग करती है,—हुसैन सागर-झील। यह काफी बड़ी है और इसके तट पर सायंकालीन सूर्यास्त का दृश्य अत्यन्त मनोहर होता है। सिकन्दराबाद अंग्रेज़ी

शासन में भी बहुत बड़ी सैनिक छावनी थी और अब भी है। यह स्थान अत्यन्त साफ़ सुथरा है। आधुनिक ढंग पर बनती नई बस्तियां भी काफ़ी खुली और साफ़ हैं। हैदराबाद में जहां एक ओर पाश्चात्य ढंग के बाजार हैं, वहां प्राचीन ढंग के गली-कूचे भी देखने को मिलते हैं। यहां आगे बढ़ने से पूर्व इस नगर का संक्षेप में ऐतिहासिक परिचय देना ठीक रहेगा।

दिल्ली अथवा मथुरा की भांति हैदराबाद का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इस नगर की नींव पड़ने से पूर्व 'गोलकंडा' का किला बना था अत: हमें उसी की चर्चा से प्रारम्भ करना होगा। एक बार एक गडरिये ने राजा प्रताप रुद्र देव (प्रथम) को सलाह दी कि वह इस पहाड़ी (जहाँ पर आज का किला बना है) पर, एक किला बनवाए। राजा को उसकी सलाह पसन्द आई और उसने यहां मिट्टी की दीवारों वाला एक कच्चा किला बनवाया तथा उसी गडरिये के नाम पर इसका नाम भी 'गोला कोण्डा' रक्खा। 'गोल्ला' का अर्थ भेड़ें चराने वाला तथा 'कोण्डा' का अर्थ पहाड़ी है। समय के साथ यह नाम बदल कर 'गोलकण्डा' बन गया है। यह पहाड़ी वारंगल के काकातिया वंश के राज्य की सीमा में थी। उनकी राजधानी वारंगल थी अत: वहां के राजा कृष्ण देव ने १३६३ ई० में इस दुर्ग को एक सन्धि के फलस्वरूप 'बहमनी' वंश के मुहम्मद शाह प्रथम को सौंप दिया। उसने इसका नाम 'मुहम्मद नगर' रक्खा। 'बहमनी वंश' का प्रभुत्व गोलकण्डा पर १३६३ ई० से १५१८ ई० तक रहा। बहमनी राज्य के पांच सूबेदार थे जिन्होंने बारी बारी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। गोलकण्डा में कुतुब-शाही वंश का सुल्तान कुली सुबेदार था। १५१८ ई० से १६८७ ई० तक कुतुबशाही वंश के सात राजाओं ने गोलकंडा पर हकूमत की। इन में से पहले तीन राजाओं ने ६२ वर्ष में अर्थात् १५१८ से १५८० तक यह किला तथा इस में दूसरी पक्की इमारतें और महल बनवाए। इस वंश का पांचवाँ राजा मुहम्मद कुली कुतुबशाह अपनी दुर्ग रूपी राजधानी से तंग आ चुका था क्योंकि दुर्ग के भीतर बहुत से लोग आकर बस गए थे। 'मूसी' नदी के दक्षिणी किनारे पर एक दिन शिकार खेलते हुए उसे एक हरे भरे स्थान ने आकर्षित किया। यह किले से छः मील दूर वही स्थान था जहां आज का हैदराबाद बसा है। मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने अपनी सुन्दर रखैल भागमती के नाम पर 'भाग्य नगर' के नाम से एक शहर की नींव रखी। यही बाद में हैदराबाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हैदराबाद १६८७ ई० तक इस वंश के राजाओं की राजधानी रहा।

औरंगजेब ने हैदराबाद तथा गोलकंडा पर प्रथम आक्रमण १६५६ ई० में किया। उस समय सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह यहां का शासक था। सुल्तान की हार हुई तथा उसी की प्रार्थना पर एक सन्धि के अनुसार सुल्तान को अपनी पुत्री

का विवाह औरंगज़ेब के पुत्र मुहम्मद सुल्तान के साथ करना पड़ा। औरंगज़ेब ने गोलकंडा तथा हैदराबाद पर दूसरा आक्रमण १६८७ ई० में किया जबकि इस वंश का सातवां तथा अन्तिम राजा अब्दुल हसन तानाशाह राज कर रहा था। यह मुहासरा आठ महीने तक रहा। गोलकंडा के आस-पास चारों ओर छोटी छोटी पहाड़ियों पर औरंगजेब की फौजें डेरा डाले पड़ी रहीं परन्तु किला फतह नहीं हो सका। किले के पूर्वी द्वार का रक्षक अब्दुला खान पन्नी नाम का सरदार था। वह शत्रु से मिल गया और उसने किले का द्वार रात को खोल दिया। तानाशाह कैद कर लिया गया। वह दौलताबाद के किले के चीनी महल में चौदह वर्ष तक कैद रहा और वहीं मर गया। इस प्रकार कुतुबशाही शासन का अन्त हुआ और मुगल शासन का प्रारम्भ। कुतुबशाही वंश के शासकों के मकबर किले के पास ही बने हैं तथा पुरातन वास्तु कला के सुन्दर नमूने हैं।

कुतुबशाही वंश के बाद मुगलों ने कई सूबेदार हैदराबाद में नियुक्त किए। प्रथम गवर्नर था रुस्तम दिल खान जो तेईस वर्ष तक इस पदवी पर रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके शहजादा कामबख्श ने उसे जेल में डाल दिया ओर उसे मरवा डाला। वह दक्कन पर स्वयं हकूमत कर रहा था। इसी समय बहादुर शाह आलम ने दक्कन पर हमला किया। इस लड़ाई में कामबख्श मारा गया। अब हैदराबाद का सूबेदार दिलावर खां नियुक्त हुआ। उसके पश्चात् अब्दुल मसूर खान नाम का व्यक्ति सूबेदार बना। बाद में बादशाह फर्रुखसैर के शासनकाल में १७२५ ई० में निजाम-उल-मुल्क आसिफ़ जाह (प्रथम) यहाँ का मुस्तकिल सूबेदार बनाया गया। १७३७ ई० में जब कि मुगल शासन कमज़ोर हो गया था इसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इस वंश में भी कुतुबशाही वंश की भांति सात राजा ही हुए। इस पंक्ति में अन्तिम बादशाह नवाब मीर उस्मान अलीखान हैदराबाद के १९४७ ई० तक शासक थे। जब कि यहां 'पुलिस-ऐक्शन' के पश्चात् लोक-सत्तात्मक सरकार कायम हुई।

सालार जंग म्यूजियम

हैदराबाद में गए प्रत्येक पर्यटक के लिए वहां का 'सालार जंग म्यूज़ियम' देखना एक आवश्यक बात है। मानव मस्तिष्क इस बात को मानने को प्रस्तुत नहीं होता कि यह सारा अजायबघर एक मनुष्य द्वारा संगृहीत है परन्तु बात ऐसी ही है। सालार जंग आयु भर अविवाहित रहे। उन्होंने अपने महल को ही अजाबयघर मैं परिणित कर दिया। प्रायः अस्सी कमरों तथा बरामदों में यह संग्रहालय स्थित है। इस में जाने के लिए एक रुपए की प्रवेश टिकट लेनी पड़ती है। यहाँ बच्चों का विभाग अलग है और वहां प्रवेश टिकट नहीं है। इस विभाग में अनेक देशों के खिलौने रखे गए हैं। उनका चयन अत्यन्त सुन्दर

है। विभिन्न देशों के निवासियों की छोटी छोटी मूर्तियां बहुत आकर्षक हैं। वालकों के आकर्षण और मनोविनोद के लिए किया गया यह संग्रह उनमें ज्ञान वृद्धि भी करवाता है। एक 'खिलौना-रेलगाड़ी' यहां एक बड़े मेज पर बिजली से भागती है। यह मार्ग में स्टेशनों पर रुकती है और सिगनल आदि के संकेत भी होते हैं। बच्चे इसका विशेष रूप से आनन्द लेते हैं।

बच्चों के विभाग से निकल कर हमने अपना अपना प्रवेश टिकट दिखाया और म्यूजियम में दाखल हुए। इस संग्रहालय में जापान, चीन, बर्मा, मिस्र, इटली, फ्रांस तथा दूसरे देशों की वस्तुएं विभिन्न विभागों में बांट कर रखी गयी हैं। चीनी कला के नमूने जिस विभाग में हैं वह काफी बड़ा है। चीन की प्राचीन कला बड़ी आकर्षक है। लकड़ी पर किया गया बारीक खुदाई का काम तथा सिल्क पर सुई द्वारा कढ़ाई करके बने चित्रों को देख कर मनुष्य दंग रह जाता है। इन में अधिकतर चित्र प्रकृति तथा अन्य पशुओं के हैं। दृष्टि चित्र से हटती ही नहीं। इनके अतिरिक्त चीनी विभाग के बर्तन, मूर्तियां तथा लकड़ी पर बने चित्र सचमुच अद्भुत तथा देखने योग्य हैं।

इसी प्रकार जापानी, बर्मी, मिस्री विभागों में कला के सुन्दर नमूने देखने को मिलते हैं। फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी वस्तुओं की बहुतायत है। ऐसा जान पड़ता है वहाँ से जो कुछ भी मिला एकत्र कर लिया गया। योरुप का बना शीशे का सामान और संगमर्मर के बुत अधिक सुन्दर हैं। इनमें एक संगमर्मर का बुत अतीव दक्षता से तराशा गया है। इसमें एक औरत पतली चादर ओढ़े खड़ी दिखाई गई है। देखने वाले आश्चर्य से दांतों तले अंगुली दवा लेते हैं। जिस कमरे में यह रखा है वहां बुत के पीछे तीनों कोनों में तीन बड़े बड़े शीशे लगे हैं जिन में बुत की पीठ तथा दोनों पार्श्व साफ दिखाई देते हैं। मूर्ति कला का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार एक दूसरा बुत है जिसे हम 'जुड़वां बुत' कह सकते हैं। इसके पीछे भी तीनों कोनों में तीन बड़े शीशे लगे हैं। सामने से देखने पर एक योद्धा हाथ में तलवार लिए खड़ा दिखाई देता है परन्तु पीछे के शीशे में उसके प्रतिविम्ब में एक अत्यन्त रूपवती सुन्दरी अपनी झुकी नजरों से मन को मोह लेती है। कारीगर का कमाल देखकर उसकी प्रशंसा किए विना नहीं रहा जाता। भिन्न भिन्न देशों का अद्भुत वस्तु संग्रह देखते देखते हम आगे बढ़े। योरुप के चित्रकारों द्वारा बनाए गए अनेकों चित्र, वहां का बना फर्नीचर, पाटरी तथा हाथी दांत पर की गई पच्चीकारी अत्यन्त सुन्दर है। पेंटिंग विभाग में हैदराबाद स्कूल, राजस्थानी कलम, पहाड़ी चित्रकला, कांगड़ा तथा बसोहली स्कूल के कई चित्र हैं। मुग़ल चित्रकला के नमूने भी पर्याप्त हैं। इन में जोधाबाई अकबर, नूरजहां, जहांगीर, शाहजहाँ, मुमताज महल आदि के चित्र देखने योग्य हैं। एक स्थान पर कुछ चावल के दानों पर बनाए गए चित्र देखे। इनमें महात्मा गांधी का चित्र भी था।

हस्तलिपि विभाग में बहुत सी हस्तलिपियां रखी हैं। इनमें अधिकतर कुरान शरीफ की प्रतियां हैं। कईयों पर तो सोने के पानी से काम किया गया है। साइज में बड़ी से बड़ी भी है और छोटी से छोटी भी। चांदी के बर्तनों का संग्रह भी देखने योग्य है। इन में योरुप तथा भारत के बने पात्र अधिक हैं। एक विभाग में मुगलों के समय की पोशाकें रखी हैं। प्राचीन शस्त्रास्त्र भी अधिकतर मुगलों के समय के ही हैं। एक स्थान पर तो छड़ियों का ढेर सा लगा था। हाथ में पकड़ने की छड़ियों के मूठ बड़े ही सुन्दर तथा अद्भुत थे। युद्धभूमि में योद्धाओं द्वारा पहिने जाने वाले कवच आदि देखते हुए हम आगे बढ़े। सामने एक बड़ा खुला बरामदे जैसा स्थान मिला जिसे 'बुतों का हाल' कहें तो ठीक होगा। इस विभाग में स्त्री तथा पुरुष की भिन्न प्रकार की संगमर्मर की प्रतिमाएं रखी हैं। यहां बहुत से महान् वैज्ञानिकों तथा दूसरे बड़े लोगों के 'बस्ट' हैं। यहीं एक बुत है जिस में माता अपने बच्चे को दूध पिला रही है। पत्थर की इस प्रतिमा में ममता का सजीव चित्रण दर्शकों को आकृष्ट किए बिना नहीं रहता।

यहां एक विशेष विभाग है जिसमें हीरे जवाहरात आदि कीमती पत्थर जड़े हथियार तथा जेवर रखे हैं। इसमें जाने के लिए अलग से आठ आने की प्रवेश टिकट लेनी पड़ती है। यहां शीशों की बड़ी अलमारियों में जड़ाऊ मूठों वाली तलवारें तथा जड़ाऊ दस्ते वाली छुरियां आदि रखी हैं। टीपू सुल्तान की तलवार तथा वह छुरी या चाकू जिससे नूरजहां फल काटती थी यहां देखी। मुगल शासन का यत्किंचित् आभास यहां हो जाता है। यह संग्रहालय मुगलों के वैभव का अच्छा प्रदर्शन करता है।

अब हम घड़ियों के कमरे में थे। यहाँ कई आकार-प्रकार की घड़ियां विभिन्न देशों से एकत्रित करके रखी हैं। वहाँ के सूचक ने हमें फ्रांस के लुई चौदहवें तथा लुई पंदरहवें की घड़ियाँ भी दिखाई। एक घड़ी नैपोलियन की बताई गई। यह घड़ी समय के अतिरिक्त चांद का घटना-बढ़ना भी दिखाती है। इस समय एक बजने में कुछ मिनट ही बाकी थे। बाहर आँगन में लोगों को एकत्र होते देखकर, पूछने पर पता चला कि बाहर एक अजीब घड़ी रखी है। हम भी उत्सुकतावश उसी ओर बढ़े। बरामदे के एक कोने में एक बड़ी घड़ी रखी थी। करीब दो मिनट की प्रतीक्षा के पश्चात् एक छोटी सी आकृति डायल के पास, एक छोटे से द्वार के खुलने पर, बाहर आई और पास ही लगे घण्टे पर अपनी छोटी सी हथौड़ी रख दी। अभी एक बजने में करीब आधा मिनट बाकी था अतः वह 'पुरुष आकृति' वैसे ही हथौड़ी रखे खड़ी रही। सभी दर्शक चुप्पी साधे एक टक उसी की ओर देख रहे थे। थोड़ी सी 'टरन्-टरन्' की आवाज के पश्चात् उस मूर्ति ने जोर से अपनी हथौड़ी घण्टे पर दे मारी। ऐसा करके वह मूर्ति अन्दर चली

गई और द्वार बन्द हो गया । वहीं घण्टे के पास एक दूसरी पुरुष आकृति हथौड़े से टिक टिक कर रही थी और हर चोट के साथ समय कटता जा रहा था । बिना ध्यान दिए हम जीवन के दिन, रात, महीने तथा वर्ष बिता देते हैं और जब सोचते हैं तो घड़ी की टिक टिक के साथ चलना भी घबराहट में डाल देता है ।

अभी देखने योग्य अनेक वस्तुएं शेष थीं और मन में उनके लिए उत्सुकता भी काफी थी लेकिन हमें हैदराबाद से लगभग १८ मील दूर बोलारम में अपने एक सम्बन्धी के पास पहुंचना था इसलिए हम पुन: कभी आने की इच्छा लिए वहां से विदा हुए ।

गोलकण्डा

इस किले के ऐतिहासिक पहलू पर ऊपर लिख आए हैं अत: यहां हमें किले के विषय में ही थोड़ा उल्लेख करना है । आज इतवार था और हमने प्रोग्राम के अनुसार गोलकंडा देखने जाना था, अत: प्रात: से ही तैयारी होने लगी । खाना साथ ले लिया गया जिससे पिकनिक भी हो जाए और किला भी देख लिया जाए । सब ठीक ठाक करके हमने करीब नौ बजे 'बोलारम' से प्रस्थान किया । गोलकण्डा का किला संसार के प्रसिद्ध हीरे 'कोहेनूर' का घर कहा जाता है । कहते हैं यह स्थान पुराने समय में हीरों की कटाई तथा पालिश आदि के लिए प्रसिद्ध था। यह किला चार सौ फुट ऊंची पहाड़ी पर पांच मील के घेरे में बना है । इसके नौ द्वार थे परन्तु अब केवल चार ही खुले हैं। 'फतह दरवाजे' का नामकरण औरंगज़ेब ने किया था । जैसा पहले लिखा जा चुका है। १६८७ ई० में औरंगज़ेब जब आठ महीने तक मुहासरा किए पड़ा रहा था तो अब्दुल्ला खां पन्नी ने यही द्वार चोरी से खोल दिया था । 'बाला हिसार' आदि किले की ऊंची पहाड़ी के डेढ़ मील के घेरे में है । इसमें कुतुबशाही महल, दर्बारे आम, दर्बारे खास, दीवाने आम, दीवाने खास, तालाब, शस्त्रागार, मस्जिद, एक मन्दिर तथा रामदास की जेल देखने योग्य स्थान हैं । इनमें अब अधिकतर खण्डहर ही हैं परन्तु उनके पीछे की कहानी के प्रति रुचि रखने वाले यात्री, गिरती दीवारों, टूटे-फूटे छतों वाले महलों को देख कर ही कल्पना लोक में पहुंच जाते हैं । उन्हें कल्पना के पंखों पर सवार कराने वाला होता है—'गाइड' । हमारा 'गाइड' था एक तेरह-चौदह वर्षीय बालक—शफीक अहमद । स्कूल में पढ़ता था । उर्दू खूब अच्छी और तेज़ बोलता था । इसका उच्चारण बहुत साफ और खालिस हैदराबादी था । जब वह हमारे साथ हो लिया तो हमें उसके 'गाइड' होने की सामर्थ्य पर पहले सन्देह हुआ परन्तु थोड़ी देर के बाद जब उसने हमें किले से सम्बन्धित कहानियां सुनानी आरम्भ कीं तो हम उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा

करने लगे। 'बाला हिसार' के द्वार से भीतर जाने पर एक गुम्बद है, जिस के ठीक बीचों बीच खड़े होकर यदि ताली बजाई जाए तो उसका कम्पन गुम्बद के ठीक बीच से बड़ी देर तक सुनाई देता है। यदि आप थोड़ा इधर-उधर दो-चार गज़ हट कर ताली बजाएं तो ऐसा नहीं होगा। कहा जाता है कि पुराने समय में इसका प्रयोग, किसी खतरे का पूर्वाभास होने पर, किले के सब से ऊपर के भाग में खबर पहुंचाने के लिए किया जाता था। खैर, जो भी हो, हमने देखा कि प्रत्येक सैलानी यहां पर बड़े शौक से बारम्बार ताली बजाता है और उसका कम्पन सुनकर अचम्भित होता है और यह जानकर कि उसने बहुत बड़ा भेद जान लिया है, प्रसन्न भी होता है। जिस रास्ते से घूम कर यात्री ऊपर की ओर चढ़ते हैं उसके किनारे सिपाहियों के लिए बैरकें, 'अकन्ना' तथा 'मदन्ना' नाम के मन्त्रियों के महल, दफ्तर, खज़ाना, तालाब आदि बने हैं। थोड़ी दूर पर बने तालाबों में अब भी पानी है, परन्तु वहां पेड़-पौधे इतने उग आए हैं कि अब हमें उन दिनों की कल्पना ही करनी पड़ती है जब कभी उन में निर्मल जल रहा होगा।

रामदास की जेल

कांचरेला गोपन्ना को भक्त रामदास के नाम से याद किया जाता है। अबुल-हसन तानाशाह (१६७४ ई०) के समय वह भद्राचलम् का तहसीलदार था। वह मदन्ना मन्त्री का भतीजा था। तहसीलदार रामदास को राम भक्त होने के कारण राम मन्दिर बनवाने का विचार आया। उसने शाही खजाने से कई लाख रुपया गबन किया और भद्राचलम् में एक शानदार राम मन्दिर बनवाया। जब तानाशाह को गबन का पता चला तो उसने रामदास को 'बारहदरी' के नीचे एक बड़े कमरे में कैद कर दिया। यह कमरा सम्भवतः स्टोर रहा होगा। इस कमरे को चारों ओर से बन्द करके केवल छत पर एक सूराख रहने दिया गया था, वहां वह बारह वर्ष कैद रहा और कमरे के अन्दर एक ओर पत्थर की दीवार पर धीरे धीरे खोद कर उसने राम, लक्ष्मण तथा हनुमान जी की मूर्तियां बनाईं और उनकी पूजा करता रहा। एक दिन उसने भगवान् राम से प्रार्थना की—"हे प्रभु! मैंने तो आपके लिए इतना कुछ किया, परन्तु आप हैं कि टस से मस ही नहीं होते।" इसके पश्चात् कहते हैं कि तानाशाह ने उसे छोड़ दिया। भद्राचलम् की तीर्थयात्रा करने वाले तब तक इसे पूर्ण नहीं समझते जब तक वे 'रामदास की जेल' को नहीं देख लेते।

एलम्मा देवी का मन्दिर

इसे अकन्ना तथा मदन्ना ने, जो कुतुबशाही वंश के अन्तिम सुल्तान तानाशाह के मन्त्री थे, बनवाया था। यह दुर्गा का मन्दिर है तथा यहां आषाढ़ मास में प्रतिवर्ष हजारों यात्री आते हैं।

हतयान वृक्ष

नए किले में मुल्ला ख्याली मस्जिद के पूर्व में यह वृक्ष है। यह सच ही एक अद्भुत पेड़ है। अनुमान लगाया जाता है कि यह वृक्ष ५५० वर्ष पुराना है। इसका तना नीचे से ८५ फुट के घेरे में है। इसकी छाल हाथी की सूंड जैसी प्रतीत होती है। हाथी के शरीर की सी झुर्रियां इस पर दिखाई देती हैं। तना बीच से खोखला है। हम भी ऊपर चढ़कर अन्दर खोखले स्थान में उतरे। अन्दर एक ५० वर्ग फुट का बाकायदा कमरा दिखाई देता है। वृक्ष को ऊपर से देखने पर वह बहुत छोटा लगता है क्योंकि ऊपर बहुत कम फैलाव है।

किले के भीतर जनाना महलों के खंडरात देखते हुए हम बाहर आए। यहां पर रोमान्चक व्यक्तित्व की तारामती, प्रेमामती, हयात बख्शी बेगम और भागमती आदि रानियों के महलों के केवल निशान ही अब बाकी रह गए हैं। आजकल किले में काफी लोग आवाद हो गए हैं। खेती लायक जमीन पर धान की फसलें देखीं। यहां पर सड़कें भी हैं जिनसे यात्री सुविधा से चारों ओर घूमकर देख सकते हैं।

चारमीनार

यह चार मीनारों वाली इमारत (१५९१ ई० में) सुल्तान मुहम्मद कुली ने बनवाई थी। चार महराबों पर बनी इसकी छत पर चारों कोनों में अस्सी फुट ऊँचे चार मीनार बने हैं। प्रत्येक मीनार चार भागों में विभाजित है। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। भूमितल से ऊपर तक प्रत्येक मीनार १८० फुट ऊंची है। इस पर चढ़ने के लिए बीस पैसे की टिकट लेनी पड़ती है।

पब्लिक गार्डन्स

छठे आसिफ जाह के समय में बने ये गार्डन्स शहर के लोगों के लिए खुले हैं। इनमें बहुत सी पब्लिक बिल्डिगें बनी हुई हैं, जैसे—विधान सभा, हैदराबाद म्यूज़ियम, चिड़िया घर, हैल्थ म्यूज़ियम, अजन्ता पैविलियन, जुबली-हाल और बाल-लाईब्रेरी। छायादार पेड़ों के नीचे बनी एक झील में सटीमबोट भी रखी है जिसमें बच्चे तथा बड़े सैर करते हैं। पब्लिक गार्डन्स के चारों ओर एक दीवार बनी है जिसमें दो बड़े तथा काफी ऊंचे गेट हैं।

अजन्ता पैविलियन

इस बिल्डिंग में अजन्ता के प्रसिद्ध चित्रों की उसी साईज में रेखानुकृतियां रखी गई हैं। इन चित्रों को देख कर अजन्ता के दो हज़ार वर्ष पूर्व अद्भुत चित्रों का यत्किंचित् अनुमान लगाया जा सकता है। यहीं दूसरी ओर आज के

चित्रकारों द्वारा बने चित्र भी रखे हैं। जिन पर अजन्ता-चित्रों का प्रभाव साफ दृश्टिगोचर होता है। देखने वाला सहज ही अनुमान लगा सकता है कि इनको बनाने में अजन्ता के अमर चित्रों से ही प्रेरणा मिली है।

हैल्थ म्यूज़ियम

यह हैल्थ म्यूज़ियम, अजन्ता पैविलियन के बिल्कुल सामने है। यह एशिया भर में सर्वोत्तम माना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि जनता को सेहत तथा सफाई आदि की शिक्षा चित्रों, भिन्न प्रकार के मॉडलों आदि द्वारा दी जा सके।

हैदराबाद म्यूज़ियम

यह सरकारी अजायबघर है। यहां प्राग्-ऐतिहासिक काल की पर्याप्त सामग्री एकत्र की गई है। पुरानी हस्तलिपियों, सिक्कों, मूर्तियों, पेंटिंग्स तथा शिला लेखों का अच्छा संग्रह है। पुरातन समय के अस्त्र-शस्त्र तथा कुछ कपड़े भी यहां हैं।

फतह मैदान

मुग़ल शासक औरंगज़ेब गोलकण्डा पर मुहासरे के समय इसी मैदान में डेरा डाले पड़ा रहा था। विजेता होने पर उसने इस मैदान का नाम 'फतह-मैदान' रखा। आजकल यहां पर एक बहुत बड़ा स्टेडियम बना हुआ है जहां पर क्रिकेट के टैस्ट मैच भी होते हैं। इस के साथ ही ३०० फुट ऊंची पहाड़ी को 'नौबत-पहाड़' कहते हैं। कहा जाता है कि मुगल शहनशाहों के सरकारी फरमान इसी पहाड़ी पर से ढोल पीट कर लोगों को सुनाए जाते थे।

इनके अतिरिक्त दूसरे और कई स्थान भी देखने योग्य हैं, जिनमें कुछ हैं: फलक नुमा महल, आशुर ख़ाना, चार कमान, जामा मस्जिद, यूनानी हास्पिटल, मक्का मसजिद, पुरानी हवेली, हाई कोर्ट, उसमानिया हास्पिटल, स्टेट लाइब्रेरी, गाँधी-भवन, जुबली-हिल, रैज़ीडैन्सी (अब महिला कालेज), उस्मान सागर, हिमायत सागर, मीर आलम टैंक इत्यादि इत्यादि।

बिल्हण: एक अध्ययन

काशीनाथ दर

प्रात: स्मरणीय कश्यप की तपोभूमि कश्मीर पर वीणावादिनी सरस्वती की भी विशेष कृपा रही है। प्रकृति ने जहां इस पर्वत-कन्या की लीलास्थली का दिल खोल कर शृंगार किया वहां इसके सहृदय निवासियों ने अपने मन का उबाल संस्कृत के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करके इस की रसात्मक अनुभूति का प्रणयन किया। ईसा पश्चात् नौवीं से बारहवीं शताब्दी तक कश्मीर के साहित्याकाश पर कई तेजवान नक्षत्र उग आये जिन्होंने अपनी रससिद्ध रचनाओं से मां भारती' का नाम उज्जवल किया। सम्भवत: यह चार सौ वर्ष कश्मीर में संस्कृत-सम्बन्धी मौलिक तथा सृजनात्मक उद्योगों की पराकाष्ठा या परिणति कहलायेगा। इस युग के मनीषियों ने देववाणी की समृद्धता में कई अध्याय जोड़ दिए और इसके पन्नों पर इस भाषा की महक सुरक्षित रखी। कश्मीर का प्राचीन नाम 'शारदा देश' तो यथार्थ ही प्रमाणित हुआ।

साहित्य के सम्बन्ध में नये उपमानों का आविष्कार हुआ। साहित्य के लक्षण बनाते समय उसके भावपक्ष (आत्मा) और कलापक्ष [शरीर] का निर्देशन यथौचित रीति से हुआ। आलोचना-शास्त्र का कश्मीर में प्रथम बार प्रवेश हुआ और तत्सम्बन्धी चेष्टाएँ बराबर जारी रहीं, किसी साहित्यक रचना को परखने के लिए नये नियम निर्धारित हुये। पुराने प्रमाणों का खंडन साग्रह तथा सविश्वास किया गया। यहां तक इन महानुभावों की सक्रिय सजीव तथा रचनात्मक चेष्टाएँ

रंग लाईं कि इन के नाम पर संस्कृत साहित्य में औपचारिक रूप से कई शाखाएं प्रस्थापित हुईं। आनन्दवर्धन की 'ध्वनि-शाखा' तथा वामन की 'रीति-शाखा' तो सर्वप्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त मम्मट् के 'रस-निरूपण' की महत्ता आज भी अक्षुण्ण है। रुद्रट्, कैयट् और कुन्तक की भी देन इस दिशा में सराहनीय है। डा० राघवन् के शब्दों में, "यदि हमारे पास कोई ऐसा रस-शास्त्र है जो समान रूप से सब ललित-कलाओं पर लागू हो सके, तो इसके लिए हम कश्मीर के ऋणी हैं।"

नाट्य-शास्त्र तथा दर्शन के समान विचित्र विषय एक ही दिव्य साहित्यकार की कल्पना की उपज हो सकते हैं, यह चमत्कार अभिनवगुप्त ने कर दिखाया। कश्मीरी साहित्यकारों की बहुश्रुत प्रतिभा विरोधहीन है और उनका अध्ययन निष्कलंक। उनका भाषा पर अधिकार दोषरहित है और उनके विचार सारगर्भित।

ऐसी विचारोत्तेजक जलवायु में जिसकी सम्पन्नता प्राकृतिक छटा से कई गुना बढ़ गई थी एक अप्रतिम दर्शन-शास्त्र का विकास हुआ जिसे साधारण शब्दों में 'शैव-दर्शन' कहा जाता है। यह दर्शन "यथार्थवाद, स्वयंसत्तावाद परमेश्वरवाद तथा रहस्यवाद का समन्वय है जो उस समय के कश्मीर के जन-मानस में तरंगित हो रहा था"[2]। स्पष्ट रूप से यह दर्शन शास्त्र "व्यक्ति और जाति, अद्वैत और द्वैत विचारधाराओं का मधुर समिश्रण है जिस में बौद्ध और कट्टर-पन्थियों के आचार-विचार भी अदृश्य रूप से प्रवेश पा गये हैं।[3]" डा० राधाकृष्ण काव इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं: "इस दर्शन में 'आत्मन्' की पहचान (प्रत्यभिज्ञा) पर अधिक जोर दिया गया है जो मानव की सबसे बड़ी थाती है। मानव की बुद्धि और मेधा के सीमित होने के कारण 'आत्मज्ञान' के लिए इन्द्रियातीत अनुभूति की अपेक्षा रहती है।[4]" इन दार्शनिकों में सोमानन्द तथा उत्पल के नाम प्रतिपादकों के रूप में और अभिनवगुप्त का नाम प्रचारक के रूप में उल्लेखनीय हैं।

स्पष्ट कारणों से 'शारदा' के इन सपूतों ने अपने वातावरण के प्रति उदासीन रहकर अपनी स्वप्निल कल्पना की भरपूर पेंगें बढ़ायीं और संसार भर के लिए एक शाश्वत साहित्य का सृजन किया; परन्तु क्षेमेंद्र की विद्रोही आत्मा

---

1. Presidential address; 25th A. I. Oriental Conference Oct. 1961.
2. Dr. K. C. Pandey in his introduction to भास्करी
3. Raghavan, Presidential adress 25 th A. I. Oriental Conference Oct. 1961.
4. 'Sharda Peetha' Research series Vol. 1, January, 1959.

इस लीक पर चलने को तैयार न हुई। एक सजग कलाकार की तरह इन्होंने अपने चारों ओर देखा, पांव तले की धरती को तोला और इस प्रकार आदर्श के खूंटे से न बन्ध कर यथार्थ को अपनी लेखनी की नोक पर समो कर रख दिया। क्षेमेंद्र स्वभाव से यथार्थवादी और संस्कारवश व्यंग्यकार थे। इन्होंने इस कटू सत्य के वाहन रूप से विविध विषय चुने परन्तु इन सब में व्यंग्य की मात्रा अधिक मुखर है। कविता, इतिहास, अलंकार-शास्त्र तथा छन्दशास्त्र इन सब प्रांजल विषयों पर क्षेमेंद्र ने अपनी कलम आजमाई परन्तु अधिक सफल वे यथार्थवादी समसामयिक चित्रण में ही हुए; वारवनिताओं का मधुर परन्तु विषैला हास-विलास, वनियों की धूर्त्तता, मार्ग-पतियों की घूसखोरी इत्यादि ऐसे प्रसंग उन्हें आजकल के तथाकथित प्रगतिशील साहित्य के प्राचीन जन्मदाताओं की पंक्ति में खड़ा कर देते हैं। डा० सूर्यकान्त के शब्दों में, "क्षेमेंद्र की प्रवाहयुक्त शैली, उसका स्पष्ट भावप्रकाशन, व्यंग्य से पूरा लाभ उठाने का उसका सामर्थ्य और उसकी समीक्षात्मक अन्तर्दृष्टि, इन सब ने मिल कर उसके लिए साहित्य में एक अमर कलाकार का स्थान सुरक्षित रखा है"।[5]

मेकडेनल के विचार में "भारतीय साहित्य में इतिहास का निर्बल स्थान है, वास्तव में इस का कहीं आस्तित्व ही नहीं।"[6] हमारे साहित्यकारों में ऐतिहासिकता का अभाव स्पष्टतया उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण का फल है, हम यह मानने को कभी तैयार न होंगे कि वे इस कला में सिद्धहस्त न थे। वे व्यक्ति के नश्वर जीवन को साहित्य के पृष्ठों पर इसे इतिहास का नाम दे कर अमर बनाने के पक्ष में न थे। ऐसी ही इन की शिक्षा-दीक्षा थी, विश्वास थे, आस्थाएं थीं, इतना सब कुछ होते हुए भी जब किसी साहित्कार ने इस क्षेत्र में अनाधिकार चेष्टा करने का साहस किया है, तो वह प्रयास शतश: असफल नहीं रहा है। कई अभावों के रहते हुए भी कल्हण की राजतरंगिणी' इस दिशा में एक प्रशंसनीय परिश्रम है, जिसकी जोत आगे चल कर जोनराज, श्रीवर और प्राज्य भट्ट ने जगाये रखी। "राजतरंगिणी संस्कृत साहित्य में एकमात्र इतिहास ग्रंथ है, यद्यपि इसमें दैवी तथा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का भी समावेश हुआ है, फिर भी इस का ऐतिहासिक तत्त्व सर्वथा अप्रमाणिक नहीं, हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि कल्हण संस्कृत वाङ्मय का सबसे बड़ा इतिहासकार है।[7]"

जैसे कि कई बार आग्रह किया गया है कि संस्कृत केवल शिष्ट-समुदाय की

5. Ksemendra studies 1954.
6. History of Skt. Literature.
7. V. G. Iyengr, classical Skt. Literature.

भाषा थी और इसे जन-भाषा की पदवी कभी प्राप्त न थी, यह मत कश्मीर के इस अपूर्व साहित्य-भण्डार को देख कर निर्मूल प्रतीत होता है।

यदि ऐसा होता तो कश्मीर के साहित्यकार अपनी रचनाओं का माध्यम संस्कृत ही क्यों चुनते; उन्हें कौन समझ पाता? उनका सम्पूर्ण साहित्य पढ़ने वालों के अभाव में निरुद्देश्य बन जाता। संस्कृत जैसी भाषा का चयन करके वे सहृदय समाज की धड़कनें पहचान पाये थे। उन्हें विश्वास था कि संस्कृत जैसी भाषा ही जन-जीवन के हर एक स्तर को आन्दोलित फलत: प्रभावित करने की क्षमता रखती है। बिल्हण के ये शब्द इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं :

"यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव,
प्रत्यावासं विलसति वच: संस्कृतं प्राकृतं च।"[8]

इस साक्षी की पुष्टि में 'स्टाइन' यह कहते हैं, "मुसलमानों में भी संस्कृत का निर्बाध तथा निरन्तर प्रयोग श्रीनगर में बहाउ-दीन साहिब के मज़ार में स्थित एक कबर के संस्कृत में उत्कीर्ण लेख से सिद्ध होता है (ईसा पश्चात् १४८४)।"[9] अत: यह अनुमान करना कि संस्कृत जन-भाषा के रूप में अपनी महत्ता खो चुकी थी, नितान्त भ्रमपूर्ण है। आगे चल कर यह प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेता यह तथ्य लिपिबद्ध करते हैं—"मैंने श्रीनगर, मार्तण्ड के समीप और इधर-उधर मुसलमानों की बहुत पुरानी कबरों पर संस्कृत में संक्षिप्त शिलालेख पाये हैं।"[10] इस तरह बाह्य तथा आन्तरिक साक्षी के आधार पर हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि कश्मीर में संस्कृत का प्रयोग जन-भाषा के रूप में सर्वथा विद्यमान था।

इसी सांस्कृतिक नवचेतना के स्वर्णयुग में जब संस्कृत न केवल विद्वानों के लिए मस्तिष्क के व्यायाम को सामग्री जुटा देती थी, अपितु साधारण जनता के मौखिक आदान-प्रदान की भी वाहन थी, बिल्हण के शिशु शरीर ने संसार में आंखें खोलीं। उसके जन्म से पूर्व ही वह परिवेश तैयार हो चुका था जिस पर सौभाग्य ने बिल्हण को अपनी कल्पना का रंग चढ़ाने को भेजा था। यह पृष्ट-भूमि सोने में तोले जाने के योग्य थी, इसके संस्कार उसके लहू में इतने हिल-मिल गये थे कि परदेस में भी रह कर उसे स्वदेश की मीठी याद बराबर गुदगुदाती रही।

---

8. विक्रमाङ्कदेवचरितम XVIII, 6.
9. Rajatarangini, English Translation, Introduction.
10. Ibid.

कल्हण की राजतरंगिणी में बिल्हण का प्रथम उल्लेख आया है :

'कश्मीरेभ्यो विनिर्यान्तं राज्ये कलशभूपतेः ।
विद्यापतिं यं कर्णाटश्चक्रे पर्माडि-भूपतिः ।।

प्रसर्पतः करीटिभिः कर्णाटककान्तरे ।
राज्ञोग्रे ददृशे तुगं यस्यैवातपवारणम् ।।

त्यागिनं हर्षदेवं स श्रुत्वा सुकवि-वान्धवम् ।
बिल्हणो वचनां मेने विभूतिं तावतीमपि ।।''

बिल्हण के कुछ श्लोक मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' और काव्यतन्त्र की 'बाल-बोधिनीवृत्ति' में भी मिलते हैं। कुछ सुभाषितावलिओं में उनके नाम से दिए गए उपदेशात्मक श्लोक भी पाये जाते हैं। इससे यह बात साफ हो जाती है कि बिल्हण यद्यपि कश्मीर से बहुत दूर था, फिर भी यहां की रसिक जनता में इस की लोकप्रियता बनी रही।

इस 'कश्मीरी कवियों में रत्न'[12] बिल्हण को प्रकाश में लाने का श्रेय वास्तव में डा० बूहलर को है। विधि की विडम्बना से यह सुकार्य भी कश्मीर से बाहर ही सम्पन्न हुआ। संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में जब डा० महोदय जैसल-मेर में थे तो उन्हें वहां 'विक्रमांकदेवचरितम्', की एक पुरानी प्रति नारियल-पत्तों पर लिखी हुई मिली। बिल्हण को प्रकाश में लाने के सम्बन्ध में यह घटना प्रथम मील-पत्थर कहलायेगी। राजतरंगिनी के कलकत्ता संस्करण में बिल्हण के के स्थान पर रिल्हण लिखा गया है।[13] परन्तु प्रवीण डाक्टर महोदय ने इस रिल्हण को बिना किसी संकोच के 'बिल्हण' ही समझा। उनका अनुमान परवर्ती खोज के आधार पर सच निकला। शारदा लिपि में 'र' और 'ब' के देखने में समान चिन्हों में गड़बड़ होना स्वाभाविक है; इसलिये जब लिपिकार ने शारदा अक्षरों में लिखी गई 'तरंगिणी' का देवनागरी अक्षरों में रुपान्तर किया तो उसे स्पष्ट कारणों से अनजाने में यह भ्रम हो गया होगा और 'ब' के बदले उसने 'र' लिखने की त्रुटि की होगी। डा० स्टाइन के संशोधित संस्करण में बिल्हण ठीक तौर से लिखा गया है।

प्रतीत होता है कि 'बिल्हण' शब्द संस्कृत-मूलक नहीं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इसका मूल 'दर्द' भाषा में मिले और इस शब्द का उस बोली में कोई अर्थ रहा हो। इस सम्बन्ध में अधिक गवेषणा वांछनीय होगी। ऐसी ही बात

---

11. राजतरंगिनी VII 935—37.
12. A. B. Keith, History of Classical Skt. Literature.
13. Rajatarangini VII 937.

कल्हण के विषय में भी कही जा सकती है, जिसे कई पाश्चात्य आलोचकों ने 'कल्याण' का विकृत रूप समझा है; इस 'कल्हण' का उल्लेख मंख के 'श्रीकण्ठ चरितम्' में मिलता है।[14] परन्तु ऐसा अनुमान निर्मूल है क्योंकि स्पष्ट है कि कुछ नामों को छोड़ कर कश्मीरी साहित्यकारों ने संस्कृत की अपेक्षा अपनी मातृ भाषा के उस समय के रूप में से अपने नाम चुनने अधिक श्रेयस्कर समझे, उदाहरणार्थ मम्मट् और अन्य टकरान्त नाम जिनका प्रचलन कश्मीर में बहुत रहा।

विल्हण अपने जन्मस्थान के विषय में मौन नहीं। अन्य संस्कृत कवि अपने परिचय की ओर उदासीन हैं; यही मूलकारण है कि उनका जीवनवृत्त धुँधलके में छिपा रहता है जिसके फलस्वरूप समीक्षक उनके सम्बन्ध में विश्वास से कुछ नहीं कह सकते। हमारा कवि इसका अपवाद है। वह आत्मवृत्त के प्रति जागरूक है। "वह घास के ढेर की ओट में रहना नहीं चाहता।[15]" जिस गांव में उसका जन्म हुआ, उसके सम्बन्ध में वह यह लिखता है :

"तस्मादस्ति प्रवरपुरत: सार्धगव्यूतिमात्रां
भूमिं त्यक्त्वा जयवनमिति स्थानमुत्तुङ्गचैत्यम्।
कुण्डं यस्मिन्नमलसलिलं तक्षकस्याभिहर्तुं-
र्धर्मध्वंसोद्यतकलिशिरच्छेदचक्रत्वमेति ॥

यस्यास्ति 'खोनमुखं' इत्युपकण्ठसीम्नि।
ग्राम: समग्रगुणसंपदवाप्तकीर्ति:[16] ॥

यह 'खोनमुख' ग्राम आज भी प्रवरपुर [श्रीनगर] से इतनी दूरी पर स्थित है जितनी हमारे कवि ने लगभग ८०० वर्ष पूर्व बताई है। इन ढाई कोसों पर भूगोलिक परिवर्तनों ने कोई परिवर्तन करने का दुस्साहस नहीं किया है।

कई संस्करणों में 'खोनमुख' के अन्तिम 'ख' में प का रूप भी मिलता है। डा० बूलर इसी को यथार्थ ठहराते हैं। उनका तर्क है कि लिपिकर जैन धर्मावलम्बी हुआ होगा जो 'ख' और 'प' में उच्चारणभेद नहीं करते। परन्तु इस अनुमान में तर्क की मात्रा बहुत कम है; प्रतीत होता है कि यहां पर कश्मीरी उच्चारणभेद हमारे आड़े आता है। कश्मीरी उच्चारण के अनुसार अन्तिम 'ओष' (संस्कृत) ध्वनि का 'औह' में विकार हो जाता है, जैसे संस्कृत 'पौष' कश्मीरी 'पोह'। इसके साथ ही महाप्राण ध्वनियों के प्रति कश्मीरी बहुत कम ध्यान देते

14. Dr. Keith and others.
15. Dr. Buhler, Kashmir Report.
16. विक्रमाङ्कदेवचरितम् XVIII, 70, 71.

हैं। मध्य में आने वाले 'ओ' और 'उ' ध्वनियों को भी वे एक समान उच्चरित करते हैं। इस तरह बिल्हण का संस्कृत में दिया गया 'खोनमुख' कश्मीरी में स्पष्टतया 'खुनमुह' बन जाता है। आज कल की हिन्दी में ही देखिए, संस्कृत मुखम् 'मुंह' बन जाता है। इस धारणा के अनुसार हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि 'खोनमुख' आधुनिक 'खुनमुह' ही है। केवल नाम से ही नहीं, बिल्हण के दिए गए अन्य भूगोलिक तथ्य भी आज कल इस नाम की टेकड़ी (चैत्यम्) के यथार्थ होने की पुष्टि करते हैं। द्राक्षावन, तक्षकनाग इत्यादि उसी रूप में आज कल भी विद्यमान हैं।

सब से प्रबल कारण पाठों की अशुद्धता के सम्बन्ध में स्वयं शारदा लिपि है। यह लिपि इतनी जटिल है और कई शब्दों के ध्वनि-चिन्ह इतने मिलते-जुलते हैं कि कोई बिरला लिपिकर ही जो स्वयं बहुत अच्छी संस्कृत जानता हो शुद्ध रूपान्तर देने में सहायक हो सकता है। साधारणतः लिपिकर उतने पढ़े-लिखे नहीं होते, अतः कभी कभी पाठ भेद आ जाता है जो अर्थ का अनर्थ भी कर बैठता है। आजकल भी शारदा लिपि से परिचित कश्मीरी ब्राह्मणों में यह बात सब जानते हैं कि ये संस्कृत के निष्णात पण्डित शुद्ध लिपि सीखने का प्रथम सोपान 'स' और 'म' में अन्तर जानने को कहते हैं। सम्भवतः यही बात लिपि की जटिलता को सिद्ध करती है।

यह 'खोनमुख', 'पुरन्दर-अधिष्ठान' (कश्मीरी पांदरेठन) से बायीं ओर लगभग दो मील पर स्थित है। 'पुरन्दर-अधिष्ठान' श्रीनगर-जम्मू राजपथ पर पांचवें मील पर बसा है, यहां से एक सड़क बायीं ओर को 'ज्वालामुखी तीर्थ' तक जाती है, इसी सड़क पर बिल्हण का जन्मग्राम है। इसी के समीप 'बुयन' और 'ख्रिव' भी हैं। वस्तुतः यह प्रदेश ज्वालामुखीमयी है। 'जयवन'[17] जिसकी ओर बिल्हण ने स्पष्ट संकेत किया है आज कल 'ज्यवन' नाम से प्रसिद्ध है।

'तक्षकनाग' जिसे कवि ने 'धर्मध्वंसं' में उद्यत[18] कलि के सिर को काटने वाले चक्र की उपमा दी है, सांस्कृतिक पराजय का ज्वलन्त प्रमाण है। आजकल

---

17. विक्रमाङ्कदेवचरितम् XVIII, 70 71.

18. Ibid.

इसके समीप एक मस्जिद है तथा चारों ओर कबरें हैं। पानी भी गंदला है। अमलसलिला का कहीं नाम भी नहीं। साथ ही यह अब चक्राकार रूप में नहीं। परन्तु केसर की क्यारियां और अंगूर की वेलें वैसी ही मदमाती हैं जिनका हमारे कवि को गर्व है। परन्तु वितस्ता इस से अब बहुत दूर सरक गई है। सम्भवत: दो से तीन मील इस से दूर है, जब कवि के समय में यह इसके साथ ही बहती थी। गत ८०० वर्षों में वितस्ता का कुछ दूर खिसक जाना स्वाभाविक ही है क्योंकि अपने प्रवाह में परिवर्तन लाना और इस की दिशा बदलना नदियों का स्वभाव ही है और यह भूगोलिक परिवर्तन विश्वव्यापी है।

इसी खोनमुख ग्राम की पवित्र मिट्टी से जिस में अंगूरों की मस्ती और केसर की पावनकारी महक समोई हुई थी बिल्हण का जन्म हुआ। उनकी माता और पिता के नाम 'नागदेवी' और 'ज्येष्ठकलश' थे।[1] उनके स्वनामधन्य जनक पातंजलि के महाभाष्य के टीकाकार थे।[2] वास्तव में हमारे कवि को संस्कृत के प्रति अगाध प्रेम अपने पिता से संस्का-रूप में प्राप्त था।

कवि के जन्म अथवा मृत्यु सम्बन्धी कोई निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती। यद्यपि इसने अपने सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है,[3] परन्तु तिथियां गणित के रूप से शुद्ध न हो कर कल्पित ही मानी जायेंगी। अत: हमें इस यशस्वी गीतकार के जन्म तथा मृत्यु की अवधि निर्धारित करनी होगी। यह सिद्ध करना होगा कि वे कितने वर्ष जीवित रहे।

इस विषय में हमें बिल्हण के समसामयिक साहित्यकारों की रचनाओं को टटोलना होगा। इसके अतिरिक्त स्वयं कवि की रचनाओं से यदि सम्भव हो 'परोक्ष-साक्षी' समेटनी होगी। सौभाग्य से कल्हण ने हमें उन वर्षों के सम्बन्ध में संकेत दिया है जिस समय बिल्हण कश्मीर से बाहर चले गये[4]। वे मध्यभारत में महाराज कलश के राजकाल में चले गये। महाराज कलश महाराज अनन्त के पुत्र थे जिनका राजकाल सप्तर्षि संवत १४ (१०२९ ई० पश्चात्) से सप्तर्षि संवत ३९ (१०६४ ई० पश्चात्) तक माना जाता है। अपने राजकाल के अन्तिम दिनों में महाराज अनन्त ने अपने पुत्र कलश का अभिषेक करवाया और

1. विक्रमाङ्कदेवचरितम XVIII 79, 80.
2. Ibid.
3. Whole of the XVIII canto of विक्रमांकदेवचरितम्।
4. राजतरंगिणी VII 935 37.

अपने जीते-जी ही राज्य की बागडोर उसके हाथों में दी। यह सप्तर्षि संवत ४१ [१०५५ ई० पश्चात्] की घटना है।[5] यह वर्ष बिल्हण के प्रस्थान का समय माना जाता है[6]। प्रतिभावान क्षेमेंद्र बिल्हण से कुछ ही वर्ष पूर्व जन्मा था, इस कारण उस की साक्षी अधिक विश्वस्त मानी जायेगी।

विदेश में जाने के बाद उसके जीवन की थोड़ी सी झांकी हमें फिर कल्हण की राजतरंगिणी में मिलती है।[7] कर्णाटराज परमाडि जिसके राजकवि बिल्हण थे, ऐतिहासिक खोज के आधार पर कल्याण के चालुक्यवंशी विक्रमादित्य षष्टम् बनते हैं[8]। इनका राजकाल १०७६ ई० पश्चात् से ११२७ ई० पश्चात् माना जाता है।[9] इससे साफ है कि हमारे कवि विक्रमादित्य के राज्याभिषेक से दस वर्ष पूर्व ही कल्याण में जा पहुंचे थे। इस दशक में सम्भवत: कवि की प्रतिभा ने अपनी धाक बिठा दी होगी और विक्रमादित्य ने इनको राजा बनने पर 'विद्यापति' की उपाधि से सम्मानित किया होगा।[10] इस प्रकार सम्भव है कि बिल्हण ग्यारहवीं शताब्दी के पिछले पच्चास वर्षों में विद्यमान थे।

शंका की जाती है कि १०८८ ई० पश्चात् तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी क्योंकि उन्होंने अपने संरक्षक विक्रमादित्य के प्रख्यात सैनिक अभियान को जो इसी वर्ष में दक्षिण की ओर किया गया, कुछ भी वर्णन नहीं किया है[11]। यह कीर्ति वाहक घटना यदि कवि जीवित होते उन से कभी छूट न जाती जबकि कई साधारण घटनाओं का उल्लेख उन के विक्रमांकदेवचरितम् में आता है। इस दृष्टि ने बिल्हण के विदेश में रहने की अवधि १०६६ ई० पश्चात् से १०८८ ई० पश्चात् तक बनती है। कुल मिला कर वे २२ वर्ष विदेश में रहे और वहीं परलोक सिधारे। परन्तु कई अकाट्य प्रमाणों की आंच ये अनुमान सह नहीं सकते।

(१) यह भी सम्भव है कि वे कलश के राज्यारूढ़ होने के पहले ही वर्ष बाहर न चले गये हों। कल्हण स्पष्ट रूप से महाराज कलश के उस वर्ष के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता जिस में बिल्हण ने देश-त्याग किया। वह केवल यह कहता है कि बिल्हण कश्मीर से उस समय चले गए जब महाराज कलश का राज था।

(२) यह भी हो सकता है कि १०८८ ई० पश्चात् के लगभग महाराज

5. क्षेमेंद्रकृत नृपावलि।
6. सुवृत्ततिलकम [क्षेमेंद्र]
7. राजतरंगिणी 935—938.
8. A. B. Keith History of Classical Skt. Lit.
9. Col. Tod (Rajasthan)
10. See 7 above.
11. V. G. Iyengar classical Skt. Lit.

विक्रम की कृपा दृष्टि विल्हण पर न रही हो। राजा के कुपित होने पर कवि ने उसकी प्रशस्तियां लिखनी छोड़ दी हों।

(३) साथ ही पहले तर्क पूरक के रूप में हमने यह भी निश्चित करना है कि कल्हण की आयु उस समय क्या रही होगी जब उसने कश्मीर से बाहर अपना भाग्य आज़माने का संकल्प किया । उस समय की यातायात सम्बन्धी सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए यह अनुमानित किया जा सकता है कि उसकी आयु कम से कम उस समय २० से २५ वर्ष रही होगी।

(४) इस तरह हम निश्चय से कह सकते हैं कि वे १०४१ ई० पश्चात् से लेकर १०८८ ईसा पश्चात् तक 'कल्याण' में रहे। यदि उनकी मृत्यु-तिथि १०८८ ई० पश्चात् मान ली जाए तो वे केवल ४८ वर्ष की आयु में ही चल बसे।

(५) किसी कवि की ख्याति को टिकने के लिए कई दशकों की अपेक्षा रहती है; विशेषकर उस समय के आयु सम्बन्धी स्तर को देख कर ४८ वर्ष किसी भी गिनती में नहीं आते। यह सर्वमान्य सत्य है कि मानव की आयु में निरन्तर ह्रास आता आया। आयु विस्तार प्रतिदिन घटता ही जा रहा है; इस लिए यह कहना असंगत न होगा कि विल्हण ने १०८८ ई० पश्चात् के आस-पास साहित्यविषयक सृजनात्मक कार्यों से अवकाश ग्रहण किया हो या सन्यास ले लिया हो। वे इस वर्ष के बाद भी जीवित रहे होंगे और वास्तव में उनकी मृत्यु इस के बाद कब हुई सब अतीत की कोख में दफ़न है। सम्भव है भविष्य इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन कर सके।

जनश्रुति के आधार पर विल्हण को तीन कृतियों का रचियता माना गया है[12] : 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्[13]। एक ऐतिहासिक काव्य, चौरपंचाशिका[14], ५० पद्यों का एक मार्मिक गीत और कर्णसुन्दरी[15],४अंकों की एक नाटिका। एक और पुस्तक बिल्हन चरितम्[16] जो स्पष्टतया आत्मकथा है और उनके ही नाम से प्रसिद्ध है; परन्तु इसमें कहीं पर भी रचयिता का नाम नहीं आता। प्रतीत होता है कि प्रस्तुत 'चरित्' विल्हण के किसी प्रशंसक ने लिखा हो जो अज्ञात रहना चाहता था। परन्तु इसमें दिए गए वृत्त तथा तिथियां 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' के अठारहवें सर्ग से मेल

12. Dr. Buhler, Kashmir Report.
13. First published and edited by Dr. Buhler.
14. In Kavya mala series Vol I.
15. Nirnaya Sagar Press, Bombay, 1895.
16. Kashmir Report.

नहीं खाते। अतः इस पुस्तक को मौलिक रचना की संज्ञा देना अन्याय होगा।

इन तीनों रचनाओं में 'विक्रम०' का ही महत्व बहुत अधिक है। इस काव्य के अध्ययन से यह बात अनायास प्रकट होती है कि प्रस्तुत ग्रंथ कवि की मंझी हुई कल्पना-शक्ति और अपूर्व जीवन-दर्शन का परिचायक है। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि इस काव्य का निर्माण १०८८ ई० पश्चात् से पहले हुआ होगा क्योंकि इस में महाराज विक्रम के दक्षिण पर चढ़ाई करने का उल्लेख नहीं। इस महाकाव्य के १८ सर्ग हैं जबकि अन्तिम सर्ग वास्तव में कवि का आत्म-चरित है। इस ग्रंथ में इतिहास, शृंगार तथा युद्ध का अद्भुत समिश्रण है। महाराज विक्रम की स्तुति पर अधिक स्याही खर्च की गई है। अपने संरक्षक की वीरता, दान-वीरता तथा ललितकलाओं से प्रेम बड़े विस्तार से चित्रित किया गया है। प्रकृति-चित्रण, ऋतु-वर्णन इत्यादि पर पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। महाराज विक्रम विलासी भले ही हों, कामुक नहीं। बिल्हण का जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण उसे अपने संरक्षक के सम्बन्ध में अतिरंजना से काम लेने से रोकता है। यह तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनकी कल्पना ने ऐतिहासिकता को समूचे रूप में दबा-सा दिया है, वे कवि पहले हैं और इतिहासकार बाद में।

ऋतु-वर्णन की पृष्ठभूमि में वसन्त का यह सुन्दर शब्द-चित्रण देखिये :

"लग्नद्विरेफ ध्वनिपूर्यमाणं वासन्तिकायाः कुसुमं नवीनम्।
आसादयामास वसन्तमासजन्मोत्सवे मंगलशंख लीलाम्"[17] ॥

अथवा :

"निर्मलं प्रियतमं हृदये मे किं करोषि कलुषं रजनीश।
मुञ्च रत्नचषके मदिरां मे न वेत्सि निजमंक-कलंकम्[18] ॥

चौर पञ्चाशिका के दो प्रारम्भिक श्लोक जो इसके कश्मीर-संस्करण में पाये जाते हैं, विक्रमांकदेवचरितम् के अठारहवें सर्ग में भी दुहराये गए हैं[19] जिन से स्पष्ट है कि कवि की यह कृति उस समय लिखी गई जब अभी उसे कर्णाट में राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त इसमें 'कुन्तलाधीश' का वर्णन (जो विक्रम् का प्रतिद्वन्दी था) इस तथ्य की पूर्णतः पुष्टि करता है। प्रायः इसे

17. विक्रमांकदेवचरितम् VII, 41.

18. विक्रमांकदेवचरितम् XI,63.

19. विक्रमांकदेवचरितम् I, 21.

'चौर' कवि की रचना माना जाता है, जो वास्तव में नाम नहीं उपनाम है[20]। यह 'चौरसुरतपंचाशिका समाप्ता' पाठ से होता है[21]। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'चौर' शब्द यहां पर प्रणेता का नाम न होकर खण्ड काव्य का नायक है जिसने राजकुमारी के प्रणय का अपहरण किया है।

यह पञ्चाशिका मूलत: एक 'प्रेम-विलाप' है जिसे 'मेघदूत' की कोटि में रखा जा सकता है। पचास पद्यों में समोई हुई यह प्रणय कथा करुण-मधुर तत्व लिए हुए है। राजकुमारी के हृदय की चोरी करने के अपराध में कवि को मृत्यु दण्ड दिया जाता है। मेहन्दी से रंगे जाने वाले हाथों पर हत्या के लाल लहू का मुलम्मा चढ़ने का भय बना रहता है। फांसी के तख्ते पर पहुंचने तक कवि अपनी मीठी याद मर्मस्पर्शी पद्यों में उगल देता है। वह अपना हृदय खोल कर रख देता है। इस खण्ड काव्य (आधुनिक परिभाषा में गीत) के हर एक पद्य का पहला समस्तपद 'अद्यापि' है जो इस गीत के करुण-रस में अधिक प्रभाव पैदा करता है।

कभी कभी कालिदास की तरह बिल्हण भी अपनी कल्पना में वासना संजोये रखता है :

"अद्यापि सा नखपदं स्तनमण्डलं यत्
दत्तं मयास्य मधुपान-विमोहितेन।
उद्भिन्न-रोमपुलकैर्बहुभि: प्रयत्नात्
जागर्ति रक्षति विलोकयति स्मरामि" ॥[22]

ऐसी भी जनश्रुति है कि इस गीत में दी गई घटना कवि बिल्हण के निजी जीवन का एक पृष्ठ है। यदि ऐसा न भी हुआ हो फिर भी ऐसी घटना कवियों द्वारा कल्पित भी हो सकती है। कल्पनाशील कवि अपनी मानसिक अभिव्यक्ति में यथार्थ की अपेक्षा अनुमान से अधिक काम लेते हैं। प्रस्तुत गीत के स्वाद में अभी तक कोई अन्तर नहीं आया।

'कर्ण सुन्दरी' इसी नाम की नाटिका की नायिका है। संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों का नामकरण उन्हीं नाटकों में वर्णित नायिकाओं के नाम पर ही किया है। कहीं कहीं पर इसके अपवाद भी मिलते हैं परन्तु साधारणत: यह बात सच है। 'कवि कुलगुरु कालिदास' ने भी तो अपनी नायिका को इसी नाम के प्रख्यात नाटक में अमर बना दिया था। 'शकुन्तला नाटक' तो वस्तुत: भारत-

20. Dr. Buhler's Kashmir Report.
21. Ibid.
22. Chaur Panchasika, (London edition by Sir Edwin Arnold) 35.

रमणी रूपी शकुन्तला का तो स्मारक ही है। 'कर्णसुन्दरी' चार अंकों की एक नाटिका है जिसमें इसी नाम की नायिका और कर्णराज की प्रणय लीला का वर्णन है। यह कर्णराज चालुक्य भीमदेव के वंशज थे। अन्य संस्कृत नाटकों की भान्ति यह नाटिका न हो कर, नाट्य-गीत ही कहलायेगी। एक साधारण सी प्रेम कथा को नाटक का रूप दे दिया गया है, इसके अतिरिक्त इसमें अन्य कोई नाटकीयता नहीं। नाटकीय तत्वों के अंकुश ने कवि की प्रतिभा के पंख इस नाटिका में कतर-से डाले हैं। इतिहास तथा कल्पना का समन्वय तो इसमें है, परन्तु दोनों निराधार और कुछ अंशों में अनर्गल। कवि की कल्पना नाटक के वन्धनों में कसमसाती सी नजर आती है। गद्य सन्दर्भ संक्षिप्त तथा सरल हैं, सम्भवत: उन्हें जीवन के वहुत समीप ले आने का प्रयत्न किया गया है। प्राकृतों का प्रयोग भी सराहनीय है।

कवि नायक के मुंह से अपनी नायिका के रूप-लावण्य के प्रति उद्गार इस प्रकार कहलाता है :

> "धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्यच्छवि-
> श्चंद्रो मुक्त इव श्रिया किसलया निर्धौतरागा इव।
> नि:सारेव धनुर्लता रतिपते: सुप्तेव विश्वप्रभा
> तस्या: किंचपुरो विभान्ति कदलीस्तम्भा सदम्भा इव" ॥

इन तीनों रचनाओं में 'विक्रमांकदेवचरितम्' ही सबसे अधिक उत्कृष्ट है। भाव पक्ष और कला पक्ष में जिस मधुर समन्वय की अपेक्षा रहती है उसके दर्शन हमें इस महाकाव्य में ही होते हैं। अन्य दो कृतियां केवल प्रयोग-मात्र के लिए लिखी गई प्रतीत होती हैं। 'पञ्चाशिका' में तो कवि की कल्पना अधिक निखर आई है परन्तु 'कर्णसुन्दरी' में इसका गला घोंट सा दिया गया है। यूं तो बिल्हण की ख्याति का आधार-स्तम्भ 'विक्रमांकदेवचरितम्' ही है।

विल्हण मूलत: रोमानवादी गीतकार हैं। रोमानवादी कविता कवि के व्यक्तिगत दृष्टिकोण और जीवनदर्शन की पराकाष्ठा है। मानव में निहित स्वच्छन्द प्रवृत्ति के दर्शन हमें ऐसी ही कविता में होते हैं। ऐसी कविता के जन्म के लिए एक ऐसा वायुमण्डल होना चाहिए जिसमें न वाह्य आक्रमण और न ही आन्तरिक शोषण हो। ऐसा वातावरण कवि महाराज विक्रम के राज में स्वत: सिद्ध प्राप्त हुआ। यही सबसे बड़ा कारण है कि विल्हण ने अपने जीवन की कटुता भुला देने के लिए क्षेमराज आदि की तरह दर्शन का आंचल न थामा और न इसी तरह आलोचना-शास्त्र के जटिल विषय को हाथ में लेकर मम्मट् आदि की तरह मस्तिष्क-प्रधान ग्रंथों की रचना की। कल्हण के समान इस ने इतिहास पर कपोल-

कल्पना में बहुत कम भेद न किया। और तो और, क्षेमेंद्र की तरह इसने अपने समाज की भी भर्त्सना नहीं की, क्योंकि एक तो वह इस समाज से बहुत दूर था और दूसरा समाज की निन्दा करके जिसका अंग वह स्वयं भी था अपनी अवहेलना करना नहीं चाहता था। वास्तव में वह अपने कल्पना के संसार में इतना विभोर था कि उसे ऐसा करने के लिए न अवकाश ही था और न ही रुचि। इस कल्पना के एन्द्रजालिक स्पर्श से उसने शब्द और अर्थ का ऐसा ताना-वाना रच डाला जिसकी तुलना संस्कृत के मूर्धन्य कलाकारों से ही की जा सकती है। इस ताने और वाने में परदेश में रहते हुए भी स्वदेश के अंगूरों की मादकता और कुंकम-केसर की पवित्रता है। एक सच्चे स्वच्छन्दतावादी कवि की भांति वह अपने मनोवेगों का यथार्थ चित्रण करने से नहीं झिझकता। इसके लिए न उसे शब्द ढूंढने पड़ते हैं और न ही कलापक्ष के प्रति जागरूक रहना पड़ता है। उसका सम्पूर्ण काव्य-भण्डार उसके भावुक हृदय का दर्पण है। इन्हीं कारणों से उसके काव्य में कृत्रिमता कहीं भी दिखाई नहीं देती।

बिल्हण का प्रधान विषय श्रृंगार है। अन्य कई रस केवल इसकी प्रभावोत्पादकता के सहायक रूप ही आते हैं। "भारतीय कवियों का श्रृंगार प्रति-पादन आदर्श रूप का नहीं, इस में ऐन्द्रियिकता का समावेश है, इतना होते हुए भी इन सहृदय कवियों ने विचारों की गरिमा और भावों की सूक्ष्मता का निरूपण अनूठे ढंग से किया है।[23]" हमारा कवि श्रृंगार को अश्लीलता की सीमा तक जाने नहीं देता, और इसके साथ इस की मिठास का मानवी पक्ष हमारे सामने प्रस्तुत करता है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियों के हाथ में श्रृंगार तो कलुषित वासना का पर्याय बन कर रह जाता है। इस प्रकार ऐसे श्रृंगार-प्रतिपादन से पाठक का हृदय ऊब जाता है। बिल्हण श्रृगार के हर एक रूप में मर्यादा को हाथ से जाने नहीं देता। वह मानव भावनाओं को सुचारू रीति से प्रतिबिम्बित करता है और इसके साथ ही प्रकृति के साथ इसका सम्बन्ध भी जोड़ देता है। प्रकृति की धड़कनें मानव की धड़कनें बन जाती हैं; इस समवेदना और सहानुभूति को स्थापित करने में कवि सिद्ध-हस्त है, और कालिदास से होड़ ले सकता है।' करुण-भ्रमवाद का कलात्मक प्रयोग करने से संस्कृत के गीतकार मानव और प्रकृति को एक बना देने में सफल हुए हैं'।[24]

विदेश में रहते हुए भी कश्मीर की अपूर्व प्राकृतिक छटा ने उसके काव्य कौशल को अधिक प्रेरणामयी बनाया। मध्य भारत में अपने संरक्षक विक्रम की

23. A. B. Keith, History of Classical Skt. Lit.
24. V. S. Iyengar, Classical Skt. Lit.

प्रशस्तियों में उसने यत्र-तत्र कश्मीर की प्रकृति का ही वर्णन किया है। यह ऐसे संस्कार थे जो मातृ-भूमि से दूर रह कर कभी भी धुल सकते थे। इस प्रकार विक्रमांकदेवचरितम् में कर्णाट के प्राकृतिक वर्णन के व्याज से कवि वास्तव में कश्मीर-सुषमा का बखान करता है। ऐसा भी कभी कभी प्रतीत होता है कि कवि परदेश में शारीरिक रूप से रहते हुए भी मानसिक रूप में कश्मीर में बैठा है। 'शारदा कुंकुम, हिम तथा द्राक्षा[25]" की जन्म-भूमि की मीठी याद को वह कैसे भुलाता! हृदय के किसी अज्ञात प्रकोष्ठ में उसने यह याद संजों रखी थी, जब कभी इसे उभरने का अवसर मिला, तो कवि ने कोई चूक न की। भाषा में अपूर्व प्रवाह है; उन झरणों की तरह जो हिमालय के गर्भ से फूट फिर रुकने का नाम नहीं लेते। शैली वैसे ही निर्दोष है जैसे हिमालय के मस्तक पर कुंवारी बर्फ।

अपने पूर्ववर्ती क्षेमेंद्र[26] की तरह वह यह नहीं मानता है कि अलंकार काव्य-शोभा के बाह्य साधन हैं। वह इनका भरपूर प्रयोग करता है और इस तरह अपनी कविता-कामिनी को अलङ्कारों से यथा-स्थान सुशोभित करके अपने मन की साध पूरी करता है। इस तरह 'कामिनी' की भी अलङ्कारों के अभाव में शिकायत नहीं रहती और प्रेमी भी अपना सर्वस्व लुटाने से बाज नहीं आता! यद्यपि वह विविध छन्दों का प्रयोग करता है परन्तु 'मन्दाक्रान्ता' के प्रति इसका मोह सा है। यहां पर भी वह छन्दों के चयन में कालिदास के बहुत समीप आता है। कविकुलगुरू का अमर 'मेघदूत' इसी छन्द में रचा गया है।

अतः जब उसे इस बात पर गर्व है कि 'कुंकम केसर' और 'कविताविलास' एक ही 'शारदामाता' के बेटे हैं, तो यह कोई अत्युक्ति नहीं सूझती :

' सहोदराः कुंकम केसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः" ॥[27]

यह बात तो बिना किसी अपवाद के कही जा सकती है कि मानव-भावनाओं का सूक्ष्मतम निरुपण करने में उनकी समता अपनी मातृभूमि के साहित्यिक दिग्गज भी नहीं कर सकते। इन भावनाओं को प्राकृति के परिवेश में प्रस्तुत करना और उसमें स्वस्थ शृंगार की पैबन्द लगाना केवल उनकी ही रचनाओं में परिलक्षित होता है। सम्भवतः यही प्रबल कारण है कि जहां आलोचकों ने कालिदास को 'कविता कामिनी' का 'विलास' माना है वहां 'चौर' (बिल्हण) को

25. Raja Tarangini I, 42.
26. कविकंठाभरण III.
27. विक्रमांकदेवचरितम् I, 21.

इसका 'चिकुरनिकर' समझा है। विलास और केश-पाशों की सजधज ही किसी भी रमणी के सौंदर्य प्रसाधन के अमोघ साधन हैं। बिल्हण के प्रति यह श्रद्धा अप्रत्याशित नहीं अपितु समीचीन है।

बिल्हण को अपनी प्रतिभा का अमरफल अपने ही जीवन में प्राप्त हुआ। उसकी ख्याति भी उसके जीते जी ही फैली। सामान्यत: ऐसा सौभाग्य बहुत कम संस्कृत कवियों को प्राप्त हुआ है। कभी कभी उसके सन्तुलित व्यक्तित्व से महाराज विक्रम के पलड़े में अधिक शब्द व्यय किए गए हैं, परन्तु ऐसे धर्म-संकट में भी (जबकि विक्रम उसका एक पोषक था) उन्होंने अपनी कल्पना का दुरुपयोग नहीं किया। जहां तक भी हो सका सत्य और मिथ्या में भेद किया। यदि कहीं हमारा कवि अतिशयोक्ति के दोष से बच नहीं पाता परन्तु इस शंका का समाधान यूं भी हो सकता है कि महाराज ने कवि को सोने की मुहरें दीं और कवि ने अपना हृदय निकाल कर उसके सामने रख दिया। इस हृदय से निसृत कविता सोने की मुहरों से मूल्य में कम न थी। इस से अधिक विनिमय की कल्पना नहीं की जा सकती। राजानुग्रह का प्रत्युत्तर कवि ने अपने मानसिक-उत्तर से दिया, यदि इस में कभी कभी अनुग्रह के बोझ के फलस्वरूप कहीं कहीं अतिशयोक्ति दोष आ गया हो तो वह क्षम्य है। काव्य के सामूहिक प्रवाह में यह किसी प्रकार का गतिरोध पैदा नहीं करता।

प्रस्तुत प्रबन्ध को कवि के इस श्लोक से ही सम्पूर्ण किया जाना वांछनीय होगा। कई मित्र इसे गर्वोक्ति समझते हैं; इस में आत्म प्रशंसा की गन्ध पाते हैं। प्रश्न केवल इतना है कि क्या यह 'श्लाघा' अस्थानीय है, अनुचित है? यदि नहीं, तो कवि के मुख से इसका वर्णन इस सत्य की महत्ता घटा नहीं सकता। सत्य तो हर रूप में सत्य ही होगा। यदि कवि ने उन मित्रों के विचार में ऐसी 'धृष्टता' की हो, तो यह केवल उसके आत्म-विश्वास का परिचायक है। इस श्लोक की पुष्टि गत ८०० वर्षों से सारा संस्कृत-संसार कर रहा है और कवि के स्वर से स्वर मिला कर रटता जा रहा है :

ग्रामो नासौ न स जनपद: सास्ति नो राजधानी
तन्नारण्यं न तदुपवनं सा न सारस्वती भू:।
विद्वान्मूर्ख: परिणतवया बालक: स्त्री पुमान्वा
यत्रोन्मीलत्पुलकमखिला नास्य काव्यं पठन्ति ॥[28]

28. विक्रमांकदेवचरितम् XVIII, 89.

कश्मीर की एक प्राचीन जाति—

नाग

चमन लाल सपरु

यह एक मानी हुई बात है कि वर्तमान कश्मीर को महर्षि कश्यप ने बसाया था। ऐसी किंवदन्ती है कि इस देश में जो कि पहले सतीसर था, जलद्भू नामक एक राक्षस रहा करता था। इस राक्षस ने सरोवर के इर्द-गिर्द पहाड़ियों पर रहने वाले लोगों को काफी तंग कर रखा था। पहाड़ियों पर निवास करने वाले लोगों ने महर्षि कश्यप के पास जाकर विनती की। वे यहाँ पधारे और इस सरोवर का सर्वेक्षण करके बारामूला के पास पहाड़ को चीर कर पानी बाहर निकाल दिया। इससे पहाड़ियों के बीच का सारा भूखण्ड सूख गया और कहीं-कहीं गढ़ों में पानी रह गया। इस प्रकार इस प्रदेश में एक बड़ा भूखण्ड निवास के योग्य बना। इस भूमि का ही नाम बाद में 'कश्यप-मेरू' अर्थात् कश्मीर पड़ा।

इस घटना के पश्चात् आर्य लोग यहां आकर बसने लगे। साथ ही निकट-वर्ती पर्वतों पर रहने वाली कई जातियां भी यहां आकर निवास करने लगीं। यह जातियां अनार्य थीं। इनमें नाग, यक्ष तथा पिशाच प्रसिद्ध हैं।

पुराणों एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि हिमालय की तराई में कुछ विशेष जातियां रहा करती थीं। इनमें किन्नर और यक्ष प्रसिद्ध हैं। यह लोग गायन विद्या में बड़े निपुण थे। कश्मीर में इन जातियों

और आर्य कबीलों में प्राय: झड़पें हुआ करती थीं। किन्तु बाद में यह जातियां एक दूसरे से घुल-मिल गईं।

यद्यपि आर्यों की बहु संख्या होने के कारण उनका ही बाद में आधिपत्य रहा।

यक्ष अमावस्या का उत्सव

कश्मीर के हिन्दू पौष की अमावस्या को एक उत्सव मनाते हैं जो 'खिचड़ी-अमावस्या' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रात्रि को कश्मीरी हिन्दू खिचड़ी पकाते हैं और एक मिट्टी की तश्तरी में डाल यक्ष के लिए घर के बाहर रख आते हैं। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती यह है कि आर्य लोग प्राय: जाड़ों में भारत के गर्म प्रदेशों में निवास करते थे। एक वर्ष एक बूढ़ा शारीरिक असमर्थता के कारण जाड़ों में यहीं रह गया। जाड़ों में पहाड़ी अनार्य जातियों के कुछ लोग नीचे उतर कर घाटी में खाद्य पदार्थ आदि ढूंढ़ते रहे। जब बूढ़े से उनकी भेंट हुई तो इन लोगों ने आपस में निश्चय किया कि आपसी वैमनस्य को दूर करने के लिए आर्य लोग जाड़ों में इन अनार्य जातियों के लिए विशिष्ट पदार्थ बलि के रूप में दिया करेंगे। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि आर्य लोग इन जातियों से किंचित आंतकित रहते थे अत: जाड़ों में पंजाब आदि स्थानों में चले जाते थे।

नागराय और हिमाल

कश्मीर प्रदेश की एक अत्यन्त प्रसिद्ध लोक-कथा है। नागों के राजकुमार और आर्यों की राजकन्या की यह प्रेम कथा अति प्राचीन काल से यहां प्रचलित है।

आज यदि हम कश्मीरी रीति रिवाज, भाषा और पहनावे आदि का सूक्ष्म-निरीक्षण करें तो कुछ ऐसी बातों का पता चलता है जो प्राय: भारत के शेष प्रदेशों में नहीं मिलती हैं। जैसे कश्मीरी भाषा के दो शब्द मोल और मॉज। इनका संस्कृत पिता और माता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ उत्सव जैसे 'ख्य मावस' (खिचड़ी अमावस्या—इसका वर्णन ऊपर हो चुका है) 'गॉड-भॅत' यह उत्सव भी जाड़ों में ही मनाया जाता है। इस दिन विशेष रूप से मछली पका कर घर की सबसे ऊपर की मंजिल में 'घर देवता' के निमित्त भोजन की थाली रखी जाती है। 'दोद-घुन' कश्मीरी हिन्दू महिला जब गर्भवती होती है तो प्रसव से कुछ समय पूर्व विशेष रूप से सजधज कर मायके से दही के मटके साथ लेकर ससुराल जाती है। पितृ गृह में भी दावत होती है और ससुराल में सगे सम्बन्धियों में दही का वितरण होता है। उपर्युक्त सभी उत्सवों का सम्बन्ध

आर्य जाति से नहीं है। यह उत्सव आदि अवश्य ही हमें अनार्यों (यक्ष, नाग आदि) से परम्परा में प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार यहां के पहनावे में कुछ वस्तुएँ जैसे—पंडितानियों की 'पूच्'। कुछ विशेष ज़ेवर जैसे 'डेजिहरू', तालरज़' इनका भी आर्यों के पोशाक और अलंकारों से कोई सम्बन्ध नहीं। स्पष्ट है कि उपर्युक्त और ऐसी बीसियों वस्तुएं हमें अनाय जातियों से विरसे से प्राप्त हुई हैं और हमने इनको अपनाया है। इन बातों पर शोद्ध करने की बड़ी आवश्यकता है। खोज के लिए यह बड़ा ही मनोरंजक विषय बन सकता है। इस संक्षिप्त लेख में केवल मात्र नागों के सम्बन्ध में ही लिखा जाता है।

नाग वास्तव में हिमालय की तराई से लेकर नागा प्रदेश तक फैले हुए थे। कश्मीर और वर्तमान आसाम प्रदेश के सम्बन्ध अति प्राचीन हैं। इस बात का उल्लेख राजतंरगिणी में भी मिलता है। ये लोग साँपों के उपासक थे तथा भगवान् शिव इनके इष्ट देव। आजकल भी हिमालय से संलग्न इलाकों में शिव की पूजा विशेष उत्सवों पर होती है। शिवरात्री नेपाल और कश्मीर का प्रधान उत्सव है।

'अनन्त' साँपों के राजा हैं और भगवान् विष्णु के आसन माने जाते हैं। इसी अनन्त देवता के नाम पर कश्मीर के प्रसिद्ध कस्बे अनन्तनाग का नाम पड़ा है। कश्मीरी हिन्दू वितस्ता नदी के जन्म दिन (वितस्ता त्रयोदशी) के दूसरे दिन भाद्रपद शुल्कपक्ष की चतुर्दशी को 'अनन्त चौदस' नाम से एक उत्सव मनाते हैं। प्रातःकाल पुरोहित अपने यजमानों के घर सर्पाकार धागा बाँट कर दक्षिणा प्राप्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त कश्मीर के अनेक स्थानों के नाम आज भी नागों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। जैसे, कुकर नाग, वेरी नाग, कौंसर नाग, शीश्रम नाग, विचार नाग, नारान नाग इत्यादि। ये स्थान नागों के प्रमुख केन्द्र रहे होंगे।

नागों का हमारी वेशभूषा पर बड़ा गहरा असर पड़ा है। कश्मीरी पंडितानियां सिर पर 'पूच्' नामक एक विशेष कपड़ा ओढ़ती हैं। इसको लेई लगाकर तैयार किया जाता है। इसका रूप सर्पाकार बनता है। इसके ऊपर का भाग सिर पर साँप के फन की भांति बनता है। एक सजी-सजाई पंडितानी नागिन की भांति दिखाई देती है। 'पूच' के ऊपर के भाग को सिर के जिस भाग के साथ सटाया जाता है उसे कश्मीरी में 'आयस्तान' कहते हैं। यह शब्द आहि (सर्प) स्थान का ही विगड़ा हुआ रूप दिखाई देता है। जात कर्म संस्कार, यक्षोपवीत, तथा विवाहोत्सव पर इस 'पूज' के सिर को सिन्दूर से अथवा सुनहरी या रंगदार

कागज़ से इस प्रकार सजाया जाता है कि सिर पर सर्प का फन सा अंकित हो जाए।

इसके अतिरिक्त कश्मीरी पंडित पगड़ी इस ढंग से बाँधते हैं जैसे साँप कुण्डलाकार बैठा हो। इससे स्पष्ट है कि कश्मीरियों के सिर के वस्त्रों के ढंग का सर्पों से विशेष सम्बन्ध है। इसके साथ ही यहाँ एक विशेष प्रकार की चटाई भी, जिसे कश्मीरी में 'चाँगिज' कहते हैं सर्पाकार ही होती है। इन कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि साँपों से सम्बन्धित नाग संस्कृति का अब भी कश्मीर के जन-जीवन पर गहरा असर है।

●●●

जम्मू-कश्मीर राज्य में पुरातत्त्व-अनुसन्धान

केदारनाथ शास्त्री

कश्मीर-मण्डल

कश्मीर में पुरातत्त्व-अनुसन्धान का सूत्रपात सर्वप्रथम जनरल कनिंघम ने सन् १८४६ ई० में किया था जब कि वह पहली सिख लड़ाई के अनन्तर कश्मीर पर महाराजा गुलाबसिंह का अधिकार हो जाने पर वहां गया। उस समय यद्यपि वह थोड़ा समय ही कश्मीर में ठहरा। उसने वहां के कई एक मुख्य मुख्य प्राचीन मन्दिरों का सर्वेक्षण समाप्त किया और बहुत से महत्त्वपूर्ण ध्वंसों की प्राचीन नगरों अथवा स्थानों से एकात्मता सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की। ऐसे विस्मृत प्राचीन नगरों और स्थानों में जिनकी स्मृति को कनिंघम ने पुनः उज्जीवित किया कश्मीर की पुरानी राजधानी पुराणाधिष्ठान, ज्येष्ठेश्वर, मार्तण्ड, पद्मपुर, पत्तन आदि का उल्लेख करना आवश्यक है। प्राचीन हिन्दू मन्दिरों का जो उसने सर्वेक्षण किया उससे कल्हण की राजतरंगिणी तथा बाद के संस्कृत साहित्य में वर्णित वस्तुओं के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा। इस उपलब्ध वस्तु-सामग्री की सहायता से उसने उन सब यूनानी और रोमन तत्त्वों की मीमांसा की जिनसे कश्मीर की समकालीन वास्तुकला प्रभावित हुई थी। अनन्तर उसने अपने 'एन्शेंट

जिओग्राफी आफ इण्डिया' नाम ग्रन्थ में इस विषय पर और भी विस्तार से समालोचना की।

कनिघम के इस पुरातत्त्व-अनुसन्धान से भारत तथा यूरोप में कश्मीर के प्राचीन स्मारकों के विषय में एक नई जिज्ञासा और गवेषणा के युग का आरम्भ हुआ। सन् १८६५ में बिशप डबल्यू० जी० कौवी चैपलेन, जो कश्मीर में एक अंग्रेज अधिकारी था, ने अन्य प्राचीन मन्दिरों का, जो कनिघम की नज़रों से छूट गये थे, समीक्षण किया। सन् १८६९ में भारतीय पुरातत्त्व के सुपरिटेंडेंट मेजर एच० एच० कोल ने कश्मीर के बहुत से ध्वंस्त मन्दिरों के छायाचित्र लिए और १८७० में उन्हें प्रकाशित किया। इनमें से कुछ ध्वंस अब लुप्त हो चुके हैं, परन्तु वे कोल के रेखाचित्रों और छायाचित्रों में अब भी सुरक्षित हैं।

पूर्वोक्त पुरातत्त्व-अनुसन्धान के परिणाम से प्रोत्साहित होकर कई एक पुरातत्त्व के अनुरागी विद्वानों ने, जो ब्रिटिश सरकार के अधिकारी के रूप में अथवा यात्री के रूप में कश्मीर आए, स्वतन्त्र-रूप से कहीं कहीं थोड़ा खनन भी कराया। सन् १८६५ ई० में बिशप काटन के सुझाव पर कश्मीर सरकार ने अवन्तिपुर में कुछ खुदाई कराई जिसमें कई एक पत्थर की मूर्तियां प्राप्त हुई। सन् १८८२ में भारतीय पूरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री गैरक ने बारा-मूला के पास उष्कर (प्राचीन हुविष्कपुर) स्थान में विस्तृत खुदाई कराई जिसमें उसे पत्थर की शिलाओं का बना बौद्ध स्तूप मिला। इसी प्रकार सन् १८९१ में श्री लारेंस ने नरस्थान में थोड़ी सी खुदाई कराई जिसमें प्राचीन पाषाण-मूर्तियों के उत्तम उदाहरण पाए गए।

परन्तु कनिघम के बाद जो महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान हुआ वह जार्ज ब्यूहलर के द्वारा सन् १८७५ ई० में सम्पन्न हुआ। इसके फलस्वरूप बहुत सी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध हुई जिससे कश्मीर के इतिहास का यथार्थ अध्ययन और क्रमबद्ध निर्माण सम्भव हो सका। यद्यपि ब्यूहलर का मुख्य उद्देश्य संस्कृत तथा फारसी की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह करना था, उसने कश्मीर मण्डल के प्राचीन ध्वंसों का बड़े परिश्रम से निरीक्षण और परीक्षण किया और उनका विशद सूक्ष्म विवरण दिया। अपनी यात्रा के प्रसंग में उसने यह भी अनुभव किया कि कल्हण की राजतरंगिणी में वर्णित स्थानों की सर्वांग समालोचना के लिये कश्मीर-मण्डल की भौगोलिक जांच पड़ताल परम आवश्यक थी। अपनी रिपोर्ट में उस विधि का भी निर्देश किया जिसका अनुसरण करके इस प्रयास में सिद्धि प्राप्त हो सकती थी।

डाक्टर ब्यूहलर की निर्दिष्ट विधि का अनुसरण करके डाक्टर आरल

स्टाईन ने जो इस दिशा में अनथक परिश्रम किया उसके फलस्वरूप कश्मीर के चिर-विस्मृत प्राचीन स्थान प्रकाश में आए। उन्होंने सन् १८८८-९० तक जो अनुसन्धान किया उसका विशद विवरण उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मेमायर आफ़ दी एन्शेंट जिओग्राफी आफ कश्मीर' में दिया गया है। अपनी गवेषणा से उन्होंने 'लोहर कोट्ट' किले की खोज की, चिर-विस्मृत 'भेड़' को ढूंढ निकाला, वितस्ता और सिन्धु के संगम-स्थान तथा अन्य तीर्थों आदि का पता लगाया। स्टाईन महोदय के इस श्रमसाध्य तथा विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान से स्पष्ट हो गया कि उनकी पुरातत्त्व-सम्बन्धी उपलब्धि कश्मीर-इतिहास-श्रृंखला की एक बहुमूल्य कड़ी थी। स्टाईन के अनन्तर इस क्षेत्र में डबल्यू० एच० निकल्स ने महत्त्वपूर्ण काम किया। उन्होंनें मध्ययुगीन मुस्लिम वास्तुओं और मसजिदों का सर्वेक्षण किया और अपने विद्वत्तापूर्ण लेख १९०६-७ में बतलाया कि लकड़ी की वास्तुकला जो इस समय कश्मीर में प्रचलित है मुसलमान शासनकाल के आरम्भ (१३वीं सदी ई०) में लाई गई थी।

वर्तमान सदी के आरम्भ में जब कश्मीर सरकार ने अपने राज्य में पुरातत्त्व विभाग की स्थापना की तो इसके अधिकारियों ने प्राचीन ध्वंसों और स्थानों के संरक्षण का काम अपने हाथ में लिया और प्राचीन स्मारकों और अवशेषों की सुरक्षा तथा प्रदर्शन के लिये श्रीनगर में एक संग्रहालय की स्थापना की। १९१३-१४ ई० में श्री दयाराम साहनी ने अवन्तिपुर, उष्कर और मार्तण्ड के ध्वंसों में कुछ खुदाई कराई। उष्कर में उन्हें पकाई मिट्टी की गाँधार शैली की सुन्दर मूर्तियां मिलीं और अवन्तिपुर तथा वैरीनाग से मिश्रित गांधार-गुप्त शैली की पाषाण-मूर्तियां प्राप्त हुईं। अवन्तिपुर में मिट्टी के महाकाय संग्रह-भांड (Storage Jars) भी मिले।

सबसे अधिक महत्त्व की उपलब्धि श्रीनगर से १२ मील पूर्व की ओर हार्वन स्थान में हुई। यहां सन् १९२५ में श्री रामचन्द्र काक ने विशद खुदाई कराई। उन्हें यहां ई० तीसरी-चौथी सदियों के मन्दिरों की नींवें खुदाई में मिलीं और इसी स्थान पर उत्खात सहन में मिट्टी की टिकड़ियों पर उकेरी हुई मनुष्य-मूर्तियां भी हस्तगत हुईं। इन मूर्तियों की मुखमुद्रा और वेशभूषा मध्य-एशिया के निवासी लोगों के समान थीं। सन् १९४२ में रियासत के पुरातत्त्व-विभाग ने श्रीनगर से २२ मील और पटन से ४ मील दूर तापर के स्थान पर खुदाई कराई जिसके फलस्वरूप एक मन्दिर का अधिष्ठान प्रकाश में आया। इसी स्थान पर शिलालेखों के जो खण्ड मिले उनके पढ़ने से पता लगा कि यह मन्दिर परमाणुदेव के शासनकाल (ई० १२वीं सदी) में बनाया गया था।

सन् १९३५ में येल-केम्ब्रिज एक्सपीडीशन के नेता श्री डी० टेरा ने बुर्जहोम स्थान में एक महाश्म के मूल में खुदाई की। इसमें उन्हें प्रागैतिहासिक काल के पत्थर के कुल्हाड़े, चमकीले काले ठीकरे, वसुले, मूसल और हड्डी के हथियार-औजार मिले। खान की तह पर नवीन प्रस्तर युग का एक चूल्हा भी पाया गया। गार्डन पुरातत्त्वज्ञ के विचार में बुर्जहोम के निवासी लोगों का सांस्कृतिक-विकास-स्तर मास्की और ब्रह्मगिरि के प्रस्तरयुग के निवासियों के समान था। इस युग का काल उनके मत में ईसापूर्व १२०० के लगभग बैठता है। इस समय बुर्जहोम के प्रागैतिहासिक ध्वंस में श्री टी० एन० खजानची की देख-रेख में खुदाई हो रही है। सम्भव है कि यहां प्राचीनकाल के गर्त-निवासियों की एक लम्बी-चौड़ी वस्ती प्रकाश में आए।

कश्मीर के क्षेत्र में तथा इसके बाहर भारत के अन्य प्रान्तों में जो सोने, चांदी, ताँबा, पीतल आदि धातों की मुद्राएं (सिक्के) मिली हैं, वे पुरातत्त्व के अन्य प्रमाणों की अपेक्षा कश्मीर का इतिहास जानने के लिये किसी प्रकार कम महत्त्व नहीं रखतीं। इन मुद्राओं के अध्ययन से कुषाणकाल से लेकर आधुनिक समय तक कश्मीर के शासक राजवंशों का क्रमबद्ध इतिवृत्त मिलता है।

इन मुद्राओं के अध्ययन का आरम्भ सर्वप्रथम जनरल कनिंघम ने किया था। अपनी कश्मीर यात्रा के प्रसंग में उन्होंने इन मुद्राओं का वहुत बड़ा संग्रह किया। इन मुद्राओं तथा दूसरी प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन से उन्होंने राजतरंगिणी में दी हुई काल गणना की कई उलझनों को सुलझाया और कश्मीर के मुद्रा कला-विकास के इतिहास का संशोधन एवं संवर्धन किया। १८४६ ई० में उन्होंने 'न्यूमिस्मैटिक क्रानिकल' पत्रिका में जो लेख प्रकाशित किया उसमें उन्होंने कश्मीर-मुद्राओं के अध्ययन का सार व्यक्त कर दिया और सिद्ध किया कि कल्हण की राजतरंगिणी एवं दूसरे ऐसे ग्रंथों के विश्लेषणात्मक विवेचन के लिये प्राचीन मुद्राओं का ठीक ठीक अध्ययन करना कितना महत्त्व रखता है।

हिन्दू शासनकाल के बाद की मुद्राओं के परीक्षण से १४वीं से १९वीं सदियों के सुलतान तथा अन्य मुसलमान शासक के शासनकाल का यथार्थ बोध होता है। इस दिशा में सी० जे० राजर्स, आरल स्टाईन और आर० बी० व्हाईट हैड ने जो काम किया है वह प्रशंसनीय है।

कश्मीर-नरेशों के सिक्के कश्मीर के बाहर भारत के कई स्थानों से मिले हैं। इनमें ज़िला फैज़ाबाद, राजघाट और सारनाथ (बनारस), ज़िला मुंघेर और नालन्दा के स्थानों का उल्लेख करना आवश्यक है। भारत के दूरस्थ इन स्थानों

से कश्मीर शासकों की मुद्राओं की उपलब्धि कल्हण के द्वारा वर्णित ललितादित्य के दिगन्तव्यापी विजयों का समर्थन करती है।

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति को चीन, तिब्बत तथा मध्य-एशिया में प्रसारित करने के लिए कश्मीर-मण्डल ने जो सहायता दी वह स्मरण करने योग्य है। सन् १८९० ई० में कर्नल बाँवर को कूचा से एक भूर्जपत्र पर लिखी पुस्तक मिली। सन् १९०४ ई० में डा० फान ले काक के नेतृत्व में और बाद में डा० सुनवेडल के नेतृत्व में दो जर्मन मंडलियों ने चीनी तुर्किस्तान के कूचा, काराशहर और तुर्फान नाम प्राचीन नगर ध्वंसों से महत्त्वपूर्ण बौद्ध अवशेष और भूर्जपत्र पर लिखी संस्कृत पुस्तकें प्राप्त कीं। चीनी संस्कृति के फ़्रांसीसी विद्वान् पीलियर ने सन् १९०६-८ में चीनी तुर्किस्तान से तांग-काल की हस्त-लिखित संस्कृत पुस्तकें प्राप्त कीं, उसने तुंगह्वांग स्थान में ७वीं से १०वीं सदी ई० के बौद्धधर्म के व्यंजक भित्तिचित्रों की भी उपलब्धि की। पूर्वोक्त प्राचीन पुस्तकें संस्कृत, पाली, प्राकृत और कुषाण लोगों की भाषाओं में भूर्जपत्र पर लिखी गई थीं। यह भूर्जपत्र निस्संदेह मध्य-एशिया में कश्मीर से भेजा गया था।

सन् १९०१, १९०६-८ और १९१३-१६ में आरल स्टाईन ने चीनी तुर्किस्तान में जो अनुसन्धान किया उसमें उन्हें प्रचुर संख्या में भारतीय संस्कृति के अवशेष मिले। इन अवशेषों में घरेलू उपयोग की वस्तुएं, मिट्टी गच तथा अन्य द्रव्यों की बनी नानाविध प्राचीन सामग्री हस्तगत हुई जो इस समय सैंट्रल एशियन ऐंटिक्विटीज़' संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित हैं। जान मार्शल ने तक्षशिला में जो कई वर्ष व्यापक खुदाई कराई उसमें इस तथ्य की पुष्टि में काफी प्रमाण मिले कि प्राचीन काल में कश्मीर राज्य और अफगानिस्तान में परस्पर घनिष्ठ धार्मिक और व्यापारिक सम्बन्ध थे। चीनी यात्री ह्यूनसांग के कथनानुसार ७वीं सदी ई० में तक्षशिक्षा कश्मीर राज्य का अंग था।

१९०९ ई० से पादरी एच० एच० फ़्रंक ने लाहुल, लद्दाख जंस्कार और पुरिग में जो खनन कराया उसमें कई बौद्ध मन्दिर और संघाराम जिन पर लकड़ी के काम की सजावट थी प्रकाश में आए। इनके अतिरिक्त और भी बहुत प्राचीन वस्तु-सामग्री उपलब्ध हुई। इससे सिद्ध हुआ कि काश्मीर के सम-कालीन निवासियों का उन पहाड़ी प्रान्तों के रहने वाले लोगों से राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों में कितना निकट सम्बन्ध था। डा० फोगल ने चम्बा राज्य में जो अनुसन्धान किया उससे चम्बा राज्य के प्राचीन इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ा और सिद्ध हुआ कि उस समय कश्मीर के चम्बा से कैसे सम्बन्ध थे। डा० गोएट्ज् ने अपनी पुस्तक "आर्ट आफ ललितादित्य" में सिद्ध किया है कि प्रतापी

कश्मीर नरेश ललितादित्य ने चम्बा की प्राचीन राजधानी ब्रह्मौर में लक्षणादेवी के मन्दिर का कश्मीर वास्तुशैली की विधि से जीर्णोद्धार कराया था।

जम्मू प्रान्त

जितना पुरातत्व-अनुसंधान कार्य कश्मीर में हुआ है इतना अभी जम्मू-प्रान्त में नहीं हुआ। जितना भी कार्य इस प्रान्त में अभी तक हुआ है उसके फल-स्वरूप कई एक महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान प्रकाश में आए हैं और भावी अनुसन्धान के लिए तुलनात्मक दृष्टि से उनका मूल्य भी आंका गया है।

प्रथम महत्वपूर्ण स्थान थलौरा बबौर का खंडहर है जो जम्मू नगर से २५ मील पूर्व की दिशा में विद्यमान है। प्राचीन काल में यहां एक नगर बसा था जो कालान्तर में उजाड़ हो गया। इस नगर के कारण ही वहां के निवासियों की धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शहर के भिन्न भिन्न भागों में कई मन्दिर बनाए गए थे। इन में से छः सात मन्दिरों के ध्वंस अब भी खड़े हैं। दन्तकथा के अनुसार यहां १३ मन्दिर थे जो पत्थर की भारी शिलाओं के बने थे। सबसे बड़ा मन्दिर शिव का था जिसके मंडप को २४ झरींदार गोल खम्भों ने उठाया था। कुछ वर्ष हुए ऊधमपुर धार सड़क बनाने के सिलसिले में पी० डबल्यू० डी० ने इस खंडहर का कुछ अंश काटा था। इस खुदाई में बहुत सी पुरानी वस्तुएं यहां से प्राप्त हुईं। इस खंडहर और मन्दिरों की प्राचीनता का ठीक मूल्य आंकने के लिए यहां पुरातत्व की विधि से खुदाई की आवश्यकता है।

किर्मची

ऊधमपुर के पास किर्मची नाम स्थान है जहां पांच प्राचीन मन्दिरों का एक समूह है। बबौर के मन्दिरों की तरह इन्हें भी भारत के पुरातत्व विभाग ने अपनी संरक्षता में ले लिया है। इन मन्दिरों के इर्द-गिर्द भी प्राचीन बस्ती के खंडहर हैं। इनका यथार्थ काल जानने के लिए यहां भी पुरातत्व की विधि से खुदाई की आवश्यकता है। इन मन्दिरों के शिखर देखने में उड़ीसा के मध्ययुगीन मन्दिरों के शिखरों के समान हैं।

सुद्ध महादेव

यह स्थान जम्मू प्रान्त के हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है, जो चनेहनी से १२ मील उत्तर की दिशा में है। यद्यपि इस समय यहां भूमि पर कोई प्राचीन ध्वंस नहीं दीखता, तथापि मालूम होता है पूर्वकाल में यहां एक लोहे के दंड पर, जिसे स्थानीय लोग त्रिशूल कहते हैं, गुहालिपि में एक संस्कृत लेख खुदा है। इस स्थान के महत्व और प्राचीनता का पता लगाने के लिए यहां पुरातत्व की विधि से खुदाई की परम आवश्यकता है।

अखनूर

जम्मू प्रान्त में एक और उल्लेखनीय अनुसंधान अखनूर के पास अंबारायान क्षेत्र में हुआ है। यह स्थान जम्मू से २० मील पश्चिम में चंद्रभागा नदी के तट पर है। प्राचीन काल में यहां कोई असातनाम नगर बसा था। यहां से बड़े आकार की ईटें, दीवारों के खंड, मिट्टी के खिलौने तथा दूसरी छोटी-मोटी वस्तुएं मिली हैं। सबसे अधिक महत्त्व एवं मनोरंजक अवशेष पार्थिव (मिट्टी के बने) नर मस्तक हैं। इन मस्तकों में गंधार मूर्तिकला की स्पष्ट झलक है। इसी भांति के नर मस्तक कश्मीर में हार्वान और उष्कर में भी मिले हैं। श्री दयाराम साहनी और श्री रामचन्द्र काक की सम्मति में ये खिलौने कुषाणोत्तर काल की कृतियां थीं। परन्तु डा० चार्लस फाब्री ने सिद्ध किया कि हार्वान, उष्कर और अखनूर के ये अवशेष ७वीं -आठवीं सदियों की कृतियां थीं। इसी स्थान के पास कुछ लेखांकित गोल पत्थर भी मिले हैं। इन पर खुदे लेख अभी पढ़े नहीं गये। सम्भवत: यह लिपि गुप्त काल की ब्राह्मी लिपि का ही रूपान्तर है।

बलावर

प्राचीन काल में बसोहली तहसील में स्थित बलावर (संस्कृत-वल्लापुर) चन्द्रवंशी बलौरिया राजपूतों की राजधानी थी। यहां इस वंश की कई पीढ़ियों ने राज किया। कल्हण के समय यह नगर बहुत समृद्ध था। उसने अपने समय के वल्लापुर के राजा पद्मक और उसके दो पुत्रों युवराज वल्ह और आनन्दराज की चर्चा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य युग से सन् १६५० तक वल्लापुर इन चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी रहा। उसके बाद राजा भूपतपाल ने रावी के दाएं तट पर विश्वस्थली (आधुनिक बसोहली) को अपनी राजधानी बनाया। अत: बलावर एक प्राचीन स्थान है। यहां एक प्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। जिसे हरिहर अथवा बिल्वकेश्वर मन्दिर कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि यह मन्दिर पांडवों के समय का है, यद्यपि पुरातत्व इसे १० वीं या ११ वीं सदी का ही मानते हैं। आज तक यहां जो कुछ थोड़ा बहुत अनुसन्धान हुआ है वह भूतल तक ही सीमित रहा। प्राचीन शिव-मंदिर तथा ध्वंस का आरम्भ काल जानने के लिए यहां पुरातत्व की विधि से खुदाई कराना बहुत आवश्यक है।

महौरगढ़

यह मुस्लिम काल का प्राचीन खंडहर जिला जम्मू में स्थित साम्बा नगर से आठ मील पश्चिमोत्तर दिशा में विद्यमान है। मानसर यहां से ६ मील दक्षिण में है। इस खंडहर में चार छोटे छोटे किले एक दूसरे के साथ सटे हुए बनाये गए थे। यह चार किलों का समूह एक बड़े बीहड़ और निर्जन स्थान में स्थित है।

किलों के चारों ओर कटे-फटे गहरे नाले और साथ ही जंगल और पहाड़ियां हैं। यह एक दृढ़ गिरिदुर्ग था जो शत्रु की पहुंच से बहुत दूर दुर्गम स्थान में बनाया गया था। सम्भावना है कि यह १५ वीं सदी के अन्त में बना था। ऐसा लगता है कि दिल्ली के किसी पठान सुलतान या उसके अधीन पंजाब के किसी मुस्लिम सूबेदार ने संकट के समय शरण पाने के लिए इसे बनवाया था। उन दिनों जब कि विदेशी आक्रमणकारियों का हर सम्भव भय बना रहता था तो मैदानी इलाके से दूर हिमालय या विंध्य की पहाड़ियों में सुरक्षा के लिए गिरिदुर्ग बनाने की आम प्रथा थी। यही कारण है कि इन पहाड़ियों में हिन्दू तथा मुस्लिम काल के अनेक गिरिदुर्गों के ध्वंस पाए जाते हैं।

महौरगढ़ के गिरिदुर्ग में चार छोटे छोटे किले शामिल हैं। इनमें से पश्चिम वाले को महौरगढ़, मध्य में स्थित कोटले को डेरगढ़ और पूर्व में स्थित कोटले को बवनेरगढ़ कहते हैं। प्राकार से घिरा हुआ चौथा क्षेत्र, जो डेरगढ़ के उत्तरी सिरे पर है, सम्भवत: सरदार के रहने का स्थान था। चारों किले ऊंचे पठार पर खड़े हैं जो रेतीले पत्थर का बना है। किलों के प्राकार प्राय: नष्ट हो चुके हैं। केवल चार पांच स्थानों पर ही इनके ध्वंस देखने में आते हैं। आरम्भ में हर एक कोटले के प्राकार में एक बड़ा मेहराबदार द्वार था जिस पर कंगूरों वाली दृढ़ मुंडेर बनी थी। इस मुंडेर के छिद्रों में से सिपाही अंदर से शत्रु पर गोलियां या तीर बरसाते थे। किलों की दीवारों के साथ साथ बाहर की तरफ बुर्ज, वप्र, गोल पाये या उभार बने थे।

डेरगढ़ कोटले के द्वारों में एक सब से विशाल और ऊंचा है। यह शायद सिंहद्वार था। इसके शिखर पर पत्थर की शिला में खुदा एक फारसी लेख है। लेख का बहुत सा भाग इस समय नष्ट हो चुका है। परन्तु बचे हुए अक्षरों की शैली से अनुमान लग सकता है कि यह किला सम्भवत: १५ वीं या १६ वीं सदी में पठान शासनकाल में तामीर किया गया होगा। हर एक किले के अन्दर रेतीली चट्टान को काट कर बड़े बड़े जल कुंड बनाए गए थे। इनमें जमा किए हुए बारिशी पानी से किलों के निवासी अपनी पान-स्नान आदि आवश्यकताओं को पूरा करते थे।

चित्रकला

गत वर्षों में जम्मू प्रान्त में कई ऐसे स्मारकों का पता लगा है जिनमें रंगीन भित्तिचित्र बने हुए हैं। ये स्मारक यद्यपि दो सौ वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं हैं, फिर भी अपनी उत्तम कला के कारण ये अपना महत्व रखते हैं। ऐसे स्थानों में पुरमंडल सबसे अधिक महत्व का है। यह स्थान डुग्गर की पवित्र गुप्त

नदी देविका के किनारे स्थित होने के कारण बड़ा तीर्थ माना जाता है। १७ वीं सदी ई० के अन्त में सिखों के दसमें गुरु श्री गोबिन्दसिंह जी त्रिकुटा भगवती की यात्रा के प्रसंग में यहां पधारे थे। महाराजा रणजीत सिंह, उनकी रानियां तथा दरबारी लोग भी पर्व दिनों में देविका स्नान के लिए पुरमंडल आते रहे। उनकी बनाई हुई धर्मशालाएं यहां हैं जिनमें सुन्दर रंगीन भित्तिचित्र बने थे। कालकोप तथा मनुष्य की उदासीनता और प्रमाद के कारण अब ये चित्र प्राय: नष्ट हो चुके हैं। परन्तु जहां कहीं कुछ अंश बचे हैं उनसे इस कला की उत्तमता प्रत्यक्ष होती है। पुरातत्व विभाग को अब भी प्रयत्न करना चाहिए कि इस कला का जो अवशिष्ट अंश अब भी उपाय से बचाया जा सकता है उसे यत्न से बचा लेना चाहिए।

रामनगर और रियासी के राजमहलों में भी बहुत से रंगीन भित्तिचित्र हैं जो काल के प्रभाव तथा मनुष्य की उपेक्षा के कारण नष्ट हो रहे हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य के अधिकारियों को राज्य की इस सांस्कृतिक सम्पत्ति की ओर ध्यान देकर इसे विनाश से बचाना चाहिए।

रियासी के पास दो मील के अन्तर पर तिब्बत के विजेता जनरल जोरावर सिंह का महल है। इसमें भी उसी उत्तम कोटि के रंगीन भित्तिचित्र बने हैं जैसे रामनगर और रियासी में हैं। इनकी रक्षा करना भी राज्य के अधिकारियों का परम कर्तव्य है।

जम्मू प्रान्त के विस्तृत धरातल पर बिखरे हुए असंख्य ऐसे बहुमूल्य स्मारक अवशेष हैं जिन्हें अभी किसी पुरातत्वज्ञ ने देखा भी नहीं है, और यदि देखा है तो उसके मूल्य को यथार्थ आंका नहीं। फलस्वरूप यह अतुल सांस्कृतिक सम्पत्ति अज्ञात ही गल-सड़ रही है। भविष्य में यदि इसके विषय में यही उदासीनता रही तो यह सब नष्ट-भ्रष्ट और लुप्त हो जाएगी। आवश्यक है कि पुरातत्व विभाग इस सम्पत्ति की रक्षा और परीक्षा की ओर शीघ्र अपना ध्यान दे।

महादेवी वर्मा

प्रो० देवरत्न

अनादि काल से चले आ रहे जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध को सुश्री महादेवी ने प्रियतम-प्रेयसी के विविध रूप देकर विभिन्न प्रकार से प्रकट किया है। कवयित्री ने प्रेयसी के रूप में अपना पूर्ण समर्पण उस प्रियतम ब्रह्म के आगे किया है। उसका प्रियतम अनन्त जलराशि समुद्र है और वह स्वयं है चंचल सुन्दर लहर, जो जल की ठोकर से अनजान सी किनारे पर आ गिरती है। उसका प्रियतम प्रकाश की असीम व्यापकता है और वह कोमल तारक जिसमें उसका निराकार प्रियतम साकार हो गया है। वह और उसका प्रियतम एक ही हैं जैसे प्रकाश और किरण एक हैं। प्रियतम उससे अलग भी है जैसे बादल से बिजली अलग है। प्रियतम उसे सीमाओं में बांधने आता है परन्तु क्या ज्वाला से उष्णता दूर हो सकती है ? प्रियतम मधुर गान सिखाने किरण बनकर आया। हृदय में 'पीड़ा का बान बेंधकर' वह पल में छुप गया। गायक इस वीणा पर नित्य नये अभिनव संगीत की रचना कर रहा है। आत्मा भूल चुकी है कि वह कहां से आई है। कभी कभी उसके मन में किसी की याद कसक उठती है जिससे जीवन की गति रुक सी जाती है। आत्मा को अनुभव होता है जैसे वह आंसुओं से बने मेघ का 'लघुकण' है। टूटी हुई संगीत लहरी की कम्पन है। धूल में गिरा हुआ आकाश

का फूल है। उसे धुंधली याद है उसके प्रियतम ने सूने किनारे पर बैठकर उसे 'जीवन वीणा' दी थी। इसीलिये वह अपने प्रियतम की वीणा भी है और उस वीणा से निकली हुई रागिनी भी। वह तट भी है और 'कूलहीन' नदी भी। वह प्रियतम से दूर होती हुई भी अखण्ड सुहागिन है। वह नीलघन भी हैं और मुनहली बिजली भी। वह होंठ भी है और स्मित की चांदनी भी। वह कमल के पत्ते पर किरण से बनाया हुआ उस चित्रकार का चित्र तो नहीं है ?

आत्मा की कहानी बड़ी करुण है। सजल मेघ के हृदय का एक टुकड़ा पिघलकर धरती पर गिर पड़ा। उसे कीचड़ पी गया, इस तरह मेघ की निशानी खत्म हो गई। सौरभ का जन्म कोमल कमल के हृदय में हुआ, किन्तु जब वह पवन के चंचल पंखों पर चढ़कर उड़ गया, उसके लिये 'सर अपरिचित' और 'कली विरानी' हो गई। पर्वत का कठोर हृदय चीरकर प्रेम का निर्झर बह निकला। अतिथि कहकर अब समुद्र ने उसे अपनी गोद में भर लिया, वह अमृत सा मीठा जल पल भर में खारी हो गया। मेरा कण कण दर्पण जैसा है जिसमें तेरे रोम रोम की परछाईं पड़ रही है। उनका पर्वत जैसा महान् हृदय छोड़कर 'सिकता कण सी' मैं झर आई हूं। आज मेरा उनसे परिचय क्या हो सकता है !

"तज उनका गिरी सा गुरु अन्तर
मैं सिकता कण सी आई झर
आज सजनि उनसे परिचय क्या ?
वे घनचुम्बित मैं पथ धूली।
उनकी वीणा की नवकम्पन
डाल गई री मुझमें जीवन।
खोज न पाई उसका पथ मैं
प्रतिध्वनि सी सूने में भूली।"
"मैं किसी की मूक छाया हूं,
न क्यों पहचान पाता ?"

मिलन के मन्दिर में यदि मैं घूंघट हटा लूं तो मैं उससे ऐसे मिल जाऊंगी जैसे तप्त वालुका में जल की बूंद। धूलि में निर्मल चन्द्रमा की चांदनी खेल रही है। यह आत्मा कोमल प्राण सी, मोहक सन्देश सी और मुसकाते फूल सी है।

महादेवी ने साध्य ब्रह्म की महानता और सर्वोपरिता की घोषणा करते हुए भी साधक, जीवात्मा की महानता को भी भुलाया नहीं है। महान चेतन परमात्मा जड़ शरीर में बंधकर अपने को भूल चुका है लेकिन इससे उसकी महानता को बट्टा नहीं लगता। असीम, वास्तव में, ससीम का बढ़ा-चढ़ा रूप ही

तो है। लहरों का समूह ही तो समुद्र है। लहरों से ही तो समुद्र बना है। मेघ छोटे छोटे जलकणों के सिवा और क्या है ? मरुभूमि सिकताकणों का ढेर ही तो है। बड़ों के बड़प्पन का कारण छोटे ही हैं। महादेवी के आत्म समर्पण में हीनता की भावना नहीं, प्रेमिका का अभिमान है।

अश्रु ने सीमित कणों में बांध ली
क्या नहीं घन सी तिमिर सी वेदना ?
क्षुद्र तारों से पृथक संसार में
क्या नहीं अस्तित्त्व है झंकार का ?
यह क्षितिज को चूमने वाला जलधि
क्या नहीं नादान लहरों से बना ?
क्या नहीं लघु वारि-बून्दों में छिपी
वारिदों की गहनता गम्भीरता ?
विश्व में वह कौन सीमाहीन है,
हो न जिसका खोज सीमा में मिला ?
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं ?
क्यों तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो ?

वेदान्त ही की तरह बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद का भी महादेवी पर गहरा प्रभाव पड़ा है। स्वयं महादेवी के शब्दों में—"संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी है। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"......"इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा उससे असमय ही परिचय हो गया था।"......"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सबको बांट कर।"

महादेवी ने बुद्ध के दुःखवाद को ज्यूं का त्यूं ग्रहण नहीं कर लिया है। इसे उसने नवजीवन दिया है। बिल्कुल नया रूप। कवयित्री की रचनाओं में माधुर्य के सम्मिश्रण से दुःख स्पृहणीय हो गया है। कवयित्री को करुणा का दान

अपने प्रियतम से मिला है। उसके प्रियतम ने उसे मुसकाते मुसकाते पीड़ा का दान दे दिया है।

> "बिछाती थी सपनों के जाल,
> तुम्हारी वह करुणा की कोर
> गई वह अधरों की मुस्कान
> मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।"

जब से कवयित्री को वेदना का दान मिला है, तभी से उसके जीवन में उन्माद भर गया है। उसकी सभी सम्पदायें प्राणों के छाले बन गई हैं। उसका मन वेदना के प्याले मांगता चला जा रहा है।

> "पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
> उस दिन दूर क्षितिज के पार।
> मिटना था निर्वाण जहां,
> नीरव रोदन था पहरेदार ॥"

चूंकि पीड़ा प्रियतम की दी हुई है, इसलिये वह मधुर है :

> "दूर उन्हीं नीलम कूलों पर पीड़ा का ले झीना तार,
> उच्छ्वासों की गूंथी माला मैंने पाई थी उपहार ॥"

जो करुणा का धन उसे प्रियतम ने दिया है, उसके मूल्य के रूप में उसे अपना जीवन देना पड़ा है। यह जीवन भी तो कम मूल्यवान् नहीं। संसार में प्रकाश लुट जाता है, तारे झुक जाते हैं किन्तु कवयित्री का दीपक सा मन सदा जलता रहता है। संसार उसकी आंखों को निर्धन कहता है किन्तु संसार इन आंखों के मोतियों को क्या गिन सका है ? स्वर्गलोक के देवता भी कवयित्री की पीड़ा को सहन नहीं कर सकते। यह जीवन चाहे भिक्षुक है किन्तु वह प्रियतम से किसी अंश में भी कम नहीं।

> "उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
> उनमें अनन्त करुणा है इसमें असीम सूनापन।"

अपने प्रियतम को भेंट करने के लिये करुणा के उपहार के सिवा महादेवी के पास और कुछ नहीं है :

> "पहली सी झंकार नहीं है और नहीं वह मादक राग,
> अतिथि किन्तु सुनते जाओ, इन तारों का करुण विहाग।
> अतिथि क्या ले जाओगे साथ मुग्ध से आंसू मेरे दो चार।"

कवयित्री ने अपने 'करुणेश' को अपनी इस करुणा का दर्शन करने का निमन्त्रण भी दिया है। उसकी आंखों में, न जाने कौन सी मदिरा घुलमिल गई है कि जिसे पीकर सारा संसार मस्ती में झूम रहा है। नक्षत्रों की माला मादकता में चक्कर लगा रही है। वह प्रियतम आकर उसके आंसुओं की रेखायें तो गिन लेता। उसके थके पांव के घुंघरू विरह का इतिहास कह रहे हैं, काश, सुन्दर प्रियतम इन्हें सुन पाता। वह अपनी सारी निधियां सारी सम्पत्तियां लुटा कर आंसू ले लेना चाहती है:

"कितने युग बीत गए इन निधियों का संचय करते,
तुम थोड़ से आंसू देकर, इन सबको कर लेना क्रय।।

कवयित्री के जीवन का जन्म और पालन विरह में ही हुआ है। यह विरह उसको इतना प्यारा है कि वह इसे बुलाती है और मोक्ष को भी ठुकरा देती है:

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास।
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।।
जन्म से है यह साथ मैंने इन्हीं का है प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।
इन्द्रधनु सी नित सजी सी, विद्यु हीरक सी जड़ी सी।
मैं भरी बदली रहूं, चिर मुक्ति का सन्मान कैसा।।"

कवयित्री अपने विरह के जीवन को समाप्त स्वयं नहीं करना चाहती। विरह की समाप्ति का अर्थ है तृप्ति, सन्तोष, रुकना, निद्रा अथवा मृत्यु और विरह का अर्थ है अतृप्ति, असन्तोष जागृति, गति और जीवन:

"मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहन दो प्यासी आखें भरती आँसू के सागर।
एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत।
क्यों अश्रु न हो शृंगार मुझे।"

विरह की घड़ियां भी महादेवी के लिये मधुर 'मधुरात' बन गई हैं। वह 'नीर भरी दुख की बदली' है। उसके प्राणों में पतझड़ रमा हुआ है और आंखों में बरसात बसी हुई है। वह इतनी करुण है जितनी कि रात। वह अकेले ही संसार को करुणा से भर देना चाहती है। चाहे बादलों में जल न रहे, फूलों में

मधु न रहे, वह अपनी आंखों के समाप्त न होने वाले जल से सारे संसार को जलमय कर सकती है। कवयित्री के लिये सारा संसार ही एक करुणा काव्य है। करुणा से सारा संसार उर्वर हो सकता है। असीम जग लघु मानस में समा सकता है। करुणा सारे संसार को एक सूत्र में बांध सकती है।

महादेवी की वेदना ऐसी है जो अपने को बखानती नहीं, अन्दर ही अन्दर घुलती रहती है। करुणा कवयित्री को नीरव भाषण देती है। उसका विरह मौन है। विरह में शोर मचाने वाले पपीहे को उसने खूब फटकारा है :

जिसको अनुराग सा दान दिया
उससे कण मांग लजाना नहीं!
अपनापन भूल समाधि लगा
यह पी का विहाग भुलाता नहीं।
नभ देख पयोधर श्याम घिरा
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा
जिसे बांध हृदय में समाता नहीं?
उसे अपना करुणा से भरा
उर सागर क्यों दिखलाता नहीं?
संयोग वियोग की घाटियों में
नव-नेह में बांध झुलाता नहीं।
सन्ताप के संचित आंसूओं से
नहला के उसे तू धुलाता नहीं।
अपने तन-श्यामल पाहुन को
तू पुतली की निशा में सुलाता नहीं।
कभी देख पतंग को जो दुख से
निज दीपशिखा को रुलाता नहीं।
मिल ले इस मीन से जो जल को
निठुराई विलाप में गाता नहीं।
कुछ सीख चकोर से जो चुगता
अंगार किसी को सुनाता नहीं।
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया
यह पी-पी घनों को सुहाता नहीं।

करुणा, विरह, अवसाद और पीड़ा में बसने वाली इस 'नीर भरी दुख की

बदली' महादेवी को यह भी आशा, विश्वास और निश्चय है कि उसे कभी न कभी 'कलियों के देश' अवश्य जाना है। जैसे कुहरा बादल और धूप में मिट जाता है, उसी प्रकार यह सृष्टि उसमें लीन हो जाएगी। सुख-दुख के पक्षी घोंसलों में चले जा रहे हैं। संसार मेरे अन्धकार को पोंछ रहा है। रास्ता मिटता जा रहा है। रात बहुत कम बाकी रह गई है। प्रभात की मुस्कान आने वाली है। प्रियतम उसे ढूंढने आ रहा है। सुनहली किरण क्षितिज से टकरा गई और अन्धकार ने विना तोले उसके टुकड़े उठा लिये हैं। सारा वातावरण मादक हो गया है।

साधना

आत्मा परमात्मा से बिछुड़ गई है। उसे फिर से अपने प्रियतम से मिलने के लिये कठोर साधना करनी है। साधना का यह मार्ग बड़ा कठिन है। जरा भी चूक जाने पर साधक को यात्रा नये सिरे से शुरू करनी पड़ती है। आत्मा का घर दूर है, 'पंथ अपरिचित' और 'अनदेखा' है, अपने से अपने की पहचान नहीं है और हृदय को बन्धन में अभिमान है:

"खोज जिसकी वह है अज्ञात
शून्य वह है भेजा जिस देश,
लिए जाओ अनन्त के पार
प्राणवाहक सूना सन्देश।"

जिसे कांटों से डर लगता हो, वह इस मार्ग पर नहीं चल सकता। उसे इधर आने का नाम नहीं लेना चाहिये। महादेवी ने साधक को इस मार्ग की कठिनता के सम्बन्ध में चेतावनी सी दी है:

करता दीपशिखा का चुम्बन,
पल में ज्वाला का उन्मीलन,
छूते ही करना होगा जल मिटने का व्यापार
अपना जीवन दीप मृदुलतर
वर्तीकर निज स्नेह सिक्त उर
फिर जो जल पावे हंस हंस कर
हो आभा साकार"।

साधक को सदा जागते रहना पड़ता है। महादेवी भी साधना के लिये देर से जाग रही है। उसके रोम पहरेदार की तरह अहर्निश जाग रहे हैं। समय का सागर क्षणों के बुलबुले मिटा कर एक रस हो गया है। उसमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं:

"होगई आराधनमय मैं विरह की आराधना ले,
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले।"

विश्व सो रहा है किन्तु उसका प्रिय आंखों के तारों में जाग रहा है। साधक को एकान्त साधना करनी पड़ती है। उसे संसार के सभी आकर्षणों को छोड़ना पड़ता है। मदहोश कर देने वाला सांसारिक वायु, भौरों के झुण्ड साथ लिये हुए फूल, मादक गीत सुनाता निर्झर, मोहक बसन्त, इन सब को साधक ने त्यागना होता है। साधना के इस कठिन मार्ग को वही पार कर सकता है जो हिमालय की तरह मृदु-महान् हो, कोमल और कठोर हो :

"टूटी है कब तेरी समाधि, झंझा लौटे शत शत हार,
बह चला किन्तु दृगों से नीर, सुनकर जलते कण की पुकार
सुख से विरक्त, दुख में समान।
मेरे जीवन का आज मूक तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छूले, मन ले करुणा की थाह नाप,
उर में पावस दृग में विहान।"

हमारा प्रियतम हमारे पास है, हमारे अंग अंग में बसा हुआ है। आंखों में उसी की सुन्दरता है, प्राणों में उसी की याद है। पलकों में उसी के पग की न सुनाई देने वाली गति है। हृदय में उसी की चंचल सिहरन भरी है। प्रभात की लाली उसी का हंसता मुख है। दुखी रात उसी की परछाईं है। उन्हीं होठों ने इस प्याले को चूमा है। उसी की हंसी से बनी मदिरा इस प्याले में पड़ी हुई है। उसी का मन मधुशाला है, किन्तु फिर भी हम उसे देख नहीं पाते :

"तुम्हारी चिर परिचित मुस्कान, भ्रान्त से कर जाती लघु प्राण
तुम्हें प्रतिपल कण कण में देख, नहीं अब पाते हैं पहिचान।"

साधक अनुभव करता है जैसे सारी प्रकृति, अपने उस प्रियतम को ढूंढ रही है :

"स्मित तुम्हारी से छलक ज्योत्स्ना अम्लान,
जान कब पाई हुआ उसका कहां निर्माण !
अचल पलकों में जड़ी सी तारिकाएं दीन,
ढूंढती अपना पता विस्मित निमेष विहीन।
गगन जो तेरे विशद अवसाद का आभास,
पूछता किसने दिया यह नीलिमा का न्यास।
निठुर क्यों फैला दिया यह उलझनों का जाल
आप अपने को जहां सब ढूंढते बेहाल।"

साधक का प्रियतम को पाने का प्रयत्न ऐसा खिलवाड़ लगता है जैसे कोई बालक तितली को पकड़ना चाहता हो :

"इस अचल क्षितिज रेखा से तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के सारे प्रयत्न हों फीके ।
द्रुत पंखों वाले मन को तुम अन्त-हीन नभ होना
युग उड़ जावे उड़ते ही परिचित हो एक न कोना ।
तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं पग विरह पथिक का धीमा
आते जाते मिट जाऊं पाऊं न पन्थ की सीमा ।।"

साधक की पूजा उसके मन में ही सम्पन्न होती है। उसका प्रियतम किसी मन्दिर में बन्द नहीं है। वह पूजा की बाह्य साधारण सामग्री को भी स्वीकार नहीं करता। उसके विचार में पूजा या अर्चन व्यर्थ है। जब उसका लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है, जब उसकी साँसें सदा प्रिय का अभिनन्दन करती रहती हैं, जब हर्ष से नाचते हुए रोम ही अक्षत बन गये हैं और पीड़ा चन्दन का काम दे रही है, जब प्रेम भरा मन झिलमिलाते दीप की तरह जलता रहता है, जब आंखें कमलपुष्प का काम दे रही हैं, जब मन की धड़कन धूप बनकर फैल रही है, जब होंठ प्रिय प्रिय जपते रहते हैं और पलकें ताल देती रहती हैं तो बाह्य आडम्बर की क्या आवश्यकता है ? 'शून्य मन्दिर में' आज साधक स्वयं प्रियतम की 'प्रतिमा' बन जाना चाहता है। उसके भीगे नयन प्रियतम की आरती उतारना चाहते हैं। वह अपने सारे अंगों को गलाकर आंखें बना लेना चाहता है :

"आज आये हो करुणेश इन्हें जो तुम देने वरदान
गलाकर मेरे सारे अंग करो दो आंखों का निर्माण ।।"

साधक को अपनी सामर्थ्य पर भी उतना ही विश्वास है जितना साधना मार्ग की दुर्गमता पर। उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि 'पंथ अपरिचित' है और 'प्राण अकेला' है। वे पग कोई और होंगे जो दुख से जूझते हुए अपनी कामनायें स्वाहा करके, उससे हार मानकर लौट आते हैं। ये पग तो अमरता नाप रहे हैं। नाव और पतवार का सहारा लेकर हमें पार नहीं जाना है। एक बार हमारा प्रियतम, समुद्र गरज कर हमें बुला भर ले, बस इस बाढ़ को ही नाव बनाकर हम इस प्रलय के पार हो लेंगे। चाहे हिमालय का हृदय कांप जाए, चाहे आकाश की आंखें रो दें, चाहे प्रकाश को निगलकर अन्धकार चारों ओर छा जाए, चाहे बिजली की लपटों में कठोर तूफान बोल पड़े। साधक को इस नाश पर भी पग बढ़ाते जाना है, उसे दूर जाना है।

दीपक

अपने साधना पथ में महादेवी ने दीपक को बहुत ऊंचा और महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उनकी बहुत सी कवितायें दीपक की निरन्तर साधना को लेकर लिखी गई हैं। जीवन और आत्मा का प्रतीक दीपक परमात्मा की आराधना में मौन जल रहा है। महादेवी ने जहां 'मुग्ध हे मेरे छोटे दीप', लजीले मेरे छोटे दीप', अनोखे मेरे नेही दीप' कहकर दीपक की मोहकता, सुन्दरता, लजीलापन तथा अनोखापन प्रकट किया है, वहां 'वियोगी मेरे बुझते दीप' और 'निर्वाणोन्मुख दीप' कहकर दीपक की उस महान् ज्योति में लीन होने की घोषणा भी की है। महादेवी ने अपने इस दीपक को प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल मधुर मधुर जल कर 'प्रियतम का पथ आलोकित' करने को कहा है। दीपक का अणु अणु जलकर प्रकाश का समुद्र प्रवाहित करे। सभी उससे ज्वाला मांग रहे हैं। वृक्ष के कोमल हरे अंग अपने अन्दर ज्वाला को समेट लेते हैं। पृथ्वी के हृदय में ज्वालाओं की हलचल कैद पड़ी है। इसी प्रकार दीपक के हृदय में भी ज्वालायें और तूफान हैं :

"तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्जवल स्मित में घुलमिल,
मदिर मदिर मेरे दीपक जल ।
प्रियतम का पथ आलौकित कर ।।"

तम (अन्धकार)

महादेवी के सम्बन्ध में एक दिलचस्प बात यह है कि जहां उन्होंने दीपक और प्रकाश के साथ अटूट नाता जोड़ा है वहां उन्होंने तम और अन्धकार से भी बहुत प्यार किया है। वास्तव में महादेवी की सारी कविता ही रात और रात के वातावरण के आसपास घूमती है। रात के सभी उपकरणों को महादेवी ने अपनी कविता में सजाया है—तारे, चांद, दीपक, झंझावात, चन्द्रिका, प्रकाश, अन्धकार सब कुछ। महादेवी को रात और उसके उपकरण बहुत भाते हैं। इसी नाते उन्होंने अन्धकार को भी प्यार किया है। हो सकता है यह बौद्धमत के अभाववाद या शून्यवाद का प्रभाव हो जिसमें उत्पत्ति शून्य से मानी गई है और अभाव अथवा शून्य का प्रतीक अन्धकार है। महादेवी का प्रियतम अन्धकार में आना पसन्द करता है इसीलिये कवयित्री आकाश में सजी दीप पंक्ति को पल भर बुझ जाने को कहती है :

"करुणामय को भाता है तम के परदों में आना,
नभ की दीपावलियो ! तुम पल भर को बुझ जाना।"

महादेवी को प्रकाश इसलिये भी प्यारा है कि उसका प्रियतम प्रकाश के सिवा और कुछ नहीं। उसे देखने से आंखें चुंधिया जाती हैं जिससे केवल अन्धकार चारों ओर छा जाता है :

"जहां रोता है मौन अतीत सखी तुम हो ऐसी झंकार,
जहां बनती है आलोक समाधि, तुम्हीं ऐसा अन्धकार।"

प्रकृति

प्राय: सभी छायावादी कवि प्रकृति के उपासक होते हैं। महादेवी की रचनाओं में भी प्रकृति को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। प्रकृति उसकी सखी है। प्रकृति प्रियतम से मिलने को उतनी ही उत्सुक है जितनी स्वयं कवयित्री। प्रकृति का मार्ग भी वही है जो कवयित्री का। एक ही पथ की पथिक होने के कारण प्रकृति महादेवी की सखी है। यह सखी कवयित्री को इतनी प्रिय है कि वह (प्रकृति) उसमें बिल्कुल समा गई है। उसमें और प्रकृति में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। प्रकृति ही प्रिय मिलन का संगम स्थल है :

कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आंसू उनके हास ।।
मैं फूलों में रोती वे बालारुण में मुसकाते,
मैं पथ में बिछ जाती हूं वे सौरभ मे उड़ जाते।
उसके घन प्यालों में है विद्युत् सी मेरी परछाई,
नभ मे उसके दीप, स्नेह जलता है पर मेरा उनमें।
उसकी मधुशाला में बिकती मादकता मेरे मन की।।"

प्रकृति के कण कण में ईश्वर है, केवल उसे पहचानने के लिये आंखें चाहियें, जो हमारे पास नहीं हैं।

महादेवी के अनुसार सारी प्रकृति करुणा में डूबी हुई है। यह अन्धकार चंचल बिजली के दीप जलाकर किसे ढूंढ रहा है ? समुद्र बढ़कर किसे कह रहा है कि अपने आंसू आज पिला दो :

"कन कन में बिखरी सोती है अब उनके जीवन प्यास।"

हृदय में सुन्दरता का वसन्त भर कर आंखों में आंसू और होठों पर मुस्कराहट बिछा कर उस प्रियतम का बरसात सा उमड़ता प्यार 'लघु-महत्' प्राणों में उतर रहा है।

महादेवी ने प्रकृति की वस्तुओं में प्रेम भाव का आदान-प्रदान भी बतलाया है। प्रभात में किरणों की पहली छांह को छूकर कलियां क्यों मुसकाती हैं ? हवा के चंचल छोर को छूकर पत्ते हंस हंसकर क्यों लोटते हैं ? नये मेघ उमड़-घुमड़ कर क्यों रोते हैं ? हिम का हृदय पिघल कर नदी के कोष क्यों भरा करता है ? समुद्र अपनी लहरों पर करुण विहाग किसे गाकर सुनाता है ? स्वर की तरंगों का भार लिये समीर पथिक की तरह क्यों भटकता फिरता है ? आकाश में चन्द्रमा को हंसते देख विशाल जलराशि क्यों उमड़ पड़ती है ? चन्द्रकान्त मणि के प्राण चांदनी को छूते ही क्यों पिघल जाते हैं ? बादल की धुंधली छाया को देखकर मोर क्यों झूमने लग जाता है ? पतंगे ज्वाला से खेलते क्यों नहीं थकते ? न जाने किसकी मुस्कराहट कलियों को चूम जाती है ? अनजान कली तो कुम्हला जाती है और 'वह' घूमकर सारे संसार को सुगन्धि से भरता रहता है। न जाने किसकी सुन्दरता बादलों को चूम जाती है। बादल 'उसे' खोजकर थक जाते हैं और फिर धुएं की तरह व्यर्थ मिट जाते हैं। न जाने किसकी आवाज़ पहाड़ों को चूम जाती है। पिघलते पत्थर 'उसमें' स्नेह का नया जल भरने लगते हैं। 'वह' प्यासे लोगों में प्राण भरता हुआ अनजान देश को चल पड़ता है।

प्रियतम से भेंट करने के लिये कवयित्री ने अपना शृंगार प्रकृति के उपकरणों से किया है। उसने अशोक वृक्ष की लालिमा से अपने थके चरणों को रंगा है। रात की रानी के फूलों की धूलि उसने अपने शरीर पर मली है। जूही की बन्द कलियों से अपनी कवरी को संवारा है। फूलों के रंगों से उसने अपने दुपट्टे को रंगा है और रात से काजल मांग कर उसने आंखों को सजाया है। उषा ने उसकी मांग में सिन्दूर भरा है, सन्ध्या ने उसके पांव में लालिमा लगाई है।

संसार

पहले कहा जा चुका है कि महादेवी ने संसार को शुष्क वेदान्तियों की तरह नहीं देखा है। संसार मिथ्या अवश्य है किन्तु वह सुन्दर और मोहक भी है। इसकी नितान्त उपेक्षा नहीं की जा सकती। ये पंक्तियें इस कथन का समर्थन करती हैं—'कितना अस्थिर हैं संसार', 'कितना निष्ठुर है संसार', 'कितना मादक है संसार', 'बीते युग पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार', 'कितना पागल है संसार'। किन्तु कवयित्री ने इस दिखाई देने वाले संसार से अलग एक अनोखे संसार की कल्पना भी कर रखी है। वह संसार सोने का है। वहां पक्षी मृत्यु का नाम सुनकर हंसते हैं। वहां निर्झर मौन संगीत सुनाकर अमरता दिया करते हैं। आकाश अनन्त झंकार सुनाकर सारे तार बजा देता है :

सुना था मैंने इसके पार बसा है सोने का संसार,
जहां के हंसते विहग ललाम मृत्यु छाया का सुनकर नाम !
धरा का है अनन्त शृंगार ।

जहां के निर्झर नीरव गान सुना करते अमरत्व प्रदान,
सुनाता नभ अनन्त झंकार बजा देता है सारे तार,
भरा जिसमें असीम सा प्यार ।

पुष्प में है अनन्त मुस्कान, त्याग का है मारुत में गान,
सभी में है स्वर्गीय विकास वही कोमल कमनीय प्रकाश,
दूर कितना है वह संसार ।

डुग्गर (धरती) का संस्कृत-साहित्य को योगदान

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

जम्मू प्रदेश में संस्कृत-प्रचार के कार्य की एक लम्बी परम्परा रही है। यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई लिखित इतिहास नहीं प्राप्त होता किन्तु कई परिवारों में आज भी यत्र-तत्र जो हस्तलेख पर्याप्त मात्रा में पाए जा रहे हैं, उनसे विदित होता है कि यहां संस्कृत का पठन-पाठन तथा लेखन-कार्य काफी पहले से हो रहा होगा। जम्मू प्रदेश में संस्कृत पाण्डुलिपियों का काफी भण्डार आज भी उपलब्ध हो सकता है। मेरा अपना अनुभव इस सम्बन्ध में वहुत उत्साह वर्धक है। दो-चार वार मैंने जम्मू के देहातों में जाकर पंडितों के घरों में संस्कृत पाण्डुलिपियों का अन्वेषण किया था। मैंने वहां कई अमूल्य और अनुपलब्ध संस्कृत हस्त-लेखों के दर्शन किये। इन हस्त-लेखों में से कुछ एक साथ ले लेने का मेरा विचार नहीं हुआ, कारण कि इस कार्य में वहुत बड़े साधन की आवश्यकता होती है। उनकी सुरक्षा तथा प्रकाशन के लिए सामर्थ्य हो तभी तो ऐसा हो सकता है। मैं केवल यही चाहता था कि इन हस्त-लेखों का मुझे ज्ञान रहे कि किस किस विषय के हस्त-लेख कहां कहां पड़े हैं। फिर भी उनमें से दो तीन संस्कृत पाण्डु-लिपियों को हस्तगत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पाया। जो दो तीन मैं साथ लाया, उनमें एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि थी 'वितस्ता-महात्म्य' दूसरी थी कालिदास का 'मेघदूत', वल्लभदेव की टीका-सहित (मेघदूत की वल्लभदेव टीका

अभी तक अप्रकाशित है)। ये दोनों अप्रकाशित पुस्तकें पाकर मुझे इन्हें पढ़ने की हार्दिक उत्सुकता हुई। सर्व प्रथम मैंने 'वितस्ता-महात्म्य' पढ़ा। यह भृगींश नामक ऋषि का लिखा हुआ है। इसमें कश्मीर के सैंकड़ों धार्मिक स्थानों का पौराणिक शैली में वर्णन संस्कृत के अनुष्टुप छन्दों में किया गया है। श्लोक संख्या लगभग तीन हजार तक है। मैंने देखा कि कश्मीर के धार्मिक पक्ष को लेकर ऐसी ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का इसमें वर्णन किया गया है जिन्हें पढ़कर पाठक अवश्य यह अनुभव किए बिना नहीं रह सकते कि कश्मीर वास्तव में देवभूमि है। एक दो श्लोक उदाहरण के रूप यहां दे देना उचित होगा, जैसे :

दुर्लभं मानुष्यं जन्म द्विजत्वं तत्र दुर्लभम्।
तत्रापि भारतं क्षेत्रं दत्रापि च सती-सर:।।

तत्रापि दुर्लभं देवि वितस्ता-चक्र-संगम:।
देवा अपि हि कांक्षन्ते वितस्ता-चक्र-संगम्।।

इन दो श्लोकों में पहले भारतवर्ष में जन्म लेना दुर्लभ कहा गया है, फिर उससे भी दुर्लभ सतीसर (श्रीनगर) में जन्म पाना और उससे भी अधिक भाग्यवत्ता वितस्ता और चक्र के संगम (आधुनिक मट्टन या मार्तण्ड तीर्थ, में स्नान करने में ही है। इस वर्णन में भारतवर्ष की महिमा ही केवल प्रकट नहीं होती बल्कि आदिकाल से कश्मीर का भारत के साथ दृढ़ अंगांगी भाव स्पष्ट है। पुस्तक अप्रकाशित होने के कारण जनता इस के महत्व से अभी अपरिचित है। तीसरी पाण्डुलिपि थी—संस्कृत के भिन्न नीतिकारों के चुने हुए श्लोकों का हिन्दी दोहों में अनुवाद। अनुवादक कवि ने पुस्तक के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय भी दिया है, जिससे पता चलता है कि कवि सेनापति ने गुरु गोबिन्दसिंह जी के दरवार में रह कर इस पुस्तक की रचना की थी। यह सेनापति अभी तक हिन्दी साहित्य के वर्तमान इतिहास के लिए अपरिचित ही है।

मेरा इतना ही अभिप्राय है कि जम्मू प्रदेश सम्बन्धी संस्कृत प्रचार की खोज का आधार, आज ये प्राचीन पाण्डुलिपियां ही हैं। इन से हम पता लगा सकते हैं कि डुग्गर (धरती) का संस्कृत साहित्य को कितना बड़ा योगदान प्राचीन युग से मिलता चला आ रहा था। आज प्रेस-युग में आकर संस्कृत साहित्य की अमर रचनाएं मुद्रित होकर भारत के भण्डार की शोभा बढ़ा रही हैं, किन्तु डुग्गर (धरती) का यह संस्कृत साहित्य मुद्रण-जगत् से अभी दूर ही पड़ा है। इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सौभाग्य से इस प्रदेश में भी आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व संस्कृत-साहित्य के उद्धारार्थ एक आन्दोलन ने जन्म लिया, जिसके

प्रवर्तक थे राज्य के द्वितीय महाराजा श्री रणवीरसिंह जी। स्थानीय राजवंश में य महाराज रत्नमाला में मध्यमणि के समान माने जाते हैं। संस्कृत भाषा के प्रति इनका अपूर्व अनुराग था। सन् १८५६ में राज्य सिंहासन पर बैठते ही महाराजा ने संस्कृत-प्रचार के लिए एक निश्चित योजना बना कर कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम प्रान्त भर में मन्दिर बनवाने की योजना शुरू की गई। इस योजना के अन्तर्गत बहुत से मन्दिर बनवाकर उनमें से मुख्य देवालयों में संस्कृत पाठ-शालाएं कायम की गईं जिसमें विद्यार्थियों के अध्ययन, भोजन, निवास आदि की निःशुल्क व्यवस्था राज्य की ओर से चालू की गई। इन पाठशालाओं में अध्ययन कार्य के लिए काशी आदि स्थानों से विद्वान् मुंह मांगे वेतनों पर, लाये जाने लगे। धीरे धीरे जम्मू भारत के लब्ध-प्रतिष्ठ संस्कृत विद्वानों का गढ़ बन कर दूसरी काशी कहलाने लगा और जम्मू से लेकर उत्तरवाहिनी तीर्थ (जम्मू से लग-भग १५ मील) तक बड़े बड़े गगनचुम्बी मन्दिरों के गुम्बद चमकने लगे। इन देवालयों में संस्कृत विद्या का पठन-पाठन, ग्रन्थ-लेखन, शास्त्रार्थ और पण्डित सभाएं दिन व दिन उन्नति करती रहीं। शास्त्रार्थ में स्वयं महाराजा सभापतित्व करते थे और जीत हार का निर्णय होने पर पुरस्कार वितरण महाराजा द्वारा ही किया जाता था। जब राज्य की ओर से संस्कृत विद्या को इस प्रकार प्रोत्सा-हन मिलने लगा तथा स्वयं महाराजा पण्डित सभाओं में घंटों अपना अमूल्य समय देकर विद्वानों तथा छात्रों का उत्साह वर्द्धन करने लगे तो स्वभावतः जम्मू प्रदेश की जनता की रुचि भी संस्कृत पढ़ने में बढ़ने लगी। परिणाम स्वरूप इन पाठशालाओं में संस्कृत अध्येताओं की संख्या तीन-तीन, चार-चार सौ तक पहुंचने लगी। भगवान् की कृपा से राज्य कोष में इसके लिए कोई कमी न थी, संख्या वृद्धि के अनुसार ही भोजनादि की व्यवस्था तुरन्त हो जाती थी। इस संख्या वृद्धि में महाराजा संस्कृत भाषा के उज्जवल भविष्य को देख प्रसन्न होते थे। इसी के अनुसार भारत भर से संस्कृत विद्वान् भी अधिक संख्या में बुलवाए जाने लगे। इन विद्वानों का कार्य अध्यापन के अतिरिक्त ग्रन्थ-लेखन भी होता था, जिसके लिए महाराज की विशेष आज्ञा थी। नव जागृति के प्रथम उन्मेश के समय जब प्रकाशन तथा लेखन की आज जैसी सुविधाएं दुर्लभ थीं महाराजा ने राज्य में प्रकाशन-विभाग की स्थापना तथा विशेष मुद्रणालय का भी प्रबन्ध किया जिसमें नई संस्कृत रचनाएं छपने लगीं। इस प्रेस का नाम था 'विद्या विलास प्रेस'। संस्कृत विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकें राज्य की ओर से यहां ही छपती थीं, और जनता में उनका निःशुल्क वितरण होता था। उन प्रकाशनों में से कुछ के नाम, परिचय सहित, निम्नलिखित हैं :

१. शालिग्राम-चंद्रिका–पुस्तक के नाम से ही प्रकट है कि इस में शालिग्राम पूजा की विधि विस्तृत रूप से दी गई है। इसके लेखक थे राज्य के विद्वान् पं० आशानन्द जी। पुस्तक का विषय पुराणों से इकट्ठा करके विद्वान् ने उस पर अपनी मौलिक गवेषणा की गहरी छाप छोड़ी है।

२. रणवीर ज्योतिर्महा निबन्ध—इस वृहद् ग्रन्थ में ज्योतिष साहित्य के सब तत्वों का सरल संस्कृत में विवेचन किया गया है। ज्योतिष साहित्य का सर्वांगपूर्ण रूप इस महानिबन्ध में बड़ी कुशलता से उपन्यस्त किया गया है। यह ग्रंथ अब द्वितीयवार प्रकाशित न होने के कारण प्रायः अनुपलब्ध है। किन्तु प्राचीन संस्कृत-पंडितों के घरों में कहीं कहीं अब भी यह देखने में आ जाता है। इसका प्रकाशन सम्वत् १९२५ (विक्रमी) में हुआ था। इसके रचियता थे उस समय के प्रख्यात ज्योतिषी श्री महेश दैवज्ञ।

३. रणवीर-व्रत-रत्नाकर—इस वृहद् ग्रंथ में हिन्दुओं के समग्र पौराणिक व्रतों का वर्णन मिलेगा। अठारह पुराणों में स्थान स्थान पर बिखरे पड़े इन विवरणों को ग्रंथकर्ता ने बड़ी विद्वता के साथ इस एक ग्रंथ में निबद्ध कर दिया है। व्रतों के सम्बन्ध में एकत्रित ज्ञान का ऐसा भण्डार इस पुस्तक के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलेगा। इसके कर्ता थे राज्य के प्रसिद्ध पंडित श्री शिवशंकर शर्मा। पुस्तक का प्रकाशन विक्रमी संवत् १९४२ में हुआ था।

४. धर्मशास्त्र महानिबन्ध—(प्रायश्चित प्रकरण) इस ग्रंथ में संस्कृत वांगमय में यत्र तत्र विस्तृत धर्मशास्त्रीय प्रायश्चितों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। उपर्युक्त ग्रंथों की भांति इस ग्रंथ में भी एक विषय को समग्रतया अधिगत करने के लिए पाठकों को पर्याप्त सुविधा मिल जाती है। इसकी रचना काल वि० सं० १९३० और रचयिता थे राज्य के विद्वान् श्री गंगाराम शर्मा।

५. रामनुजोक्तिध्वांत भास्कर—इस पुस्तक में शंकर के अद्वैत मत का अनुसरण करते हुए लेखक ने रामानुजाचार्य के मत का युक्ति-प्रमाण द्वारा खण्डन किया है। इसमें लेखक की प्रबल दार्शनिकता के दर्शन होते हैं। इसका रचना काल वि० सं० १९५६ और रचयिता थे श्री प्रद्युम्न भट्टाचार्य, जिन्हें तृतीय महाराज श्री प्रतापसिंह ने बंगाल से बुलवाकर राज्य में रखा था।

६. अद्वैत मार्तण्ड—इस ग्रंथ में स्वामी शंकराचार्य के अद्वैत मत का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके रचयिता थे ब्रह्मानन्द तीर्थ, जो महाराजा प्रतापसिंह के श्रद्धा भाजन थे। इस ग्रंथ के टीकाकार थे राज्य के धुरन्धर विद्वान् एवं राजगुरु श्री गंगाधर शास्त्री।

इस प्रकार महाराजा श्री रणवीर सिंह ने संस्कृत भाषा के उद्धार के लिए राज्य भर में एक प्रबल आन्दोलन खड़ा करते हुए इस क्षेत्र में एक नया युग पैदा कर दिया। उनके समय प्रकाशित विपुल साहित्य में से कतिपय ग्रंथों का ही ऊपर विवरण दिया गया है। डुग्गर के विद्वानों तथा बाहर से बुलवाए गये अन्य राजकीय विद्वानों ने संस्कृत के नये साहित्य का निर्माण करते हुए सुर-भारती के कोष को जो अमर रत्न प्रदान किए, वे युगों युगों तक उनकी कीर्तिपताका को उन्नत गगन में लहराते रहेंगे।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य महाराजा ने यह किया कि राज्य भर से तथा अन्य स्थानों से प्राचीन संस्कृत हस्तलेखों की खोज के लिए एक विभाग स्थापित किया। इनमें कश्मीर घाटी के तथा डुग्गर के विद्वानों की नियुक्ति की गई जिस के अध्यक्ष थे मि० स्टाईन। उस प्रयत्न के परिणामस्वरूप रघुनाथ मन्दिर (जम्मू) के पुस्तकालय में लगभग ४५०० हस्तलेख एकत्रित हो गए जिनकी सूचि (catalogue) मि० स्टाईन ने स्वयं लम्बी भूमिका के साथ तैयार की थी। यह सूचि सन् १८९४ में तैयार की गई थी। इस कार्य में मि० स्टाईन को, दो सहायक विद्वान, तथा छै: प्रतिलिपिकार मिले हुए थे। यह सूची सन् १८८९ से प्रारम्भ होकर सन् १८९४ में समाप्त हुई।

इसी सम्बन्ध में जम्मू के विद्वान पं० आशानन्द जी को बनारस भेजा गया। उन्होंने वहां जाकर १५००० रुपये खर्च करके प्राचीन हस्तलेखों की एक बड़ी मात्रा प्राप्त की। दूसरी ओर अलवर के महाराज श्री मंगलसिंह ने एक बार जम्मू आ कर इस योजना से प्रभावित होकर अपने पुस्तकालय के सभी संस्कृत हस्तलेख इस जम्मू योजना को समर्पित कर दिए। महाराज रणवीरसिंह के इस ओर अभूतपूर्व उत्साह, लगन और त्याग से प्रभावित होकर अन्य लोगों ने भी अपने अपने हस्तलेख उनके इस नए विभाग को समर्पित कर दिए। परिणामस्वरूप श्री रघुनाथ मन्दिर का हस्तलेख-भण्डार काफी समृद्ध हुआ। इधर पं० आशानन्द की मृत्यु के बाद उनकी विधवा पत्नि ने अपने पति का संस्कृत-पांडुलिपियों का समग्र पुस्तकालय राज्य को भेंट कर दिया। इस प्रकार जम्मू प्रान्त से तथा बाहर के स्थानों से यथासम्भव यह संग्रह समाप्त कर लेने के बाद महाराजा ने कश्मीर घाटी से प्राचीन संस्कृत हस्तलेख संग्रह का कार्य शुरू कर दिया। इस योजना के अन्तर्गत उन्होंने कश्मीर के विद्वान श्री तिलकराज काक को नियुक्त किया। इस घाटी में ऐसे ऐसे अमूल्य हस्तलेख (शारदा लिपि में) पड़े थे जो शेष भारत के किसी भी प्रदेश से प्राप्त नहीं हो सकते थे। कश्मीर के विद्वानों और लेखकों की परम्परा ई० की द्वितीय तृतीय शताब्दी से चलकर १५वीं

शताब्दी तक कुछ धीमी तो पड़ जाती है किन्तु १२-१३ सौ वर्षों के इस लम्बे काल में यहां संस्कृत साहित्य की सभी शाखाओं का पर्याप्त पोषण हुआ। दूसरे शब्दों में कश्मीर का संस्कृत साहित्य के प्रति योगदान अत्यन्त समृद्ध है और इस पर एक अलग इतिहास लिखा जा सकता है। इन प्राचीन विद्वानों ने सहस्त्रों संस्कृत ग्रंथों की जो रचना की थी, उनके सैंकड़ों अमुद्रित हस्तलेखों का यहां होना स्वाभाविक ही था। पं० राज कौल के नेतृत्व में अन्य कश्मीरी विद्वान् जो उनके साथ नियुक्त किए गए थे इन हस्तलेखों का एक बहुत बड़ा भण्डार प्राप्त करने में सफल हुए। वे भी रघुनाथ पुस्कालय (जम्मू) में संग्रहीत कर दिए गए। अब प्रश्न था इन भिन्न भिन्न स्थानों से प्राप्त किए गए अमूल्य रत्नों के मुद्रण तथा प्रकाशन का। इस सम्बन्ध में महाराजा ने एक अनुसंधान विभाग की स्थापना की जो आज Research and Publication Deptt. J. & K. State के नाम से प्रसिद्ध है। इस विभाग के अन्तंगत अब तक लगभग १०० प्राचीन हस्तलेख प्रकाशित हो चुके हैं। इस समय इस प्राचीन विभाग का संस्कृत भण्डार बहुत समृद्ध है और बाहर से आकर अनेक संस्कृत अनुसंधानकर्ता इससे पूर्ण लाभ उठाकर जाते हैं। यह विभाग श्रीनगर में है। जम्मू का रघुनाथ संस्कृत पुस्तकालय तो भारतवर्ष भर में अपना विशेष स्थान रखता ही है। आज संस्कृत पुस्तकों तथा हस्तलेखों के ये दो अमर भण्डार देश के लिए गौरव का स्थान बने हुए हैं।

संस्कृत पाठशालायें

महाराजा रणवीर सिंह ने संस्कृत के अभूतपूर्व अनुराग से प्रेरित हो कर इस दिशा में जो जो कार्य किए उनमें बड़ा कार्य राज्य के भिन्न भिन्न स्थानों में पाठशालाओं की स्थापना भी है। इन में से दो संस्कृत महाविद्यालयों का विवरण दे देना आवश्यक होगा।

१. श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय जम्मू

इसकी स्थापना महाराजा श्रीरणवीर सिंह ने सन् १८६१ में की थी। पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना के पूर्व इसका पाठ्यक्रम प्राचीन विद्वत् परिपाटी के अनुसार चलता था। इसमें चार वेद, छै: शास्त्र, व्याकरण ज्योतिष, चिकित्सा आदि के विषयों के अध्यापन का प्रबन्ध पृथक् पृथक् विभागीय ढंग से चलाया जाता था। इस बृहत् अध्यापन संस्था का कार्य विधिवत् चलाने के लिए भारत के गण्यमान्य विद्वानों को यहां लाकर नियुक्त किया गया। राजगुरु एवं संस्कृत के दिग्गज विद्वान् (डुग्गर क्षेत्रीय) श्री गोकुलचन्द्र जी इस महाविद्यालय के प्रथम आचार्य (प्रिंसीपल) नियुक्त हुए। इसी प्रकार पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान् श्री हरदत्त तिवारी, राजगुरु महामहोपाध्याय श्री जगदीशचन्द्र, महामहोपाध्याय

राजगुरु श्री देवराज शास्त्री, विद्यारत्न, राजपंडित पं० बालकृष्ण शास्त्री तथा तर्क तीर्थ श्रीचन्द्र जी आदि प्रसिद्ध विद्वान् इस महाविद्यालय को अपने आचार्यत्व से विभूषित कर गए हैं। शुरू से इस संस्था में तीन सौ छात्र थे, जिनके लिए अध्यापन, निवास तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था थी। यहां पढ़ने के लिए समग्र भारत के प्रान्तों से छात्र आते थे। इस समय इस संस्था में लगभग एक सौ छात्र हैं और पाठ्यक्रम पूर्ववत् ही चल रहा है। पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् प्राज्ञ-विशारद तथा शास्त्री परिक्षाओं की पढ़ाई का प्रबन्ध भी इसमें जोड़ दिया गया जो आज तक चलता आ रहा है।

२. उत्तर वाहिनी संस्कृत महाविद्यालय

इसकी स्थापना भी उपर्युक्त विद्यालय की स्थापना काल में ही हुई थी। इसका स्तर भी इसी के समान विशाल था जो धीरे धीरे संक्षिप्त होता चला गया। प्रसिद्ध संस्कृत लेखक तथा अनेक ग्रंथों के टीकाकार स्व० श्री रामप्रपन्न शास्त्री इसी विद्यालय के आचार्य थे।

अब इसका पूर्ण विलय रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय जम्मू से हो चुका है। इसके अतिरिक्त रणवीर संस्कृत पाठशाला जम्मू, राजकीय संस्कृत पाठशाला श्रीनगर तथा मासिक सहायता पर चलाई गई लगभग ८० अन्य संस्कृत पाठशालाएं अब तक राज्य भर में चल रही हैं। इन में से प्रथम दो संस्कृत पठनार्थियों के अभाव के कारण अस्त हो चुकी हैं। शेष जिस किसी दशा में अभी जीवित हैं। इस युग में संस्कृत संस्थाओं के जीवन के आगे सबसे बड़ी समस्या है संस्कृत छात्रों का अभाव। आज वैज्ञानिक युग में आर्टस् की पढ़ाई बहुत पीछे रह चुकी है इसका संस्कृत के पठन-पाठन पर विशेष रूप से दुष्प्रभाव पड़ा है।

महाराजा गुलाब सिंह [राज्य के प्रथम महाराज] ने जम्मू कश्मीर राज्य का निर्माण किया और इसके लिए उनका जीवन भर युद्ध में ही बीत गया। इसी कारण वे संस्कृतोन्नति के लिए शान्ति, विश्राम, समय और उचित वातावरण नहीं पा सके। किन्तु श्री म० गुलाबसिंह द्वारा भी उपार्जित और परिवर्द्धित राज्य की बागडोर प्राप्त करके म० रणबीरसिंह ने युद्धों की भूमिका से दूर रहकर शान्त वातावरण में इस पौधे को लगाया और सींचा। इसी प्रकार इनकी अगली पीढ़ियों ने [म० प्रतापसिंह जी तथा म० हरिसिंह जी] उनके लगाये हुये इन पौधों को यथासम्भव सिंचन करते हुए मुरझाने नहीं दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर इसी पीढ़ी के महाराज डा० कर्ण सिंह जी [राज्य के राज्यपाल] ने इस पौधे को जो अब पुष्पित और फलित वृक्ष बन चुका था, विशेष रूप से परि-

पाद्धत किया। इन्होंने प्राचीन हस्तलेखों [जो लगभग ४५०० हैं] के पुस्तकालय को सुरक्षा के लिए अनेक प्रबन्ध किए हैं। अन्यथा ये समय की गति के साथ साथ जीर्ण-शीर्ण हो जाते। पाठशालाओं को सुव्यवस्थित बनाने में भी काफी प्रयास किया है, किन्तु संस्कृत भाषा की पढ़ाई के प्रति आज जनता की अरुचि के कारण संस्कृत पठनार्थियों के अभाव के आगे ये भी निरुपाए हैं। इसके लिए देशव्यापी प्रचार और साधनों की ही आवश्यकता नहीं, जनता की रुचि परिवर्तन की भी आवश्यकता है, जो किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं, सामूहिक कार्य है।

उपर्युक्त विवरण द्वारा जम्मू का संस्कृत साहित्य को योगदान के सम्बन्ध में कुछ झलक अवश्य मैंने पाठकों के समक्ष रख दी है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यही सब कुछ है। अभी इस सम्बन्ध में और बहुत कुछ लिखने को पड़ा है।

पाली भाषा

चम्पा शर्मा एम० ए०

विभिन्न विद्वान् वैदिक भाषा के विषय में विभिन्न मतावलम्बी हैं। कई विद्वानों का विचार है कि वेदों की भाषा तत्कालीन संस्कृत है जब कि अन्य वैदिक युग में बोली जाने वाली नाना बोलियों में से किसी एक बोली में ही वेदों की रचना हुई मानते हैं। अभी तक यह प्रश्न विवादास्पद है। डा० आर० जी० भण्डारकर के अनुसार 'पाली' का उद्भव लौकिक संस्कृत से है। हमारे प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी भी संस्कृत से ही पाली का उद्भव मानते हैं। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् उक्त मत में आस्था नहीं रखते। उनके दृष्टिकोण से उक्त मत भाषा-विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, क्योंकि :पाली' में उपलब्ध अनेक विशेषतायें वेदों में प्राप्त नहीं होतीं—इसी प्रकार वेदों में प्राप्य विशेषतायें 'पाली' में ढूंढे नहीं मिलतीं। उदाहरणार्थ 'पाली' में यहाँ 'तून' 'ऊन' तथा 'धून' रूप मिलते हैं वहां वेदों में 'त्वा' तथा त्वान्त रूप उपलब्ध होते हैं। अतः हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि वेदों की भाषा 'पाली' तो नहीं परन्तु 'पाली' से मिलती-जुलती कोई अन्य भाषा रही होगी। वेदों में हमें कथानक [Narrative] लिट्लकार के रूप में मिलते हैं पर 'पाली' में नहीं मिलते। बहुत से शब्द लौकिक संस्कृत में मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप लौकिक संस्कृत में 'देवा:' शब्द बहुवचन में

प्रयुक्त हुआ है पर वेदों में इसी शब्द का प्रयोग 'देवासा' मिलता है। उसी प्रकार 'पाली' में भी 'धमासे', 'पण्डितासे' आदि रूप मिलते हैं—इससे पाली तथा वैदिक भाषा का साम्य दृष्टिगोचर होता है।

वेद में पूर्वकालिक प्रत्यय 'तवे' का रूप पाली में भी वियहातवे, 'हातवे' आदि मिलता है। लौकिक संस्कृत के तृतीया बहुवचन का रूप 'देवैः' मिलता है जब कि 'पाली' तथा वेद-दोनों में तृतीय बहुवचन देवेभिः रूप उपलब्ध होता है। वैदिक संस्कृत की ध्वनि [अग्निमीके] पाली में भी मिलती हैं। कुछ धातुओं का प्रयोग वैदिक संस्कृत तथा पाली में एक सा है, यथा यम का अर्थ दोनों ही में अर्पित करना है तथा 'ख्या' का अर्थ 'देखना' है। पर लौकिक संस्कृत में ख्या का अर्थ कहना है। 'विवेक' का अर्थ 'वेद' में एकान्त है पर लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ ज्ञान है।

जहां तक पाली में ध्वनि-परिर्तन का प्रश्न है उसके विषय में कहा जाता है कि जब आर्य लोग भारत में आए उस समय यहां आर्येतर लोग रहते थे। आर्येतरों ने भी आर्यों की भाषा को अपना लिया परन्तु शुद्ध उच्चारण न कर सकने के कारण ध्वनि में भेद आ गया। अशुद्ध रूप में शब्द बोले जाने लगे। आर्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और इस प्रकार ध्वनि-भेद आता गया।

पाली के उद्भव के विषय में भी अनेक धारणायें हैं। पाली का प्रयोग लंका में उपलब्ध 'दीपवंश' बौद्धग्रन्थ में मिलता है। बुद्धघोष ने 'धम्मपद' पर लिखित 'अठ्ठकथा' पाली में लिखी है। वर्तमान विद्वानों ने तो 'पाली' की उत्पत्ति 'प्रली' से मानी है।

श्री विदुषेण भट्टाचार्य ने 'पंक्ति' से 'पाली' का उद्भव माना है। उनका कहना है 'पंक्ति' से 'पन्ति' बना, 'पन्ति' से 'पत्ति' तदनन्तर 'पत्ति' से 'पिला' और फिर 'पाली' बन गया।

कुछ विद्वानों के अनुसार 'पाली' शब्द 'षाली' से निकला है। 'षाली' गांव को कहते हैं। अतः गांवों में बोली जाने वाली भाषा पाली है।

अन्य विद्वान् इसे प्राकृत से उत्पन्न मानते हैं। 'प्राकृत' से सम्भवतः 'पाकट' बना। फिर 'पाऊट' बना होगा तदनन्तर 'पाअल' और अन्त में पाली बन गया होगा।

'पाली' शब्द संस्कृत की 'पाल' धातु से भी निकला हुआ हो सकता है। पाल का अर्थ है पालना—रक्षा करना। अतः प्रारम्भ में वे सब ग्रन्थ पाली में रचे गये जिन में भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों का पालन करने का आदेश दिया

गया। उसी प्रकार संस्कृत की पठ् धातु से भी 'पाली' का उद्भव माना जा सकता है।

डा० मैक्समूलर ने इसे पाटलीपुत्र की भाषा माना है। इस प्रकार 'पाटली' से 'पाअली' फिर पाली बना।

आचार्य भिक्षुकश्यप ने 'पर्चाय' शब्द से इसकी उत्पत्ति मानी है, क्योंकि 'पर्चाय' शब्द बुद्ध के ग्रन्थों में बुद्ध के सिद्धान्तों के लिये प्रयोग में आया है।

पाली का क्षेत्र

पाली कहां की भाषा थी ? यह प्रश्न भी अभी तक जटिल तथा विवादास्पद है। डा० विडिश, ग्रीयरसन, चाइलडर तथा गाइगर के मतानुसार 'पाली' का आधार 'मागधी' रहा है। विडिश महोदय का कथन है कि यद्यपि 'मागधी भी पाली' का आधार थी पर जब बुद्धग्रन्थों की रचना हुई तब तक मागधी ने राष्ट्रीय भाषा का रूप अपना लिया था। वह अब प्रान्तीय भाषा नहीं रही थी। 'मागधी' के अकारान्त पुलिंग के एक वचन में 'ए' का प्रयोग होता है यथा 'देवे' 'धम्मे', परन्तु जब 'पाली' ने राष्ट्रीय भाषा का रूप ग्रहण कर लिया उसने दूसरी भाषाओं के 'र' तथा 'ओ' का यथा 'देवो' प्रयोग ग्रहण कर लिया। अतः 'पाली' मगध देश के आस-पास की भाषा है।

श्री कुन्हे ने इस अनुभूति के आधार पर कि अशोक का पुत्र महेन्द्र मालवा की राजधानी 'उज्जयनी' में उत्पन्न हुआ और वहीं से वह बुद्ध ग्रन्थ लेकर लंका में प्रचार करने गया, उज्जयनी की भाषा को ही पाली माना है।

श्री फ्रैंके बहुत से प्राकृत अभिलेखों का अध्ययन करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि 'पाली' का स्थान 'उज्जयनी' के आस-पास था। डा० स्टेनकोनो, वैस्टरगाड तथा ओल्डनबर्ग कलिंग (उड़ीसा) की बोली को पाली का आधार मानते हैं। खण्डरगिरि के शिलालेखों से तुलना करके वह इस निर्णय पर पहुंचे हैं। एक अन्य विद्रान् पाली को कोशल की भाषा मानते हैं।

पर उपरोक्त मतों में से डा० विडिश का मत ही युक्तिसंगत लगता है क्योंकि बुद्धग्रन्थ के अनुसार महात्मा बुद्ध 'मागधी' ही बोलते थे। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध ने कहा था कि मेरी भाषा में ही लोग मेरे उपदेशों को न पढें— परन्तु वह अपनी २ भाषा में पढें। सम्भवतः इसी कारण पाली बहुत सी बोलियों से प्रभावित हो कर नाना रूपों में प्रयुक्त होने लगी।

उदाहरणार्थ बुद्धघोष की 'अट्ठकथा' में से पाली का एक नमूना यह प्रमाणित करता है कि पाली बहुत से परिवर्तनों के साथ प्रयुक्त होने लगी थी :

"सावथ्थियं किर अदिष्णपुषवको नाम ब्राह्मणों अहोसि। तेन करसचि किंचिदादिण्ण पुब्बं तेन तं अदिष्णयुब्बको त्वेव संजानिन्सु। तस्सेक पुत्तको अहोसि पियो मनापो। तस्स सोलसवस्सकाले पण्डुरोगो उदपादि। माता पुत्त आलेकेत्वा ब्राह्मण पुत्तस्स ते रोगो उत्पन्नो चिकिच्छापेहि नन्ति आह। मोहि सच्चे वेज्जं आनेस्सामि भत्तवेतनं दातब्बं भविस्सति। त्वं मम धनछेदनं न आलोकेसीति। अथ किं करिस्ससि ब्रह्मणाति। यथा में धनच्छेदो न होती तथा करिस्सामीति। सो वेज्जानं सन्तिकं गन्त्वा अमूकरोगस्य नाम तुहमें किं भेसजं करोथाति पुच्छि। अथस्स ते यं वा तं वा रुक्खतञ्च आदि आचिक्खन्ति। सो तं आहरित्वा पुत्तस्स भसेज्जं करोति। तं करोन्तस्सवस्स रोगो बलवा अहोसि।"

पाली के प्रस्तुत संदर्भ का परिवर्तन यदि संस्कृत भाषा में किया जाए तो वहां हमें पाली में होने वाले विकारों का ज्ञान होगा। उदाहरणार्थ पाली में संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों का समीकरण् हो गया दीखता है। संस्कृत का पुत्र वाली में पुत्त हो गया है। 'त' के बाद वाले 'र' को 'त' ने 'त्' कर लिया है। 'कस्य' के 'स' ने 'य' को भी 'स' में परिवर्तित कर लिया है। संस्कृत का 'भक्त' पाली में 'भत्त' हो गया है—'भक्त' के 'त' ने 'क' को भी 'त' में परिवर्तित कर दिया है। संस्कृत का 'ऐ' पाली में 'ए' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत में आकारन्त धातुओं को 'णिजन्त' में 'पा' का प्रयोग होता है पर पाली में सब धातुओं में 'णिजन्त' में 'या' हो जाता है। पाली में उपसर्ग हो या प्रत्यय इसमें अन्तर नहीं माना गया। यथा 'आहृत्य' का प्रयोग उपलब्ध है। पाली में सर्वत्र ही विसर्ग को 'ओ' हो जाता है। पाली में स्वर-भक्ति भी मिलती है। संस्कृत का दीर्घ स्वर पाली में ह्रस्व स्वर हो जाता है जैसे पाली में पण्डुरोग—संस्कृत में पाण्डूरोग होता है।

पाली की विशेषताएं

(क) पाली भाषा की कुछ निजी विशेषतायें हैं। उदाहरणस्वरूप पाली में संस्कृत के लृ, ॠ, ए तथा ऐ के अतिरिक्त अन्य सब स्वर उपलब्ध होते हैं—संस्कृत में जहाँ लृ, ॠ, मिलती है वहाँ 'अ' मिलता है जैसे 'गृह' का 'गह', 'मृत्यु' को 'मच्चु', 'ऋण' को 'इण' 'शृगाल' का सगाल, 'ऋषभ' का 'उसब'। उसी प्रकार 'ऐ' के स्थान पर 'ए' और

'औ' के स्थान पर 'ओ' हो जाता है—जैसे 'चैत्यगिरि' को पाली में 'चेतियगिरि', 'गौतम' को 'गोतम', 'औषध' को 'ओसद' तथा 'वधेह' को 'वेधेह' हो जाता है।

(ख) पाली में विषमीकिरण तथा समीकरण द्वारा भी शब्दों के रूप परिवर्तित हुये हैं। 'पृथ्वी' को 'पठुवी' तथा 'दोषा' को 'दोसा' इसके उदाहरण हैं।

(ग) पाली में भाषा के नियमों के कारण स्वर-परिवर्तन दष्टिगोचर होता है, संयुक्त अक्षर में पूर्वस्वर का दीर्घस्वर हृस्व हो जाता है। यथा 'पूर्ण' को 'पुण्ण' तथा 'तीर्थ' को 'तित्थ'।

(घ) कहीं कहीं 'ए' तथा 'ओ' के हृस्व (इ, उ) न होने पर भी यह 'इ' तथा 'उ' की भाँति उच्चारित होते हैं। 'उपेक्ष' को 'उपेक्ख' तथा 'मोक्ष' को मोख' आदि आदि।

(ङ) द्वित्व (संयुक्त) व्यञ्जनों का पाली में सरलीकरण हो जाता है, तथा उसके पूर्व का दीर्घ स्वर उसी प्रकार रहता है—उदाहरणस्वरूप 'आर्ज्व' को 'आजव' हो जाना।

(च) पाली में क्षति लोप के लिये हृस्व स्वरों का दीर्घीकरण भी होता है जब उपसर्ग शब्दों के साथ संयुक्त हों—'प्रकट' को 'पाकट' होना इस मत की पुष्टि करता है।

(छ) अनुनासिक शब्द जब अपना अनुनासिकत्व छोड़ देते हैं तब हृस्व स्वर को दीर्घ हो जाता है—'सिंह' को 'सीह' तथा 'विंशति' को 'वीसति' हो जाता है।

(ज) 'अपि' को 'पी' तथा 'अलंकार' को 'लंकार' पाली में आदि स्वर लोप का संकेत देते हैं।

(झ) पाली में संस्कृत के सभी व्यंजन—['श्' तथा 'ष्' के अतिरिक्त] मिलते हैं। 'ळ्' वेद तथा पाली दोनों में मिलता है।

(ञ) संस्कृत के अघोष वर्ण पाली में सघोष बन जाते हैं। 'तृषत्' को 'तसद्' इसी नियम से हो गया है।

(ट) पाली स्वराघात एक विवादास्पद विषय बन गया है। श्री टर्नर के अनुसार पाली में हमें संगीतात्मक तथा बलात्मक स्वराघात, वेद की भाँति मिलता है। डा० ग्रियरसन पाली में केवल बलात्मक स्वराघात ही मानते हैं।

(ठ) जहाँ तक शब्दों के रूप तथा शब्द-विज्ञान् का सम्बन्ध है। पाली में हमें संस्कृत के तीन वचनों में से दो उपलब्ध होते हैं।

(ड) आठ विभवितयों में से पाली में केवल छः मिलती हैं। सम्प्रदान तथा सम्बन्ध कारक और अपादान तथा तृतीया भी समवेत हो गये हैं।

(ढ) यद्यपि बहुत से शब्दों के रूप सम्प्रदान तथा अपादान में नहीं मिलते तथापि अकारान्त पुलिंग में वह उपलब्ध होते हैं। सम्भवतः यह शब्द अधिक प्रयोग में आते रहे होंगे इसी कारण जनता इनका प्रयोग न भूल सकी।

(ण) अकारान्त पुलिंग तथा नपुंसकलिंग शब्दों का रूप अधिकरण में सर्वनामों के सादृश्य पर बनता है। कर्म के बहुवचन में सर्वनाम प्रथमा बहुवचन के 'ए' प्रत्यय का प्रयोग होता है। प्रथमा बहुवचन में धम्मा से तथा तृतीया बहुवचन रूप वैदिक रूपों के निकट है।

(त) पाली में आकारान्तों के रूपों के सादृश्य पर ही ईकारान्तों को अकारान्त हो जाता है। व्यञ्जनों का या तो लोप कर दिया गया है या फिर आ का आगमन हो गया है। उदाहरणस्वरूप युवानस्य।

(थ) जैसे संस्कृत 'आकारान्त' स्त्रीलिंग शब्दों में एकरूपता—यथा बालायाः, षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियों में आने लगी उसी प्रकार पाली में भी एकरूपता बढ़ गई। तृतीया,चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी तथा अधिकरण में भी 'कन्याय' मिलता है। उकारान्त के रूप ईकारान्त की भान्ति मिलते हैं।

(द) पाली में उत्तमपुरुष तथा मध्यमपुरुष संस्कृत की भान्ति मिलते हैं।

(ध) तत् के सब संज्ञा शब्दों का प्रभाव पाली के सर्वनाम पर पड़ा है यथा सरेयोः—श्रेयः, कनिष्ठ आदि।

(न) संस्कृत की भान्ति पाली के क्रिया के रूपों में गणों का ढंग है। पाली में भी कुछ धातुओं को गुण होता है तथा कुछ को नहीं। कई धातुओं में 'नु' का प्रयोग होता है तथा कइयों में नहीं—कई में 'य' तथा कुछ में 'अय्' का प्रयोग होता है। परस्परपद तथा उत्तण्णपदों का भी प्रयोग इसमें हुआ है। परन्तु अब धीरे धीरे उत्तण्णपद कम होते जा रहे हैं।

(प) संस्कृत की भान्ति पाली में भी कई लकारों का प्रयोग मिलता है। भविष्यत काल के लिये गच्छिसिति का प्रयोग मिलता है।

(फ) संस्कृत में पित् तथा अपित् का प्रयोग मिलता है पर पाली में नहीं--
यथा करोति -- करोवन्ति,
करोसि—करोथ।

(ब) पाली में लेट् लकार का प्रयोग डा० पिशेल ने ढूंढ निकाला। यह वेद तथा पाली दोनों में उपलब्ध होता है। पाली में लुङ् तथा लङ में अट् [अ] का लोप होना प्रारम्भ हो गया है।

(भ) पाली में सनन्त भी मिलते हैं पिपासनि इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यङन्त तथा नामधात, का भी प्रयोग इसमें मिलता है।

'लभन्त:' तथा 'स्यमान' रूप पाली में प्रयुक्त कृदन्तों की ओर संकेत करते हैं।

(म) पाली में पूर्वकालिक प्रत्यय 'तवे': तुम् तथा तः तीनों मिलते हैं। तथा पश्चात् कालिक गत्वा, चेतवान् तूण 'दूण' तथा 'ऊण' भी मिलते हैं।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्य प्राकृतों की अपेक्षा पाली संस्कृत के अधिक निकट है। अन्य प्राकृतों की अपेक्षा पाली में कारकों तथा कालों का प्रयोग अधिक स्पष्ट मिलता है। ध्वनि तथा रूप की दृष्टि से भी पाली भाषा, वेद के निकट है तथा तत्कालीन बोलियों का प्रभाव लिये हुये है। इसमें तद्‌भवों का अधिक प्रयोग हुआ है। प्रयत्नलाघव के लिये द्विवचन का लोप हो गया है—व्यंजनान्तों की कमी है—विषमीकरण तथा समीकरण ने अधिक कार्य किया है।

'त्रिपिटक' में पाली का प्रारम्भिक रूप दीखता है। इसमें विभक्ति के रूपों का बाहुल्य है। यह पाली के विकास की प्रथम सीढ़ी है।

त्रिपिटक का गद्य भाग पाली भाषा के विकास की द्वितीय सीढ़ी है। इसकी विशेषतायें भी पहली सीढ़ी की भान्ति ही हैं।

बुद्धघोष की 'आत्मकथा' में इसका तृतीय रूप दृष्टिगोचर होता है।

पाली के विकास की चौथी सीढ़ी की विशेषताओं का दर्शन 'दपिवंस' 'महावंस' में होता है। इसमें संस्कृत का अधिक प्रभाव है तथा कृत्रिमता भी अधिक है।

● ● ●

योगदर्शन में अहिंसा का मत

डा० कौशल्या वल्ली

'योग' शब्द युज् धातु से बना है। चित्तवृत्ति निरोध ही योग का अर्थ है। मन के तीन गुण हैं---सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण।

सत्त्वगुण शुद्धगुण है और सत्त्वगुण से युक्त मन ज्ञान प्राप्ति के योग्य होता है। योगी मन के अन्य दो गुणों (रजस् और तमस्) को निग्रह में रखता है। शुद्ध मन ही सर्वोच्चय शक्ति (ईश्वर) के प्रति ध्यानमग्न होने के योग्य है[1]।

ईश्वर क्या है ? पतञ्जलि के अनुसार जो क्लेश, कर्मफल और अविद्या, सुख, दुःख से रहित और सब बंधनों से रहित है, वह ईश्वर है। वह सर्वज्ञ है और पूर्वसिद्धों का भी गुरु है[2]।

व्यासानुसार क्लेश का अर्थ अविद्या है। कर्म दो प्रकार के हैं । १. शुभकर्म २. अशुभ कर्म। शुभ और अशुभ कर्मों का परिणाम ही विपाक कहलाता है। विपाकानुसार इच्छायें ही आशय के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश क्लेश कहलाते हैं। मन की शुद्धि के लिए पतंजलि ने योग के आठ अंग बतलाए हैं। यम सर्वप्रथम अंग है।

---

१. पतंजलि योगदर्शनम् १.२
२. पतंजलि योगदर्शनम् १.२५.२६

अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह यम के अन्तर्गत आते हैं[3]। अहिंसा प्रथम यम है। सर्वदा, सर्वथा, मन, वचन और कर्म से दूसरों के प्रति ईर्षा और द्वेष रहित होना अहिंसा का लक्षण है[4]।

इस व्रत के पालन करने के उद्देश्य सर्वोदय (सब का कलयाण) है। अहिंसा सब यम और नियमों में मुख्य ही नहीं है अपितु उन सब का मूल अहिंसा ही है। उन का पालन, इसको (अहिंसा को) पूर्ण रूप से आचरण में लाने के लिए ही, किया जाता है[5]। उन के अभ्यास से अहिंसा का अभ्यास करने की शिक्षा मिलती है। इसी अर्थ में कहा जाता है कि यमानुसार जीवन व्यतीत करने वाला दूसरों को असावधानता से भी हानि पहुंचाने से अपने को दूर रखता है और इस प्रकार अहिंसा-शुद्धि करता है[6]। यदि अहिंसा का पालन किए बिना ही दूसरे यम और नियमों का पालन किया जाये तो वह निरर्थक ही है[7]।

उदाहरण के तौर पर सत्य का अर्थ यथार्थानुकूल वाणी का बोलना है। दूसरे शब्दों में वाणी और मन, जो सुना है, जो अनुमान किया है और जो देखा है, उसी के अनुकूल हों। वाणी द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों के सामने प्रकट करता है और वही वाणी सत्य है जो निरर्थक, ज्ञानरहित और वंचनायुक्त नहीं है। सत्य-वाणी का उद्देश्य सर्वोदय ही होना चाहिए, जीवों का नाश नहीं। जीव हिंसा करने वाली वाणी सत्य-वाणी नहीं हो सकती। अतएव योगी का कर्त्तव्य सब जीवों का कल्याण दृष्टिगोचर रख कर सत्य बोलना है[8]।

यदि कोई वधिक योगी से पूछे कि गाय किस मार्ग से गई और सत्यव्रती योगी गाय के जाने के मार्ग को बतलाता है तो वह सत्यव्रत का वास्तविक अर्थ में पालन नहीं करता है क्योंकि इस प्रकार का सत्यवादी बनने से निर्द्रोष गाय की जान पर खेला गया[9]। इसी प्रकार सब यम और नियम बिना किसी की हानि किये ही वास्तविक अर्थ में आचरण में लाने योग्य हैं।

प्रसिद्ध स्मृतिकार मनु के अनुसार भी प्रिय सत्य बोलना चाहिए। मानव को अप्रिय नहीं बोलना चाहिए चाहे वह सत्य ही क्यों न हो। झूठ भी नहीं बोलना

---

३. पतंजलि योगदर्शनम् II.३०
४. व्यास भाष्य II.३०
५. व्यास भाष्य और तत्त्ववैशारदी वाचस्पति की II ३०
६. व्यास भाव्य II.३०
७. वाचस्पति की तत्त्ववैशारदी II.१३
८, व्यास भाष्य II ३०
९. तत्त्ववैशारदी II.३०

चाहिए, यदि वह प्रिय भी हो, क्योंकि मनुष्य का शाश्वत कर्त्तव्य वाणी से वही बोलना है जो सत्य हो और प्रिय हो[10]।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि सब यम और नियम अहिंसा का समर्थन करते हैं और अहिंसा को शुद्ध करते हैं।

जब पांच यमों का पालन जाति, देश, काल और समय से रहित किया जाता है, वह सार्वभौम महाव्रत कहलाते हैं[11]।

सजाति अहिंसा का उदाहरण यों हो सकता है—मछली पकड़ने वाला केवल मछलियों की ही हिंसा करता है (जीविका के लिए) और किसी की हिंसा नहीं करता। सदेश अहिंसा वह अहिंसा है जब मानव पवित्र स्थानों पर हिंसा नहीं करता। सकाल अहिंसक पवित्र दिनों पर हिंसा नहीं करता, यथा पूर्णिमा अथवा चतुर्दशी को हिंसा नहीं करता। जो केवल देवताओं अथवा ब्राह्मणों के हेतु हिंसा करता है, वह समय सहित अहिंसा का पालन करता है[12]।

समय संबन्धी दूसरा उदाहरण क्षत्रिय है। एक क्षत्रिय समय सहित अहिंसक है, जब वह कहता है—मैं रणक्षेत्र के अतिरिक्त और कहीं हिंसा नहीं करूंगा[12]।

उपरोक्त जाति देशकाल समयरहित अहिंसक महाव्रती है। व्यास के अनुसार अहिंसा और दूसरे यमों का पालन सर्वथा और सर्वदा करना चाहिए।

पांच नियम निम्नांकित है :

१. शौच २. सन्तोष ३. तप ४. स्वाध्याय ५. ईश्वरप्रणिधान।[13]

शौच दो प्रकार का है—१. बाह्य शौच २. आंतरिक शौच।

बाह्य शौच तन की शुद्धि, जल, मिट्टी इत्यादि द्वारा होती है। आंतरिक शुद्धि मन के दोषों को दूर करने से होती है।[14] मन के दोष अभिमान, ईर्ष्या दर्प इत्यादि हैं। इन को मन से दूर करना ही मन की शुद्धि कहलाती है।

सन्तोष का अर्थ आवश्यकता से अधिक न रखना ही है। सन्तोष त्याग का पालन करने में सहायता देता है। गर्मी-सर्दी भूख-प्यास, उठना-बैठना इत्यादि इन परस्पर विरुद्ध परिस्थितयों और भावों में सहनशीलता का होना तप कहलाता

---

१०. मनुस्मृति IV. १३८

११. पतंजलि योगदर्शनम् II.३१

१२. व्यास भाष्य II.३१

१३. पतंजलि योगदर्शनम् II.३२

१४. व्यास भाष्य II ३२

है। पूर्ण मौन रखने वाला मनुष्य संकेत से भी अपने विचार प्रकट नहीं करता, सामान्य मौनी केवल वाणी द्वारा ही अपने भाव व्यक्त नहीं करता।[15] इन दोनों प्रकार के मौन को धारण करने वाला योगी भी तप-नियम का पालन करता है।

प्रणवजप और मोक्ष सम्बन्धी पुस्तकों (शास्त्रों) का पठन स्वाध्याय कहलाता है। कर्मों को ईश्वर समर्पण करना ईश्वरप्रणिधान कहलाता है[16]। इस प्रका रनियम पालन अहिंसा पालन में ही सहायक है।

पंतजलि के अनुसार जब मन वितर्कों से बाधित हो जाये तब प्रतिपक्ष का सहारा ले। जब कभी योगी वितर्क से आक्रांत हो जाता है—मैं उसकी हिंसा करूंगा जो मुझे मारना चाहता है, मैं झूठ बोलूंगा, मैं किसी का धन छीनूंगा, मैं परस्त्रीआसक्त हूँगा और पराये की संपत्ति का स्वामी बनूंगा—इन कुमार्ग पर ले जाने वाले कुविचारों के विरुद्ध सुविचार उसे सोचने चाहिये। "संसार रूपी अग्नि से संतप्त हुआ मैं योग की शरण में आया और सब जीवों का आश्रय बना। स्वयं ही वितर्क छोड़ कर मैं पुन: कुत्ते के समान वितर्क का ही दास बनता हूँ। जिस प्रकार कुत्ता उगले हुए भोजन को चाटता है, उसी प्रकार स्वयं ही व्यक्त वस्तुओं को पुन: चाटने जाता हूँ।"[17]

इस प्रकार की विचार धारा बनाने से मानव मन को निग्रह में रखने के योग्य हो सकता है और व्रत-पालन करने की क्षमता आती है। हिंसा आदि वितर्क कई प्रकार के हैं—१. कृत २. कारित ३. अनुमोदित। इन में से प्रत्येक तीन प्रकार का है—१. लोभ के कारण, अर्थात् चर्म या मांस के लिए। २. क्रोध के कारण, अर्थात् इस विचार से कि उस को दूसरे के द्वारा हानि पहुँचाई गई है। ३. मोह के कारण, अर्थात् इस विचार से कि परिणाम शुभ होगा। लोभ, क्रोध और मोह तीन प्रकार के हैं—१. मृदु २.मध्य २. अधिमात्र। इन के पुन: तीन प्रकार हैं—१. (क) सामान्य मृदु (ख) मध्य मृदु, (ग) अधिमात्र मृदु २. (क) मृदु मध्य (ख) मध्य-मध्य (ग) अधिमात्र मध्य। ३. (क) मृदु अधिमात्र (ख) मध्य अधिमात्र (ग) अधिमात्र रूप से अधिमात्र। इस विधि हिंसा इक्कासी प्रकार की हो जाती है। वैसे नियम, विकल्प और समुच्चय के कारण हिंसा असंख्य प्रकार की हो सकती है,[18] क्योंकि प्राणधारी जीव असंख्य हैं। असत्य इत्यादि के भी इतने ही प्रकार बनते हैं।

वितर्क का परिणाम अपार दु:ख और अविवेक है अतएव वितर्क के विरुद्ध सुविचारक्षेत्र[19] में ही भ्रमण करना मानव के लिए प्रगति-मार्ग है। सुविचार

---

१५. व्यास भाष्य और तत्त्ववैशारदी II.३२
१६. व्यास भाष्य II.६२
१७. व्यास भाष्य II.३३
१८. व्यास भाष्य II.३४
१९. पंतजलि योगदर्शनम् II.३४

हृदयस्थ इस प्रकार हो सकते हैं—हिंसक जिस पशु की हत्या करना चाहता है उस को बांधने से उस को शक्तिरहित करता है, तत्पश्चात् किसी शस्त्र से उसकी जान लेने से उसके दु:ख का कारण बनता है और अन्त में उसकी जान लेता है। जीव हिंसा के परिणाम-वश वह परिवारहीन और संपत्तिहीन बनता है। पशु हिंसा के कारण उसका जीवन नरक-निवासस्थान बन जाता है, वह पशु, भूत-प्रेत की योनि में जन्म लेता है। जीवहिंसा के कारण उस की मृत्यु दु:ख पूर्ण होती है। यद्यपि पुण्यों के कारण हिंसा का फल नष्ट भी हो जाए, तो भी हिंसक अल्पायु में ही जान खो बैठता है।[20]

हिंसा के इन भयंकर परिणामों को दृष्टि में रख कर मानव को यम और नियम का पालन करना चाहिए, जिससे मन की शुद्धि होती है। शुद्ध मन योग के उद्देश्य कैवल्य को प्राप्त करता है।[21]

यमनियमानुसार जीवन व्यतीत करने वाला योगी कुछ शक्तियाँ प्राप्त करता है—उस के अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर, उसकी उपस्थिति शत्रुता को रोक देती है। शाश्वत शत्रुता वाले जीव भी—उदाहरणतया बिल्ली, चूहे, सांप और नेवले-अहिंसा-प्रतिष्ठित जीव की उपस्थिति में शत्रुता का त्याग करते हैं और उसकी इच्छानुसार आचरण करते हैं।[22]

अहिंसा-प्रतिष्ठित योगी अन्य सभी यम-नियम-पालन की शक्तियों का स्वामी बनता है। सत्यनिष्ठ होने के कारण कार्य और परिणाम उसी पर आश्रित हैं। यदि वह किसी को कहता है—'सत्य-जीवी बनो।' जिस को कहा जाता है वह व्यक्ति अवश्य ही सत्य जीवी बन जाता है।[23] अस्तेयव्रतधारी जहां चाहे वहां सर्वत: रत्न प्राप्त करता है। मन,वाणी और कर्म से ब्रह्मचर्य पालन करने वाला योगी वीर्य प्राप्त करता है। वीर्य-लाभ के कारण उस के निहित गुणों की वृद्धि होती है और निज विवेक स्व-शिष्यों को समर्पित करने की योग्यता रखता है। वीर्य-प्राप्ति के फलस्वरूप वह अष्टसिद्धि प्राप्त करता है, जिन में प्रथम सिद्धि 'तर' के नाम से प्रसिद्ध है।[24] अपरिग्रह-पालन फलस्वरूप योगी भूत, वर्त्तमान और भविष्य तीनों काल के जन्म को जान लेता है।[25] बाह्य शौच के कारण वह अपने ही शरीर से घृणा करने लगता है। घृणा के फलस्वरूप वह

---

२०. व्यास भाष्य.४४.II

२१. मणिप्रभा रामानन्द यति की II.३४

२२. योगदर्शनम् और व्यास भाष्य II.३५

२३. ,, ,, II.३६

२४. योगदर्शनम् II.३६

२५. ,, II ३७,३८

शरीरासक्त नहीं होता और पराये शरीर का संग नहीं करता। जल इत्यादि से पुन: पुन: अपने शरीर को साफ करने पर भी स्वच्छता न देखने के कारण वह निज शरीर से मुक्ति पाना चाहता है। दूसरे शरीरों के प्रति आसक्त होने की बात ही नहीं, क्योंकि वह शरीर की वास्तविक मलिनता को समझ पाता है।[26] आन्तरिक शुचि के फलस्वरूप सत्त्वशुद्धि, सज्जनता, चित्त की स्थिरथा, इन्द्रिय-निग्रह और आत्म- दर्शन की योग्यता प्राप्त होती है। दोषहीन मन का फल सज्जनता और सत्त्व-शुद्धि है, जिसका परिणाम चित्त-स्थिरता है। इन्द्रिय-निग्रह का परिणाम मन का निग्रह है और सत्त्व-शुद्धि से आत्म-दर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।[27] सन्तोष के फलस्वरूप सर्वोच्च सुख की प्राप्ति होती है।[28] इसी अर्थ में कहा गया है—इस संसार में प्रेम-सुख, और स्वर्ग-सुख, इन दोनों का मिश्रण तृष्णा-निग्रह से प्राप्त सुख के १६वें भाग के समान भी नहीं है।[29] इसी अर्थ में ययाति ने अपने पिता पुरु को यौवन समर्पित करते हुए कहा–"विवेकी लोग तृष्णा से दूर रहते हुए सुख-पूर्ण हो जाते हैं, पर अविवेकी जन इस तृष्णा को नहीं छोड़ते और वृद्ध लोगों में तृष्णा वृद्ध नहीं होती"।[30] शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि अपवित्रता से रहित मन का ही परिणाम है। अपवित्रता नाश के फलस्वरूप अणिमा इत्यादि शारीरिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं और दूर की बातों को देखना सुनना, इस प्रकार की इन्द्रियादि सिद्धि की भी प्राप्ति होती है।[31]

स्वाध्याय के फलस्वरूप अपने इष्टदेवता के दर्शन होते हैं। देवता, ऋषि और पूर्ण-पुरुष उसके कार्य में सहायक होते हैं।[32] ईश्वर-प्रणिधान का परिणाम एकाग्रता की सिद्धि होती है। एकाग्रता सिद्धि से युक्त मानव दूसरे स्थानों, दूसरे शरीरों और दूसरे काल की बातों को यथार्थ में स्वेच्छानुसार जान जाता है। उस की अर्न्तदृष्टि वस्तुओं को वास्तविक अर्थ में देखती है।[33]

---

२६. व्यास भाष्य II.३९
२७. ,, और वाचस्पति भाष्य II.४१
२८. व्यास भाष्य II.४२
२९. महाभारत शान्तिपर्व १७०.३.४६, वायु पुराण ९०३.१०१, लिंग पुराण ६७.२३-२४
३०. महाभारत १.८९-९१, विष्णु पुराण ४.१००-२६, वायु पुराण ९३.९९, लिंग पुराण ६७-२०
३१, व्यास भाष्य II.४३
३२. योगदर्शनम् II. ४४
३३. योगदर्शनम् और व्यास भाष्य II. ४५

ईश्वर-प्रणिधान से एकाग्रता-सिद्धि प्राप्त होने का यह अर्थ नहीं कि अन्य यम नियमों की आवश्यकता नहीं है। अन्य यम-नियम ईश्वर-प्रणिधान की पूर्णता में सहायक हैं और इस प्रकार एकाग्रता को सिद्धि में सहायता करते हैं।[34]

हिंसा का निषेध निषेधार्थक-अहिंसा है। योगदर्शनम् ने हमारे समक्ष अहिंसा का नियत रूप भी रखा है। सुखी-जनों से मित्रता, दु:खी जनों के प्रति करुणा, पुण्यात्माओं के प्रति हर्ष तथा पापियों के प्रति उदासीनता का बर्ताव करते हुए मन की शान्ति प्राप्त होती है।[35] इस प्रकार के आचरण से रजस् और तमस् दूर होकर, ईर्ष्या, राग और द्वेष रहित मन शुद्धता प्राप्त करता है। यथा दूसरों को सुखी देख कर उनसे मित्रता का व्यवहार करने से स्पर्द्धा का नाश होता है, दु:खियों के प्रति करुणायुक्त होने से परहानि की भावना को जीत लिया जाता है, पुण्य लोगों के प्रति श्रद्धा होने से ईर्ष्या और क्रोध का नाश होता है। बुरे कर्मशाली लोगों के प्रति उदासीनता का आचरण रखने से क्रोध का नाश होता है।[36]

अहिंसा के वास्तविक स्वरूप का अभ्यास करने से शुक्ल धर्म के अभ्यास में सहायता मिलती है। परिणाम मन की शान्ति है, जिस के कारण चित्त की स्थिरता प्राप्ति होती है।[37]

इस प्रकार मन की शुद्धि एवं सत्त्वशुद्धि के लिए अहिंसा मुख्य साधन है। सत्त्वशुद्धि और मन-शुद्धि ही कैवल्य-प्राप्ति के सहायक हैं। योगदर्शनम् के यम नियमों का वर्णन विष्णु पुराण में भी उपलब्ध होता है :

अपने मन को वास्तविक स्थिति में लाने के लिए, व्यक्ति ने अब्रह्मचर्य, हिंसा, असत्य, स्तेय और परिग्रह का निषेध करना चाहिए। आत्म-निग्रही ने शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान को व्यवहार में लाना चाहिए तथा ब्रह्म के प्रति मन की प्रवृत्ति को अनुकूल बनाना चाहिए। यम और नियम प्रत्येक पांच हैं। सकामी इनके अभ्यास से विशेष फल प्राप्त करता है तथा निष्कामी को मुक्ति की प्राप्ति होती है।[38]

---

३४. योगदर्शनम् II. ४६

३५. योगदर्शनम् I. ३३, वाचस्पति तत्त्ववैशारदी I. ३३

३६. व्यास भाष्य I. ३३

३७. विष्णु पुराण VI. ७. ३६—३७

काश्मीर के त्रिक-दर्शन का उद्भव और उपयोग

डा० वी० डी० शास्त्री एम० ए०, पी० एच० डी०

वर्तमान भारत में हिन्दु-संस्कृति प्राचीनतम मानी जाती है। इसके बीज वेदकालीन साहित्य में निहित हैं। यद्यपि यह संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है फिर भी इसमें कई मत मतान्तरों का समावेश हो गया है। आज इसका वैदिक शुद्ध रूप विलुप्त सा है। इसके नाश का कारण राजनैतिक क्रान्ति नहीं है। इसको नष्ट करने वाले कीटाणु उस वैदिक संस्कृति में ही प्रकट होने लगे थे। जिन ऋग्-वेदकालीन आर्यों ने इस आर्य संस्कृति को "आर्यं कृण्वन्तो विश्वम्" का नारा लगाते हुए बुलन्द किया था उन्हों में बाह्य-आचार का आडम्बर बढ़ने लगा। उन की अन्तंमुखी वृत्ति, जिसने धर्म का साक्षात्कार किया था, नष्ट होने लगी। उन की विचारधारा वहिर्मुखी बनने लगी। धर्म जैसी पवित्र वस्तु का सम्बन्ध आध्यात्मिकता से न रह कर भौतिकता के साथ जुड़ने लगा। साम्य का स्थान वैषम्य ने ले लिया। ऊंच-नीच का भेदभाव पनपने लगा। आत्मदर्शी आर्यों में जाति-पाँति का प्रश्न जड़ पकड़ने लगा। यज्ञयागादि का विधान केवल उच्च जाति के लिए सीमित हो गया। पशुबलि के विना यज्ञ की पूर्ति नहीं हो सकती थी। नीच जातियों के लिए सब धार्मिक द्वार बन्द हो रहे थे। कुलीन जातियाँ स्वार्थ में डूबती जा रही थीं। साधारण जनता दुःखी थी। उसका कोई पथ-प्रदर्शक नहीं

था। ऐसे वातावरण में बौद्ध संस्कृति का अवतरण हुआ। यह संस्कृति वैदिक संस्कृति के विरुद्ध एक ज़ोरदार प्रतिक्रिया थी।

भगवान् बुद्ध के अवतार से, दुःखी जनता में जान आ गई। वैदिक संस्कृति का आधिपत्य कम होने लगा। पशुहिंसा की कुप्रवृत्ति का विरोध होने लगा। 'अहिंसा परमो धर्मः' का संगीत ज़ोर पकड़ गया। वैदिक संस्कृति की कड़ी आलोचना होने लगी।

यह एक धार्मिक क्रान्ति थी। इसमें किसी प्रकार का रक्तपात नहीं हुआ। इस क्रान्ति में वैदिक विचार धारा और बौद्ध विचार धारा की टक्कर थी। बौद्ध धर्म की एक बड़ी भारी त्रुटि यह थी कि इस दर्शन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं था। जनता बौद्ध पताका के नीचे आने लगी। "बुद्धं शरणं गच्छामि। संघ शरणं गच्छामि" का पाठ भारत में गूंजने लगा। भारत का आस्तिक समाज नास्तिकता के गर्त में गिरने लगा। बौद्ध विहारों में भिक्षुओं ने, साधारण जनता को, बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का बीड़ा उठा लिया। बौद्धमत का प्रचार केवल भारत में ही नहीं हुआ बल्कि दूसरे देशों में भी इस धर्म की पताका फहराई गई।

एक तरफ भारत में बौद्धमत की प्रतिक्रिया स्वरूप भगवान् शंकर का उदय हुआ और दूसरी तरफ उत्तर भारत (कश्मीर) में बौद्ध संस्कृति को दबाने के लिए कुछ शैव आचार्य मैदान में आए। शंकर ने वैदिक संस्कृति को बचाने के लिए वेदान्त दर्शन के प्रचार की योजना बनाई। इधर काश्मीर में यहां के शैव आचार्यों ने तत्कालीन प्रचलित विविध संस्कृतियों और साधना पद्धतियों का सार ग्रहण करके एक स्वतन्त्र शैव दर्शन की रचना की। इसे ही काश्मीर का त्रिक दर्शन या 'काश्मीर का शैव दर्शन" कहा जाता है।

जिस तरह राजनैतिक तथा भौगोलिक दृष्टिकोण से काश्मीर का महत्त्व है, उसी तरह भारतीय दर्शन-साहित्य में भी काश्मीर के त्रिक दर्शन का महत्त्व है। भारतीय दर्शन-साहित्य को काश्मीर की यह एक महत्वपूर्ण देन है। राजनीति के क्षेत्र में तो आज, काश्मीर का एक उच्च स्थान है ही, पर भारत के सांस्कृतिक तथा दार्शनिक साहित्य में भी इसे एक गौरव पूर्ण पद प्राप्त है। यहां की दार्शनिक उपज-त्रिक दर्शन में एक अनोखापन है, जो भारत की अन्य दार्शनिक साधना-पद्धतियों में नहीं मिलेगा।

काश्मीर के त्रिक दर्शन में यद्यपि छत्तीस तत्वों का विवेचन है पर प्रधान तत्त्व तीन ही हैं। इस दर्शन का प्रधान तत्त्व 'शिव' है। इसे सामरस्य अवस्था में

'परम शिव' भी कहते हैं। शिव तत्त्व दो तत्त्वों—ज्ञान और क्रिया का सम्मिश्रण है। ज्ञान तत्त्व स्थिर (Static) है और क्रिया तत्त्व अस्थिर (Dynamic)। ये दोनों तत्त्व मोक्ष अवस्था में मिले हुए रहते हैं। इन दोनों तत्त्वों की मिली हुई अवस्था का नाम ही शिव है। इसीलिए इस दर्शन में शिव को 'सकल शिव' और 'निष्कल' ये नाम दिये गये हैं। सकल (Imminent) शिव में क्रिया (Dynamism) की प्रधानता है और निष्कल (Transcendent) शिव में ज्ञान (Static) की।

इस दर्शन का दूसरा प्रधान तत्त्व 'शक्ति' है। यह शिव से भिन्न नहीं है। शिव का क्रियारूप ही शक्ति है। दृश्यमान जगत् शक्ति का प्रसार और क्रीड़ा है। शक्ति में शिव भी विद्यमान है पर, प्रधानता शक्ति की है। जब शिव प्रधान होते हैं तब शक्ति की सत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती है पर शक्ति विद्यमान् अवश्य रहती है। शक्ति के बिना शिव, शिव न रह कर, शव (Dead body) बन जाता है। शिव यद्यपि चेतन है पर उसकी चेतनता तभी सार्थक है जब उसमें व्यापार हो और व्यापार (क्रिया) शक्ति का धर्म है। शक्ति के व्यापार का भी कोई मूल्य नहीं, जब तक उसमें चेतनता न हो। एक तत्त्व चेतन है और दूसरा जड़। केवल जड़ता व्यर्थ है और निरी चेतनता का भी कोई मूल्य नहीं। जड़-चेतन का संयोग ही 'संसार' है।

चेतन जगत् के प्रतीक जीव हैं और जीवों में मानव श्रेष्ठ है। जड़ संसार के प्रतिनिधि गुल्म, लता, वृक्षादि हैं। शिव और शक्ति, दोनों प्रकार की—स्थावर तथा जंगम सृष्टि में विद्यमान हैं। भेद केवल तारतम्य का है।

कश्मीर के शैव दर्शन का तीसरा प्रधान तत्त्व 'नर' (अणु, जीव, आत्मा) है। कश्मीर-शैव साहित्य में 'नर शक्ति शिवात्मकं त्रिकमुच्यते' ऐसा कहा गया है। शिव और शक्ति की उपज ही नर (अणु) है। यह उपज वैसी ही है जैसी कि रज और वीर्य के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है। शिव-शक्ति की सन्तान 'नर' में पैतृक सम्पत्ति विद्यमान है। मानव में चेतनता शिव का धर्म है और क्रिया-क्षमता शक्ति का। हमारा भौतिक शरीर शक्ति का प्रतीक है और आत्मतत्त्व शिव का चिह्न। आध्यात्मिकता और भौतिकता का मिश्रण ही मानव है। त्रिक दर्शन के तीनों तत्त्व हम में विद्यमान हैं।

कश्मीर का त्रिक दर्शन अद्वैतवादी है। एक शिव अपनी स्वातंत्र्य शक्ति द्वारा त्रिविध रूप बना लेता है। इन तीनों तत्त्वों की विद्यमानता हम में इस तरह है—हमारा भौतिक शरीर अणु तत्त्व का निशान है, हम में रहने वाला मन या बुद्धि

शक्ति का प्रतीक है, और शिव का प्रतीक हमारा आत्मा है। मानव में इन्हीं तीन तत्त्वों की प्रधानता है। शरीर, मन और आत्मा ही त्रिक दर्शन के तीन तत्त्व हैं।

इस दर्शन के तीन तत्त्वों पर आधारित तीन उपायों का कश्मीर शैव साधना में विशेष महत्त्व है। इस दर्शन में कैवल्य (मोक्ष) प्राप्ति के प्रथम उपाय को 'आणवोपाय' कहा गया है। यह एक शारीरिक साधना है। इस में पूजा पाठ तथा यज्ञयागादि का अनुष्ठान सन्निविष्ट है। नर-अवस्था में इसी उपाय का विधान बनाया गया है। जो साधक नर-अवस्था को पार कर लेता है उसे फिर दूसरी अवस्था में 'शाक्तोपाय' का सहारा लेना पड़ता है। इसमें ध्यान आदि का विशिष्ट महत्त्व है। यह एक प्रकार की मानसिक साधना है। तीसरा उपाय 'शाम्भवोपाय' है। यह एक आत्मिक साधना है। इसमें मनन तथा चिन्तन का प्राधान्य है। इस साधना पद्धति में यह अन्तिम सीढ़ी है। इस अवस्था में पहुंचा हुआ साधक सारे दृश्यमान जगत् को शिवमय समझने लगता है। गीता में भी इस अवस्था का संकेत इस तरह किया है—"वासुदेव: सर्वामिति स महात्मा सुदुर्लभ:" (सारे संसार को वासुदेव (कृष्णमय) समझने वाला महात्मा दुर्लभ है) यह वह अवस्था है जिसमें पहुंच कर भेद-भाव, जाति-पांति तथा अपना-पराया आदि का नाश हो जाता है। शिव भाव प्राप्त करना ही इस दर्शन का चरम लक्ष्य है। शैव साधक की यह अवस्था अभेदावस्था कहलाती है। इसमें भेद का या 'तू-वह' आदि की प्रतीति का पूर्णतया नाश हो जाता है। प्रत्येक वस्तु में 'मैं' या 'शिव' का भान होने लगता है। एकत्व की प्रतीति ही इस साधना का उद्देश्य है।

त्रिक दर्शन की साधना पद्धति भी विचित्र है। साधना दृश्य जगत् से प्रारम्भ होकर अदृश्य प्राप्ति के बाद समाप्त हो जाती है। यह साधना भी तीन तत्त्वों पर ही आधारित है। साधक निम्नतम स्तर से उच्चतम स्तर की तरफ बढ़ता है। उसकी साधना का क्रमशरीर से प्रारम्भ होता है। शरीर से उठकर मन की तरफ प्रस्थान होता है और फिर मन से आत्मा की तरफ। यहां भी शरीर, मन (बुद्धि) और आत्मा या नर, शक्तिऔर शिव का क्रम विद्यमान रहता है। उच्चतम स्तर पर पहुंच कर तीन तत्त्वों की भिन्न-भिन्न प्रतीति समाप्त हो जाती है। अनेकता एकता में लीन हो जाती है। एकत्व ने अपनी इच्छा से ही अनेकत्व बनाया था। अनेकत्व उसकी अपनी इच्छा से ही एकत्व में विलीन हो जाता है। यह सारा कार्य-क्रम किसी बाह्य साधन से नहीं होता है। यही चिति (शिव) का स्वातंत्र्य है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से त्रिक दर्शन के तीन तत्त्व, मन की तीन अवस्थाओं

के नाम हैं। इन तीन तत्त्वों का हमारे मन में प्रतिक्षण भान होता रहता है। मन की उस अवस्था का नाम चेतन अवस्था है, जब मन पूर्णतया सजग होता है। यही 'शिवावस्था' है। मन की दूसरी अवस्था अर्ध-चेतन या उपचेतन अवस्था है। इसमें मन कभी चेतन और कभी अचेतन हो जाता है। इसे त्रिकदर्शन में शक्ति का नाम दिया गया है। शिव अवस्था में शिव पूर्णचेतन होता है। शक्ति-अवस्था में शिव अपनी सत्ता को भूलने लगता है। वह कभी चेतन और कभी अचेतन होता है। यह मध्य की अवस्था है। यह अवस्था पूर्ण स्थिरता आ जाने से शिवावस्था में परिवर्तित हो जाती है और पूर्ण अस्थिरता आने से अचेतनावस्था (नर-अवस्था) हो जाती है। इस अवस्था का एक विशिष्ट महत्त्व है। ऊपर उठना या नीचे गिरना इसी अवस्था पर आधारित है। मन की तीसरी अवस्था अचेतन अवस्था है। इस अवस्था में चेतनता नहीं रहती है।

मनोविज्ञान के आधार पर त्रिक-दर्शन के तीन तत्त्व तीन अवस्थाओं में प्रतिक्षण प्रतीत होते रहते हैं। यह तीन अवस्थाएँ हमारे मन की हैं। अतः त्रिक-दर्शन-के तीन तत्त्व हम में विद्यमान हैं।

कश्मीरी काव्य में रामभक्ति

पृथ्वीनाथ मधुप

प्राचीन काल से ही कश्मीर सरस्वती की साधना का एक प्रमुख स्थल रहा है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य को कश्मीरी रचनाकारों ने अपूर्व योगदान दिया है। फ़ारसी अदब के निर्माण में भी कश्मीरियों का काफी हाथ है, साथ ही उर्दू और हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में भी वे किसी से पीछे नहीं, चूंकि कश्मीर अति प्राचीन काल से ही धर्म एवं ज्ञान का प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है, धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन यहां चिरकाल से होता रहा है, अत: यहां के पण्डितों तथा साहित्यकारों ने धार्मिक साहित्य को महत्व प्रदान किया। यहां के आचार्यों ने एक ओर कश्मीर शैव धर्म को जन्मा और प्रचारा, दूसरी ओर यहां के साहित्य-स्रष्टाओं ने अन्य भारतीय दर्शनों तथा पुराणों के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया। यद्यपि यहां शिव और शक्ति की उपासना ही ने प्रमुखता पाई फिर भी भगवान् विष्णु के विविध अवतारों की उपासना गौण नहीं रही।

कश्मीरी कविता का आरम्भ ही रहस्य-राग से हुआ है। लल्लेश्वरी से लेकर पण्डित नीलकण्ठ शर्मा तक अनेक सन्त कवियों को कश्मीर की पावन धरा

ने उत्पन्न किया है। इन कवि एवं कवयत्रियों ने जहां अपनी वाणियों में शैव-दर्शन, वेदान्त दर्शन, सूफी सिद्धान्तों आदि को मुखर किया है वहां भगवान के विविध अवतारों (विशेष रूप से राम और कृष्ण) की स्तुति में भी रचनाएं की हैं। कश्मीरी भाषा में पन्द्रहवीं शताब्दी से पौराणिक आख्यानों पर काव्य लिखे जा रहे हैं। "१७वीं शती में साहिब कौल ने 'कृष्णावतार' लिखा जिसकी शैली ने बाद में लीला-काव्य की विधा प्रचलित की और राम तथा कृष्ण के आख्यानों पर काव्य लिखे जाने लगे।"—(प्रो० पुष्प) प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि राम सम्बन्धी कविताएं लिखने से पहले कृष्ण सम्बन्धी कविताएं लिखी जा चुकी थीं। कश्मीरी का प्रथम रामभक्त कवि कौन है? राम-सम्बन्धी प्रथम कविता कब और किसने लिखी? ये प्रश्न एक लम्बे शोध की अपेक्षा रखते हैं। हां, कश्मीरी काव्य की जो सामग्री अभी तक उपलब्ध हुई है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि पहले राम-भक्त कवि दिवाकर प्रकाश (प्रकाश राम) हैं और उन्होंने ही अठारहवीं शताब्दी में राम-सम्बन्धी प्रथम कविता (राम अवतारॅ चर्यथ काव्य) लिखा है।

कश्मीरी रामभक्त कवियों के राम, कबीर के राम की भांति, निर्गुण निराकार नहीं; वे तुलसी के राम जैसे सगुण साकार हैं। वे दाशरथी राम हैं, कौशल्या-नन्दन हैं, अयोध्यावासी हैं। देखिये कवि राजकाख जी इनके बारे में क्या कहते हैं:

> कोशल्या हृदुॅयानन्दुॅ च्यथगनुॅ
> कूमल पादिकमुॅलन पान वन्दुनय
> श्रूॅ वंगुॅवरुॅ दशिरथुॅनन्दनुॅ
> दासस कास बवुॅ बन्दुॅनय।

और—

> बालु मकुन्दुॅ रामुॅ बगुवानुॅ अयोध्यावा'सी॥

अर्थात् हे कौशल्या के हृदयानन्द चिद्गुण (राम-भक्त) आपके कोमल चरण-कमलों की बलि-बलि जायेंगे। हे! श्री रघुवर! दशरथनन्दन! (मुझ) दास के भव-बन्धन काट डालिये।

हे बालमुकुन्द राम! आप अयोध्यावासी हैं। सगुण साकार राम की मनमोहक छवि का वर्णन पण्डित नीलकण्ठ शर्मा ने अपनी 'वुछ वारुॅ न्यतरव रामुॅध्यान' "ध्यान से अपनी आंखों में राम की छवि को देखो" नामक कविता में किया है। एक जगह लिखते हैं:

म्रख चन्द्रमय छुस नतु॑ कमल
म्रखु दिफि़त नतु॑ रट्य तिमति तल
वुठ छिस व्वज़ु॑ल्य क्याह चम्मुकान ।।
खन्जर हिशी छस नासिका
न तु॑ तथ श्वक्रु॑ त्वन्ड वोपु॑मा
वेनि क्याह यि वा'नी छे मन्दुछान ।।

अर्थात्—(रामचन्द्र जी का) मुखमण्डल चन्द्रमा या पंकज है—नहीं मुखमण्डल की आभा के सामने वे भी फीके हैं। उनके अरुण अधर अतीव चमकीले हैं। उनकी नासिका खंजर जैसी है या वह शुक की चोंच जैसी है। (राम की छवि का वर्णन कैसे करूं) यह मेरी वाणी ऐसा करने में असमर्थ है।

श्री लक्ष्मण जी के रघुनन्दन कौन हैं, जरा देखिये :

वंगु॑नन्दनु॑ न्यरबन्दनु॑ जानकी कनु॑ दूरो
रावु॑नस यावनु वालु॑ वनि लंकायि हु॑न्दि लूरो
स्वदरु॑ मंज्य ह्यथ पंज्य तु॑ बन्दु॑रो ।।

हे रघुनन्दन ! आप निर्बन्धन हैं। आप जानकी जी के सर्वस्व हैं। आप रावण का यौवन हरने वाले तथा सागर के पार वानरों को साथ लेकर लंका को नष्ट करने वाले हैं।

यहां के राम-भक्त कवियों ने राम भक्ति, प्रधानतः दास्य भाव से ही की है। सख्य भाव का भी एक आध उदाहरण श्री राजकाख की लम्बी कविता 'सीतारामु॑ टाठि' (प्यारे सीताराम) नामक सरस कविता में मिलता है। दास्य भाव से भगवान् राम की भक्ति करने वाले कवियों में पण्डित नीलकण्ठ शर्मा प्रमुख हैं। वे अपने एक भजन में भगवान् राम से प्रार्थना करते हैं :

ही न्यशकलु॑ न्यरमलु॑ रामो !
जय जय शरुताग तु॑वथसलु॑ रामो !
दास आसय शरु॑नु॑य द्वरगथ कास
ह्यथ आकाशिसुय मंज़ सिर्यिवथ बास
जन्मु॑बयि निशि रछतम कासतम त्रास......

अर्थात्—हे निश्कल, निर्मल, शरणागत-वत्सल राम ! आपकी जय जयकार हो। मैं आपका दास आपकी शरण में आया हूं, मेरी दुर्गति को आप

दूर करें। हृदयाकाश में आप सूर्यवत् दिखाई दें। आप जन्म जन्म के भय से मेरी रक्षा करें और मेरे इस (आवागमन के) त्रास को दूर करें। श्री राजकाख जी सख्य-भाव से अपने आराध्य की अर्चना यों करते हैं :

सीता रामु॑ टाठि म्यतु॑य म्यानि
लागय दलु॑ दलु॑ त्वलसी... ।

हे ! प्यारे सीताराम ! मेरे मित्र, मैं आपको तुलसी दल चढ़ाऊंगा...।

यहां के भक्त राम को मात्र विष्णु का एक अवतार ही नहीं मानते अपितु उनकी दृष्टि में राम सर्वशक्तिमान्, सर्वात्मा सर्वेश्वर हैं। उनके अनुसार शिव, शक्ति और राम में कोई भेद नहीं—सभी एक हैं, केवल नाम भेद है। महाकवि परमानन्द जी 'शिवु॑लग्न' की अन्तिम कविता में लिखते हैं :

राम छुनु॑ अख तय शिव ब्याखु॑य
कीवल सथ शबदुक वाखुय
लछि नावि लछि ब्वदि प्रेकारो ।

अर्थात्—राम और शिव भिन्न नहीं है (दोनों एक हैं)। दोनों नाम केवल उस सत्य शब्द के पर्याय हैं जिसके लाखों नाम और लाखों प्रकार हैं। श्री दिवाकर प्रकाश, राम और शिव का भेद बताते हुए लिखते हैं :

अन्दु॑री अच॒ अन्दर
तति छुय शेवु॑ मन्दर
तथ्य अन्दर शामुस्वन्दर
न्यरमल रामु॑ रामय।

"'अन्दर से ही भीतर चले जाओ, वहां शिव-मन्दिर है, उसी में श्याम सुन्दर निर्मल भगवान् राम हैं।" पण्डित नीलकण्ठ शर्मा ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शक्ति तथा राम का अभेद बताते हुये 'जय रामु॑ रामु॑ पर' (जय राम राम) नामक कविता में लिखते हैं :

...सुय छुय ब्रमा सुय छुय व्यशनो
सुय छुय शंकर अमर स्वयंबो
...सुय गिरिदा'री म्वरली मनोहर
....
सुय शेवु॑ शक्ति रूफ न्यरमल त्रे॑नयन...।

वही (राम) स्वयंभू ब्रह्मा हैं, वही विष्णु हैं और वही शङ्कर हैं।······वही गिरिधारी मुरली मनोहर हैं......वही शिव-शक्ति रूप त्रिनयन हैं।

कश्मीरी रामभक्त कवि इसी द्वैत रहित भगवान् राम को सर्वतोभाव से समर्पित हुए हैं। राम उनके सर्वस्व हैं—माता, पिता, भाई, बन्धु, सब कुछ। पण्डित नीलकण्ठ शर्मा मानों सभी राम-भक्त कवियों का प्रतिनिधि बन कर घोषणा करते हैं :

सीताराम छुम मा'ज्य तय मोल
छुसन्यर बन्दन
तन मन पनुनुय व.ोर म्य तस्य
हव्रालय लो लो।

सीताराम मेरे मां-बाप हैं। मैं निर्बन्धन हूं। मैंने उसी को अपना तन-मन सौंपा है।

राम-नाम की महिमा अपार है। इस पावन नाम के उच्चारण मात्र से ही अनेकों पातक दूर हो जाते हैं। इस कलिकाल में तो राम-नाम की औषधि भव-रोगियों की संजीवनी है। राम-नाम के इसी महत्व को हमारे राम-भक्त कवियों ने यों गाया है। श्री लक्ष्मण जी 'बुलबुल' कहते हैं :

रामु˘ लगयो रामु˘ नावस
कामु˘दीवु˘ श्यामु˘स्वन्दु˘रो।...

हे कामदेव की जैसी मोहिनी मूरत वाले श्याम सुन्दर (श्री रामचन्द्र जी !) मैं आपके नाम की बलिहारी। ...... इसी बात को श्रीकृष्ण राज़दान की भाषा में सुनिये :

टोठान च.ुय छुख बक्ति बावस
श्यामु˘ रू˘पु˘ लगयो रामु˘ नावस।

आप (भक्तों के) भक्ति भाव पर रीझते हैं। हे श्याम रूप वाले (श्री राम) ! आपके राम-नाम की बलिहारी ! राम-नाम की महत्ता का बखान पण्डित नीलकण्ठ शर्मा इस प्रकार करते हैं :

रामु˘ नाम ज़ानुन त्र्य अछर ब्रमा व्यशनो महीश
.च्वन वीदन हुन्द प्रान रामु˘ नाव छुए का सांन
सोरुय कलीश।

रामु ॅनामुक मह्यम शंकरु ॅनन्दन ज़ानान छुय
महागनीश।

रामु ॅ नामु ॅ परतापु ॅ ज़पु ॅ हूॅमु ॅ यज्ञि यागु ॅ छु यिवान
ग्वडु ॅ पूज़नु ॅ लो लो !

अर्थात्—राम नाम के तीन अक्षरों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश जान लो। राम-नाम, जो चारों वेदों का सार है, सारा क्लेश हरता है। राम-नाम की महिमा शंकर-नन्दन गणेश ही जानते हैं। राम-नाम के प्रताप से ही उन्हें जापों तथा होम-यज्ञों में पूजा जाता है।

इस कारण अरे मानव, सभी प्रकार के क्लेशों से छुटकारा पाने के लिए :

जय रामु ॅ रामु ॅ पर जय राम ॅ पर
जय रामु ॅ रामु ॅ पर सीता रामु ॅ पर।
प्रान रठ ध्यानस्वरपान तेस्य पूशर
जय रामु ॅ रामु ॅ पर सीता रामु ॅ पर।।

बार-बार जय राम, जय सीताराम, जपो। प्राणों को वश में करके तथा उन्हीं (श्री राम) का ध्यान करके उन्हीं को पूर्ण रूपेन सर्पपित हो जाओ।

राम-भक्ति एवं राम-नाम महात्मय को दृष्टि में रख कर ही लक्ष्मण जी भगवान् राम से कहते हैं :

पीताम्बरु ॅदरु ॅ स्वन्दरो रामु ॅ शामु ॅ कामु ॅ दीवु ॅ गन्दरो
च्ये न तु ॅ ग्रदु ॅ कस ग्वन्दु ॅ लो लो।

—हे पीताम्बर धारण करने वाले, कामदेव से भी सुन्दर सांवले रामचन्द्र जी, मैं अपनी फरियाद आपको नहीं तो और किसे सुनाऊँगा ? आप ही अपने भक्तों को शरण देने वाले एवं उन्हें परम धाम देने वाले हैं :

न्यरबयि दयि नेरामयि न्यस्पृह न्यश्कामो
करियुस चोन प्रेनामो दामु ॅ चेयि सोदामो
लोल चोन ग्राम रामु ॅ चन्दु ॅरो।।

अर्थात्—हे निर्भय, निरामय, निःस्पृह, निष्काम भगवान् ! जो आपको प्रणाम करता है वह परमधाम प्राप्त कर लेता है। हे रामचन्द्र जी ! मुझे आपकी बहुत याद आई है।

शरणागत वत्सल मुक्तिदायक रामचन्द्र जी की भक्ति करने से ही भवरोग

दूर होता है। जो रामभक्ति-रस का आस्वादन करेगा वह मान-अपमान से ऊपर होकर सत्य से कभी दूर न होगा। पण्डित नीलकण्ठ शर्मा के शब्दों में :

रामु॑वक्तिरसु॑ जाम युप चे॑यि गलि गलि
वलि तस ग्रदु॑ समसारुक रूग।
मानु॑ ग्रवमानु॑ रोस्त वनि द्यानु॑ जांह्नु॑ डलि
वलि तस ग्रदु॑ समसारुक रूग।

अर्थात्—(जभी) कोई राम-भक्ति-रस से भरे हुए चषक से चुस्कियां लेगा तभी वह भव-रोग से मुक्ति पायेगा। वह मान-अपमान से ऊँचा उठकर अपने ध्यान से नहीं हटेगा। तभी भव-रोग से मुक्ति मिलेगी।

हम लिख चुके हैं कि कश्मीर में प्रधान रूप से शिव और शक्ति की ही उपासना की जाती रही है। यहां की रामोपासना देश के अन्य भागों के प्रभाव का फल है। फिर भी राम को यहां एक अलग दर्जा न दिया गया। यहां शिव, शक्ति, राम तथा विष्णु के अन्य अवतारों में कोई भेद नहीं समझा गया। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य की भांति कश्मीरी-साहित्य में एक अलग रामभक्ति शाखा का अभाव है। कश्मीरी के रामभक्त-कवियों को, रचना के आधार पर निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

१. रामाख्यान पर खण्डकाव्य एवं महाकाव्य लिखने वाले कवि तथा २. राम-सम्बन्धी भजन (लीला-काव्य) लिखने वाले कवि।

कश्मीरी में पांच रामायण लिखे गये हैं। इन पांचों कृतियों का संक्षिप्त परिचय ऐसे है :

१. **रामु॑ ग्रवतारू॑ चर्यथ**—यह कृति संभवत: कश्मीरी का पहला रामायण है इसके रचेता श्री दिवाकर प्रकाश (प्रकाशराम, निधन संवत् १८८५ ई०) कुर्यगाम गांव के निवासी थे। जनश्रुति है कि श्री दिवाकर अन्धे थे। 'रामु॑ अवतारू॑ चर्यथ' की रचना के पश्चात भगवान राम की दया से इनकी आँखें ठीक हो गईं। यह कृति देव नागरी तथा फ़ारसी लिपियों में प्रकाशित हो चुकी है। इस कृति का रचना काल सन् १७५४—६२ ई० बताया जाता है। इसकी कथावस्तु वैसे तो वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही चलती है परन्तु कहीं-कहीं उससे भिन्नता भी है, जैसे सीता जी के जन्म के बारे में। इस कृति में श्री सीता जी को मन्दोदरी की बेटी कहा गया है। इसके छन्दों एवं युद्ध-चित्रण में फ़ारसी छन्दों एवं 'रज़मियां' का बहुत प्रभाव है। कवि को करुणा-चित्रण में बहुत सफलता

मिली है। काव्य के परिशिष्ट 'लव कुश चरित्र' में श्री सीता जी का करुण निवेदन बहुत अच्छा बन पड़ा है। इस रचना से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

मुक़र्रर यी सपुद गछि राम वनवास
वोलुन तम्य बुरज़ु ॑ त्रोवुन खासु ॑ अतु ॑लास ।
अन्युख कीकी तु ॑ पा'रय्नख बुर्ज़ु जामह
परु ॑निलोग शहर सोरुय रामु ॑ रामह ।
सती सीता पकनगयि पान मारन
वदन आ'स खून न्यतु ॑ख आ'स हारन ।

अर्थात् निश्चित यही हुआ कि राम वन जायेंगे। उन्होंने अच्छे-अच्छे कपड़े उतारे और भोजपत्र के अम्बर पहने। कैकेई को लाया गया और उसी ने उन्हें ये कपड़े पहना दिए। (इस पर) सारा नगर राम ! राम !! करने लगा। सती सीता जी कातर हृदय लिए हुए चली आईं। वे रोती थीं और आंखों से खून बहाती थीं।

आव बहार बोल बुलबुलो
सोव व्वलो बखो शा'दी ।
द्राव कठक्वश ग्र ॑जि पांछुलो
ज़र .चलु ॑नो वन्दु ॑की दा'दी ।
वुज़ू न्यन्दरे वुनिछय सुलो ।।.........

बुलबुल ! बोलो, मधु-ॠतु आया है। तुम हमारे यहां आ जाओ, उत्सव मनावेंगें (क्योंकि) तीव्रशीत का मौसम बीत गया है अब जल-धारा गरजेगी—शीत काल के दुःख अब दूर होंगे। जागो अब भी जागने का समय है।

२. **रामायणि शर्मा**—इस कश्मीरी रामायण के रचेता हैं पडिण्त नील-कण्ठ शर्मा (जन्म सन् १८८८ ई०) यह कृति संवत् १९७६—८३ विक्रमी में लिखी गई है। इस वृहत् कृति का आधार 'रामचरित मानस', 'बाल्मीकि रामायण' तथा 'पद्म पुराण' है। इस कृति का पहला खण्ड फ़ारसी लिपि में प्रकाशित हो चुका है जो अब अप्राप्य है। जैसा कि इस रचना के नाम से ही प्रतीत होता है इस पर फारसी का गहरा प्रभाव है। यह मनोहर कृति काव्य सौंदर्य का अमूल्य कोष है। इसका युद्ध-चित्रण पढ़ते ही बनता है। ओज तथा ध्वननशील शब्दों ने इसके युद्ध-चित्रण को और भी मोहक बनाया है। राक्षसों और वानरों के युद्ध का एक दृश्य देखिये :

असर आ'स्य ग्वरज़्व सु'तिन जंग करान
गरान ज़न अहन आ'स्य आहंगरान।
वनन यी अकिस अख रटुन हा रटुन
ब खंजर च़टुन तय ख्वरनतल खटुन।

....

यिवान्दर वनान ज़ोरु॑ लायुम च़ु॑लट
करुट बन्द कोह सूत्य करुस च़ॄट तु॑म्यट।
......करुस कुशतु॑ यखदम च़ु॑ व्वन्य मुशतु॑दिथ
तुलुन पुशतु॑ रटिथु॑य पथर दिन बरिथ।

अर्थात्—असुर गदाओं से युद्ध करते थे। उन गदाओं के टकराने से ऐसी ध्वनि हो रही थी जैसे लोहार लोहे को पीट रहा हो। वे एक दूसरे से यही कहते थे कि इसे पकड़ो, पकड़ो! खंजर से इसे काटो और पैरों तले कुचलो!...... वानर एक दूसरे से कहते कि ज़ोर से इन्हें पूंछ मारो और इसे (इसी से) वांध लो तथा पर्वत से इनका कचूमर निकालो।......इसे मुक्के मार-मार कर चूर्ण बना दो और गुह्यस्थान से इसे पकड़ कर दे पटको।

सीता जी के खो जाने पर रामचन्द्र विरहाभिभूत होकर फूलों से यों, जानकी जी का पता पूछते हैं:

......असा'नी च़ु॑ज़न दर चमन अय समन!
खयालन कमन छुख बमन पय च़ु॑वन।
गुलालो दिलस दाग़ छुम चोनह्यू
निशाना तसुन्द वनतु॑ कथ जायि छू।

अर्थात्—अरे बेला पुष्प तुम चमन में जैसे मुस्करा रहे हो। तुम किन विचारों में लीन हो? मुझे (जानकी) का पता बतादो।

अरे! गुल्लाला के पुष्प तुम्हारे जैसा ही दाग़ मेरे दिल में भी है, अतः मुझे बता दो उस (जानकी) का चिन्ह कहां हैं......

३. **रामु चर्यथ**—यह कृति भी पण्डित नीलकण्ठ शर्मा की ही है। यह रचना 'रामयरिण शर्मा' से बहुत छोटी है। इसका रचना काल संवत् १९७० विक्रमी है। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से होने के कारण भी यह सरसता से

वंचित नहीं। इसमें संक्षेप से राम-कथा कही गई है। एक उदाहरण लीजिए। राम लक्ष्मण सीता जी को खोज रहे हैं, परन्तु—

कुनि जायि सीतायि आ'सीनु॑ डेशानु॑
त्रेशिदादि यच़ तिम आ'स्य वुठ फेशानु॑
दिलरेश त्रेश छिनु॑ क़ुनि डेशनय।
जय जय जय दशिरथु॑ नन्दनय॥

वे कहीं सीता को पा नहीं रहे थे! उन्हें अत्यन्त प्यास लगी थी पर उन दुखियों को कहीं भी पानी नहीं मिल रहा था।

४. शंकर तथा ५. विष्णु प्रताप रामायण—'शंकर' रामायण उन्नीसवीं शताब्दी तथा 'विष्णु प्रताप रामायण' बीसवीं शताब्दी की रचना है। ये दोनों कृतियां अप्रकाशित हैं। इन दोनों रचनाओं के ब्योरे प्राप्त करने का यत्न मैं कर रहा हूँ। 'विष्णु प्रताप रामायण, श्री विष्णु कौल की रचना है। श्री कौल व्योस नामक गांव के निवासी थे। इनके सुपुत्र श्री ओंकारनाथ कौल के पास इस कृति की पाण्डुलिपि सुरक्षित है परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से वे मुझे पाण्डुलिपि एक सप्ताह तक दिखाने में असमर्थ थे, अतः कोई उदाहरण नहीं दिया जा सका।

महाकवि परमानन्द जी के शिष्य श्री लक्ष्मण जी 'बुलबुल' नागाम-निवासी ने 'राम-गीता' तथा राम सम्बन्धी कई भजन लिखे हैं। 'बुलबुल' का जन्म सन् १८१२ ई० तथा निधन सन् १८८४ ई० में हुआ था। उनकी लिखी रामगीता से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

च़लि यलि दूर अज्ञान
अदु॑ छुनु॑ वलनु॑ यीवान
अदु॑ कर आसि ज़ानान
रामु॑ रामु॑ रामु॑ कर्यज़े।
पानु॑ अदु॑ ज्ञानु॑ वुज़मल
नेरि नन्य गेछि प्रेबल
सिर्यि सुन्दि स्वतु॑ न्यरमल
रामु॑ रामु॑ रामु॑ कर्यज़े।

अर्थात्—जब अज्ञान दूर होगा तो पुनः लपेट में नहीं लेगा, तुम से परिचित नहीं होगा। राम, राम, राम जपा कर। तब स्वयं ज्ञान की सौदामिनी प्रबल हो

कर प्रादुर्भूत होगी वह सूर्य से भी प्रकाशवान् होगी—राम, राम, राम जमा कर।

श्री कृष्ण राज़दान (जन्म १८५० ई० के लगभग) वनपूह ग्राम निवासी ने भी अनेक राम- भजन लिखे हैं। इनमें से इनका 'टोठान चुय छुख भक्ति भावस शंभू रूॅपूॅ लगयो रामुॅ नावस' (आप भक्तों के भक्तिभाव पर रीझ जाते हैं, हे श्याम रूप (राम), मैं आपके राम-नाम की बलि-बलि जाऊँगा)। वाला भजन बहुत ही लोक प्रिय है। दूसरा अति लोक प्रिय राम-भजन 'सीता रामु टाठ' है। इसकी रचना विरक्त सन्त श्री राजकाख जी ने की थी। राजकाख जी बारामूला में अपने आश्रम में रहते थे। इस कविता के कुछ अंश ऊपर दिए गए हैं। श्रीनगर के स्वामी रामानन्द जी, जो सत्थू में रहते थे, ने भी बहुत से राम-भजन लिखे हैं, जिनकी प्रतिलिपि कश्मीर के कई वयोवृद्ध काव्य-रसिकों के पास है। इसी प्रकार सन्त श्री हलधर जी के राम-सम्बन्धी भजन भी काव्य मर्मज्ञों एवं राम-भक्तों के हृदय हार हैं। सन्त श्री हलधरजी आश्रम बुद्धमुला, नारवाव, तहसील बारामूला में निवास करते थे। इनका 'राजादि राजा महाराजा राम जी' वाला भजन अति सुन्तर बन पड़ा है इनके एक दूसरे राम भजन की आरम्भिक पंक्तियों का रसास्वादन कीजिए :

म्य रामुन आम नामय
परस बो रामुॅरामय
बरस बो लोलुॅ जामय
गरे गरि सुब्बु शामय......

अर्थात्—मुझे राम की पाती आई है। मैं राम-राम जापूंगा मैं उनके लिए क्षण-क्षण सुबह और शाम प्रेमासव के चषक भरूंगा।

पण्डित नीलकण्ठ शर्मा ने 'रामचर्यथ' और रामायण शर्मा के अतिरिक्त रामभक्ति पर अनेकों भजन भी लिखे हैं। इनके ये भजन कवित्व एवं राम-भक्ति-रस से सने हैं। एक भजन की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

मनुॅ ख्यनुॅ ख्यनुॅ स्वर सीतारमन
यिमन भ्रमन बनी हान।
वश गव यिमन यिमन यि मन
स्वखुॅसान तिमव लोब न्यरवान
कति अदुॅ रूदुख आवागमन॥

हे मन! क्षण-क्षण सीतारमण का ध्यान कर—तुम्हारे ये भ्रम नष्ट होंगे।

यह मन जिन-जिनके वश में हुआ उन्होंने सुखपूर्वक निर्वाण प्राप्त किया—उनका आवागमन कब रहा ?

श्री गोपीनाथ 'बेताब' अध्यापक सफापुरा गांव ने भी अच्छे राम-भजनों की सृजना की है। इनके भजनों से एक उदाहरण लीजिए :

.. ...दीहुचे लंकायि अन्दर मनु-रावुनुय म्य भारतम
च़्यतु किस वेबीशनस च़ुय प्रेमु राज पुशिरावतमा
रामु वंगुवर अबिरामो ! पनुनि हालु क्य नामु च़्ये—
लेखु ह्य सर्वीश्वरो युस गोर करिथुय परतमो।

(हे राम !) मेरी देह-लंका में आप मन-रावण को मारें और चित्त-विभीषण को प्रेम का राज सौंप दें। हे अभिराम, रघुवर, रामचन्द्रजी ! मैं आपको अपनी दशा की पाती लिखूंगा, सर्वेश्वर ! उसे आप ध्यान से पढ़ लीजिए।

यहां उन कवियों का उल्लेखमात्र करना असंगत न होगा जिन्होंने सरसरी तौर पर अपनी रचनाओं में राम या उनसे संबन्धित किसी वस्तु का उल्लेख किया है उदाहरणतय: कवि अहमद बटुवारी की कविता 'जान छुय मीलिथ जहानस सूत्य' का निम्न अंश उद्धृत किया जा सकता है :

जंग लोग रावु लिस ब्ययि हनूमानस
रावल्युन खान्दान गव म्वखतु सर
सीतायि साज़कोर नाज़नीन पानस।।

'हनुमान और रावण में जंग छिड़ गया। रावण का परिवार समाप्त हुआ और सीता ने अपनी मनोहर छवि का श्रृंगार किया।' इसी प्रकार अहर ज़रगर, नरवर निवासी, तथा गुलाम अहमद 'महजूर', मित्रगाम निवासी, आदि ने भी अपनी कई रचनाओं में राम का उल्लेख किया है।

● ● ●